# नागफनी

कुसुम से भी कोमल और कुलिश से भी कठोर भला कौन है ? कालिदास ही नही आप भी जानते हैं — स्त्री। लोक मे असफल और परलोक मे निष्ठावान् उसे मायाविनी कहते है।

चाहे अगारे हो, उपल या फूल—सभी कुछ से जीवन का शृङ्गार करने मे वही एक समर्थ है। कभी तृषा को तृप्ति देती है तो कभी तृप्ति मे तृषा भरती है। वल्लरी-सा स्वभाव। पनपने को वृक्ष-स्कन्ध चाहिए ही, वह चाहे करील का ही क्यो न हो। फिर भी अपने आप मे इतनी पूर्ण और निरपेक्ष कि आकाश-वेल की तरह मूल की भी अपेक्षा नही। उदारता में पवन-विहारी पुष्प-सुवास से भी अधिक मुक्त। रसदान में आषाढ़ी मेघ से भी मुक्त हस्त। पर वही बाहर के पहारों से स्वय का आकुचन करती है तो ठीक, नागफनी सी बन जाती है। मरु में भी जीवन धारण में समर्थ। अपने रस को अपने ही भीतर निविड़ कर उसी से पुष्ट तीक्ष्ण कांटो से अपनी रक्षा में सन्नद्ध।

इस उपन्यास की रेवती भी कुछ ऐसी ही है। उसकी गाथा कहने में आपके और अपने मन के ही रूप-कुरूप को प्रस्तुत किया है। अब आप ही पढ़कर देखें कि यह गाथा कितनी आपकी अपनी है और कितनी उस रेवती की।

नागफनी
कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु'
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-6

| | |
|---|---|
| मूल्य | : तीन रुपए पचास नए पैसे |
| प्रथम संस्करण | : मई, १९५९ |
| प्रकाशक | : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली |
| मुद्रक | : हिंदी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली |

प्यारी बेटी

मनु (शुभ्रा) को

—भिक्खु

ना
ग
फ
नी

# पूर्व खण्ड : विगत

रात उतर आई थी। उसके साथ ही मनुभाई की बाड़ी में चहल-पहल भी शुरू हो गई थी। बाड़ी के घरों में किरासिन तेल की ढिबरियां, लालटेनें और लैम्प जलने लगे थे। किसीको हेलीकोप्टर से उस बाड़ी में उतार दिया जाए तो उसे यह पता ही नहीं चले कि वह बम्बई में है। बम्बई तो वह है जिसकी चौपाटी और ताजमहल होटल प्रसिद्ध हैं; जिसके गेट वे आफ इंडिया और मलाबार हिल्स के हैंगिंग गार्डन प्रसिद्ध हैं; जिसके मैरीन ड्राइव के फ्लैट अपनी सानी नहीं रखते; जिसमें ट्रामें दौड़ती हैं, बसों, टैक्सियों की भरमार है और रेल भी बिजली से दौड़ती है। मनुभाई की बाड़ी में जला करे मिट्टी के तेल की ढिबरी, वहां तो मर्करी ट्यूबों की रौनक रहती है। बम्बई को इसी रूप में जानने वाला यह भी कहेगा कि बम्बई में हर दूसरी फैशनेबल और फिल्मस्टार है। वहां सिर्फ धन्ना सेठ रहते हैं। जिस किसीसे आंख मूंदकर टकरा जाओ, वह करोड़पति नहीं तो लखपति जरूर निकलेगा!

मनुभाई की बाड़ी में चाहे बंबई का ऐसा कोई लक्षण न हो पर उसमें रहने वाले अधिकांश ऐसे ही थे जो दूरदराज शहरों से बम्बई के उसी रूप के मोह में भागे आए थे। जब बम्बई के ताजमहल ने उन्हें शरण न दी तो मनुभाई की बाड़ी ही काम आई। लोगों का कहना है कि मनुभाई ने सट्टे में लाखों कमाया है और हर बड़े बैंक में उसका खाता है। मनुभाई कभी इस प्रसिद्धि का विरोध नहीं करते। फिर भी कोई पूछे कि सेठ इतना पैसा जोड़कर भी तुमने क्या बाड़ी बनवाई। लगता है किसी जमाने में घुड़साल रही होगी। तो मनुभाई का जवाब होता है कि अगर मैंने भी दूसरा ताजमहल बनवा दिया होता तो तुम्हें क्या बम्बई में ठहरने का ठौर मिलता। कहीं सड़क की पटरी पर सोते होते या आवारागर्दी के इल्जाम में सरकार की मेहमानी करते। अरे मनुभाई है कि बेआसरों को आसरा दे रहा है।

मनुभाई की इस गर्वोक्ति में सार है। कुबेरों की बम्बई में अधिक तादाद ऐसे

ही लोगों की है जो मनुभाई जैसों के रहम पर ही मकान पा सकते हैं। जब कोई नागफनी की बाड़ मे घिरी उस वाड़ी की बारकों और आसपास की मनहूसियत को देखकर वहां न ठहरने का इरादा करके लौटने लगता है तो मनुभाई उसे ज्ञान देते हुए कहते हैं—लगता है, बम्बई में अभी नए ही हो। घर से जो पैसे उड़ा लाए हो अभी खर्च नहीं हुए। अभी फिल्म का हीरो बनने का सपना नहीं टूटा। या अभी यही सोचते हो कि घुड़दौड़ में गए नहीं कि मालामाल होकर लौटे। खैर जाओ, पर बाद में मनुभाई का नाम लेकर रोना मत। बम्बई में ऐसी जगह दूसरी नहीं मिलेगी। सीधी जुहू की हवा वहती है। मन ऊबे तो ज़रा उधर को पैदल चले जाओ। मस्ती करो जुहू की बालू में। दौड़ो, सीप बटोरो, घोंघे इकट्ठे करो। भेलपूड़ी खाओ या बालू के मकान बनाकर मकान वाले बन जाओ। बम्बई जाना हो तो एक नहीं दो-दो स्टेशन हैं जहां से बिजली की गाड़ी मिलती है। यह रहा विले पार्ले और वह रहा सान्ता क्रुझ। चाहो तो हवाई अड्डे की ही सैर करो। थोड़ा उधर अंधेरी की तरफ बढ़ जाओ या गोरेगांव ही चले जाओ। फिल्म के स्टूडियो की भरमार है। और सब से बड़ा फायदा यह है कि ट्राम-बस के झंझट से छुट्टी। यह भी जरूरी नहीं कि बिजली का खर्च भी झेलो। अपने घर में रोशनी रखो या अंधेरा। कौन पूछने वाला है! मैं भी तो यहीं एक खोली में रहता हूं। कभी ढिबरी तक जलाने की नौबत नहीं आई। लोग पूछते हैं, 'केम सेठ, अंधेरे में अशर्फियां गिना करते हो।' भला क्या जवाब दूं उन्हें। वे तो ढिबरी जलाकर खटमल ही मारा करते हैं।

मनुभाई का एक और दावा है। वे कहते हैं कि इस वाड़ी को बनवाकर मैंने हज़ार धर्मशाला बनवाने का पुन्न बटोरा है। धर्मशाला में रहने वाला एहसान का बोझ उठाता है और वह भी कितने दिन के लिए। मनुभाई की वाड़ी में २५ रुपये महीना खोली का दो और मज़े से रहो। पगड़ी का नाम नहीं। भलों का गहोरा, हर देश के आदमी का साथ। मराठी, गुजराती, मद्रासी। सिंध के रिफ्यूजी, यू० पी० के भैया। और पैसे वाले पारसी भी। बगल में ही कोठी बनवा रखी है। भला जगह बुरी होती तो क्यों बनवाते। पैसा है तो ताजमहल की छत पर बंगला बनाकर रह लो।

लेकिन सब से बड़ी बात यह है कि मनुभाई और उनकी वाड़ी को चाहे कोई

किराएदार न ढूंढ़ पाए पर वे गरज़मंद लोगों को ढूंढ़ ही निकालते हैं। तीर्थों पर जैसे पंडे अपने यजमानों की खोज में रहते हैं वैसे ही वे किराएदारों की। चाहे बम्बई के बड़े जंक्शन की भीड़-भाड़ हो या जुहू चौपाटी का मेला, गरजमंद को वे ऐसा भांप लेते हैं कि चूक नहीं होती। बढ़िया कपड़े, ढेर-सा सामान और शाही खर्च इनमें से कुछ भी तो उनकी आंखों में धूल नहीं झोंक पाता। चेहरे की किसी सलवट या आंख की किसी झपक या सांस की किसी हरकत से वे जान ही लेते हैं कि उस आदमी को उन्हींकी तलाश है और तब वे स्वयं को ऐसे ही प्रकट कर देते हैं जैसे ग्राह से गज को छुड़ाने के लिए नारायण !

फिर वहां जो एक बार आ बसा जल्दी से छोड़ नहीं पाता। जो छोड़ता है वह अक्सर बम्बई ही छोड़ देता है या उसे बम्बई ऐसी फल जाती है कि खुद मनुभाई महसूस करते हैं कि अब उस किराएदार को उनकी ज़रूरत नहीं रही, अतः जो ज़्यादा पैसों के ख्वाहिशमंद हैं उनके पास उसे चला जाना चाहिए। दूसरे वहां के किराए-दारों में कोई ही ऐसा विरला होता है जिसपर मनुभाई का दो-एक महीने का किराया न चढ़ा हो, और या जिसने गरज़ में पड़कर उनसे उधार लेकर फिर लौटाया हो !

जब कोई मनुभाई से कहता कि सेठ भवें सफेद हुईं, अब तो माया छोड़कर राम भजो, किसके लिए मोह के पंक में फंसे हो तो मनुभाई का उत्तर होता—भगवान् वज्र का हिया न बनाए। जिस मोह में पड़कर मैं हंस-रो सकूं वही मुझे राम-सा प्यारा है। देखो न, यह मेरा कुनबा है। इन्हें मेरी ज़रूरत है और मुझे इनकी !

मनुभाई का आशय होता वाड़ी के किराएदारों से। चाहे किराएदार उनसे नफरत ही करें पर वे लड़ाई के ठीक बाद ही प्रेम की बात करने पहुंच जाते। किसी भी किराएदार से मिले दो-एक दिन हो जाते तो हालचाल पूछने उसके द्वारे पहुंच जाते। जब वह सोचता कि किराया मांगने आया है और बिना मांगे नहीं टलेगा तो वे सिर्फ घर का हालचाल पूछकर ही लौट जाते। कोई समझ ही न पाता उनके मरम को। कोई कहता—सनकी है। कुछ काम नहीं तो लोगों को घर-घर जाकर तंग करें। कोई मनचला उनके मुंह पर ही कुछ ऐसा-वैसा कह बैठता तो वे कहते—कहे लो। तुम नहीं, बम्बई का पानी बोल रहा है। किसको किसकी गरज ! पड़ोसी

रोए तुम गाओ। अरे, आदमी ने आदमी से माया न की तो क्या जानवर करेंगे।

एक दिन मनुभाई एक ऐसे किराएदार को ले आए कि बाडी में हर किसीके सिर पर कुतूहल सवार हो गया। मद्रासी सुंदरम् आर्टिस्ट है। वाटरकलर से तसवीरें बनाता है। वह भी नाक में सुंघनी चढ़ाने के बहाने नम्बर नौ की खोली की खिड़की से अन्दर झांककर किसीको देख लेने के चक्कर में रहता। मनुभाई उसे भांप चुके हैं। पर मोटी मूंछों के नीचे मुस्कराकर रह जाते हैं। सोचते हैं कि जवानी में नहीं ताक-झांक करेगा तो कब करेगा। फिर आर्टिस्ट जो ठहरा।

गाडगिल भी नौजवान है। फिल्मों में एक्स्ट्रा बनने के चक्कर में रहता है। कई बार किसी नाचने वाली नायिका के चारों ओर की भीड़ में खड़ा होकर आंखें नचाते हुए फोटो खिंचवा चुका है। सुबह होते ही स्टूडियो के चक्कर में निकल पड़ता है और देर रात लौटता है। फिर भी उसे आसपास की हवा से पता चल गया है कि बाड़ी में कोई अजूबा आया है।

नम्बर पांच में जो अधेड़ उम्र की औरत रहती है वह बाड़ी भर की मौसी है। नाम तो उसका शायद मनुभाई भी नहीं जानते। वह भी उसे मौसी ही कहते हैं। मौसी का नाक-नक्श अच्छा है और रंग भी चोखा। पर चाल-ढाल, बातचीत में कुछ ऐसा लटका है जो उसकी उम्र और स्त्रीत्व को नहीं फबता। उसे तो इसी बात की शिकायत है कि नए किराएदार ने आकर उससे यह भी नहीं कहा कि मौसी तुम्हारे आसरे बम्बई में पड़े हैं। ज़रा ख्याल रखना। इसीसे वह जब भी नंबर नौ की खिड़की से झांकती है तो कुछ ऐसे अन्दाज़ से कि देखने वाला समझे कि किसी मकड़ी की तलाश में है।

सिंधी रिफ्यूजी अपने पूरे घर को लेकर ही बाड़ी में रहता है। दो जवान लड़कियां हैं जिनपर मौसी बड़ी मेहरबान है। बीबी है, एक लड़का भी, अभी किसीको काम-धंधा नहीं मिला। जो जमा पूंजी किसी तरह ले आए हैं उसीसे गुज़ारा हो रहा है। सारा घर इसी फिक्र में रहता है कि क्या काम किया जाए। लड़कियां फिल्म के लिए तैयार हैं। मौसी ने कभी अकेले में यह मंत्र दिया भी है और गाडगिल के ज़रिए किसी बड़े डायरेक्टर से मिलवाने का भरोसा भी दिलाया है। पर मां को प[illegible] नहीं। हां, बाप-भाई को ऐतराज़ नहीं। नम्बर नौ में कोई आया है इसका असर [illegible]स

परिवार पर पड़ा नहीं। लड़कियां दुनिया में अपने अलावा सिर्फ फिल्मी हीरो और डायरेक्टर-प्रोड्यूसरों को ही जानना चाहती हैं। मां दुखियारी है। उसकी एक लड़की पाकिस्तान में ही छूट गई है और बड़ा लड़का वहीं मारा जा चुका है। बाप-बेटे रोजगार की परेशानी में हैं। अतः उन्हें न होश है, न फुर्सत कि नम्बर नौ की खोली के किराएदार से उल्फत बढ़ाएं।

हां, नम्बर तीन की खोली का न्हाना भाई जरूर ही नम्बर नौ की खिड़की से मुंह फेरकर चलता है। न्हाना भाई का सिर ज़मीन से सिर्फ तीन फुट ऊंचा रहता है। पर दिमाग जाने किस ऊंचाई पर। वैसे बंक में सिर्फ क्लर्क है। गाडगिल ने एक दिन उससे पूछा—न्हाना भाई, यह नौ नम्बर में तो कोई बड़ा ज़ोर का माल आया है। तुमने देखा ?

न्हाना भाई ने तपाक से जवाब दिया—किस-किसको देखूं ! नम्बर नौ में नौ साल में नौ सौ किराएदार आकर जा चुके हैं। न्हाना भाई ! यही सब देखने का काम करे तो बस हो लिया !

गाडगिल ने शरारत के साथ हंसकर कहा—न्हाना सेठ, आदमी तो तुम लाजवाब हो। बस ज़रा कद ने धोखा दे दिया।

न्हाना की आंखों में खूनी डोरे चमक उठे। लंबे-तगड़े गाडगिल को उसका रोष मेमने की खीज सी लगा। वह हंस पड़ा। न्हाना भाई इसपर भी गम न खा सका। चलते-चलते बोला—गाडगिल, तुम्हारे जैसों की बम्बई में कमी नहीं। पर न्हाना अकेला है। जिस दिन अपने जैसा दूसरा देख लूंगा, बम्बई छोड़ दूंगा। नारियल सा लंबा होने में खासियत भी क्या। ईश्वर की फिजूलखर्ची की मिसाल हो। तुम लोगों के बनाने में बेकार इतना मसाला खर्च किया। काम तो कोई खास करते नहीं।

गाडगिल उसकी बातों से कभी विचलित नहीं होता। कह दिया—चींटों के राजा बनने लायक हो।

न्हाना भाई ने किसी तरह अपने को संभाला। कुछ कहना चाहा पर कह न पाया। जैसे उसके मन के भीतर कोई चीख रहा था—चींटों का नहीं, हाथियों का राजा बनूंगा। वजूद से ताकत मापते हैं। ताकत बिजली की लहर सी है जो पतले

से तार में बंद होकर कहर मचा सकती है।

वह चला गया।

नम्बर नौ खोली में नई लालटेन जल रही थी। जो नए किराएदार से ज़्यादा इसकी नई गृहस्थी का आभास दिला रही थी। मनुभाई रात में बिना लाठी के न निकलते। लाठी उनके लिए टार्च का काम करती थी। जैसे ज़मीन को लाठी से छू-छूकर रास्ते की नब्ज़ देखा करते हों। तभी उनका दावा था कि उन्हें ज़िन्दगी में कभी ठोकर नहीं लगी। वैसे उनकी इस उक्ति में श्लेष भी था। पर उसे समझ कम ही लोग पाते थे। जब कोई किराएदार शिकायत करता कि बाड़ी का रास्ता तो साफ करा दो सेठ। तो उनका उत्तर यही होता कि जहां की सफाई ज़्यादा ज़रूरी है वहां की सफाई पर ध्यान दो। प्रश्नकर्ता व्यंग्य समझ जाता तो चुप हो जाता, अन्यथा जिरह करते हुए कहता—सेठ, तुम्हें हमारे हाथ-पांव टूटने का भी ख्याल नहीं। इसपर मनुभाई मूंछों को थोड़ा सा कंपाकर कहते—दूसरों के ख्याल से रक्षा नहीं होती। अपना ख्याल आप रखो भाई।

किराएदार ज़्यादा जिरह नहीं करता। उसे मनुभाई की बाड़ी में आने से पहले बम्बई की असलियत का पता चल चुकता है। इसीसे ऊबड़-खाबड़ रास्ते के साथ-साथ सेठ की बेतुकी बातों को भी बर्दाश्त कर लेता है।

जब रास्ते की नब्ज़ पहचानते हुए बाड़ी के बीच के छोटे से फूटे चबूतरे को पीछे छोड़कर आगे बढ़े तो मनुभाई की आंखों को नम्बर नौ खोली की नई लालटेन ने खींच लिया। खोली की खिड़की खुली थी, पर दरवाज़ा बंद था। जब से यह नया किराएदार आया था, मनुभाई उसका हालचाल न पूछ पाए थे। खिड़की से झांकती हुई लालटेन की रोशनी ने उन्हें बुलावा दिया था। वे उसी तरफ को घूम पड़े। पर जैसे ही खोली के आगे के चबूतरे पर पांव रखा, रोशनी फीकी सी होती जान पड़ी। मनुभाई ने खिड़की से उड़ती सी नज़र डालकर देखा कि किसी खूबसूरत में

हाथ ने उठकर बत्ती नीची कर दी और प्रकाश को अंधेरे से घुला-मिलाकर चूड़ियों की खनक से भर दिया। उस खनक ने जैसे मनुभाई को इशारा करके कहा हो कि फिर आना! आराम का वक्त है।

मनुभाई लौट गए। लाठी से ज़मीन को छुआ तक नहीं। कहीं किसी तरह की आहट पाकर चूड़ियों की खनक को नाराज़गी न हो जाए। मनुभाई वहां से लौटते हुए अपनी खोली की ओर बढ़े। जिसके ऊपर नीम का बूढ़ा पेड़ सदा छतरी ताने रहता है। पर इस समय उन्हें न तो अपनी खोली दिखाई दे रही थी और न वह बूढ़ा नीम। उनकी आंखों के आगे-आगे, उनकी लाठी से भी दो कदम बढ़कर अधर में एक चीज़ बढ़ रही थी और वह था चूड़ियों वाला हाथ।

मनुभाई चुपचाप नीम तले तक बढ़ आए। नीम के नीचे बने छोटे से चबूतरे पर पीली निबोलियां और सूखी पत्तियां पड़ी थीं। पर इस अंधियारे और अन्य-मनस्कता में मनुभाई के लिए उनका कोई अस्तित्व न था। वे दो-चार निबोलियों को पटखाते से धम से चबूतरे पर बैठ गए। हाथ की लाठी बगल में रख दी। पर सामने झूलते हुए हाथ को न हटा सके। कम ही कोई विषय उन्हें इस प्रकार आकृष्ट कर पाता था। पर वह चूड़ियों से भरा हाथ निरा हाथ न था बल्कि किसी कथा के आमुख सा अनेक कुतूहलों का उत्पादक था।

कितनी ही देर हो गई। नौमी का चांद नीम की टहनियों के झरोखों में से झांकने लगा था। पारसी के दुखने बंगले की उस तरफ वाली सपाट दीवाल दिन से ज्यादा खूबसूरत दीखने लगी थी। एक किरण मनुभाई की खोली के ताले पर भी पड़ रही थी। अंधियारे के घूंघट में वह ताला बुल्ला-सा चमक रहा था। नीम अपनी डालों-टहनियों की भुजाएं बढ़ाकर खोली पर घिरे अंधियारे की रक्षा कर रहा था। पर पास-पड़ोस में बिखरी चांदनी की रौनक से वह अंधियारा फीका पड़ चला था। कमसिन चांदनी की बुलाहट पर चित्रकार सुंदरम् अपनी खोली से बाहर निकल आया था। सफेद लुंगी और धौली चांदनी के बीच उसका काला कृश शरीर आवरणहीन होने की वजह से खूब चमक रहा था। उसने नागफनी के कांटों पर खेलती हुई फीकी चांदनी को देखा, फिर चांद की खोज में आसमान को निहारा। चांद को देखकर उसे सुंघनी की प्रेरणा मिली। उसने आंटी में से सुंघनी

की शीशी को निकाला और चुटकी भर सुंघनी लेकर दोनों नासापुटों में चढ़ा लिया। मस्तिष्क में हरकत सी हुई और एक हल्की सी छींक के साथ वह आनंद-मग्न सा दिखाई देने लगा। काले होंठों के बीच सफेद दांत कुछ-कुछ चमक रहे थे। वह उसी मगनता में खोली के आगे के चबूतरे से उतरकर अनायास ही मनुभाई की खोली वाले नीम की तरफ बढ़ आया। वहां मनुभाई को चुपचाप बैठा देखकर उसे कोई अचरज नहीं हुआ। पास जाकर बोला—सेठ, चांदनी रात में नीम तले बैठना अच्छा लगता है न!

मनुभाई ने आवाज़ तो सुनी पर शब्द नहीं पकड़ पाए थे। अतः चौंकते से कह दिया—एं!

सुन्दरम् के कलामय मन में नौमी की यह चांदनी कुमारी के स्पर्श सी थिरकनें भर रही थी। उसे मनुभाई की अन्यमनस्कता में कोई विचित्रता नहीं लगी। वह कहता गया—चांदनी मुझे अपनी बहन सी लगती है। सिर्फ उसीको देखकर मेरे मन में इतनी गुदगुदी होती है।

मनुभाई के कान में 'बहन' शब्द पड़ा। अन्यमनस्कता छिपाते से पूछ बैठे—तुम्हारी बहन आई है। कुछ चाहिए खाट-बाट।

सुन्दरम् हंसते हुए बोला—मेरी बहन यहां कहां? उसका तो ब्याह हो गया। मदुरा में है। उसे चांदनी रात में गोपुरम् देखना बड़ा अच्छा लगता है। पर उसकी इस खुशी में यही विवशता बाधक होती है कि वह उनकी चोटी पर नहीं पहुंच पाती। मदुरा की मीनाक्षी के गोपुरम् तो बड़े ऊंचे हैं।

मनुभाई ने गोशाला शब्द तो सुना था पर गोपुरम् पहली-बार ही कान में पड़ा था। फिर भी उसने कह दिया—हां बड़े ऊंचे होते हैं, हाथों से भी ऊंचे।

सुन्दरम् ठठाकर हंस पड़ा। उसकी हंसली की हड्डियां उस हंसी में झनझना-सी उठीं। पसलियां सपोलियों सी खिच गईं। इस तरह वह बहुत कम हंसता है। हंसते-हंसते बोला—सेठ, तब तुमने गोपुरम् नहीं देखे। पारसी के बंगले की छत पर इस नीम को खड़ा कर दो और तब करो कल्पना गोपुरम् की।

मनुभाई ने संभलते हुए कहा—ओ, बहुत ऊंचे होते हैं।

सुंदरम् ने प्रत्यय कराया—बेहद ऊंचे! जब मैं अपने मन का चित्र बर्सं

लूंगा तो जानते हो क्या करूंगा !

मनुभाई कुछ पूछे कि वह कह गया—किसी चांदनी रात में मदुरा के गोपुरम् पर चढ़कर कूद पड़ूंगा। एक कलाकार के लिए इससे महान् मृत्यु भी भला क्या हो सकती है !

मृत्यु में क्या महानता है, मनुभाई की समझ में न आया। मृत्यु सुंदरम् से कहीं अधिक उनके पास थी। उसके सामीप्य को वे खुद अनुभव करने भी लगे थे। पर वह उन्हें गर्मी की दुपहरी में काला कंबल ओढ़कर सोने वाले की मनहूस नींद से ज़्यादा अच्छी या बुरी कभी नहीं लगी थी। इसीसे सुंदरम् को मोह से भरते हुए कह दिया—ऐसा कभी मत करना, नहीं तो तुम्हारी बहन उसी गोपुरम् के नीचे बैठकर रोया करेगी।

सुंदरम् सिहर उठा। चांदनी रात की ओस आंसू बन गई। जिस चित्रफलक पर उसने दूर बैठी आकांक्षा के मानस-चित्र को उभारा था उसपर जैसे नीले काले रंगों से भरी सैकड़ों-हज़ारों कूचियां टूट पड़ीं। उसका मन बुझ सा गया। मन को उत्तेजना देने के लिए उसने सुंघनी निकाली और चुटकी भरकर नासापुटों में जमाई। पर इस बार सुंघनी ने भी साथ नहीं दिया। मनुभाई से उसकी परेशानी न छिपी। उन्होंने स्वयं ही मृत्यु के प्रसंग को बदलकर चांदनी की बात शुरू कर दी—बाबू, मुझे तो चांदनी रात में पीपल के डोलते हुए पत्ते बड़े प्यारे लगते हैं। तुमने नहीं देखा कभी ? लगता है जैसे डालों में पत्ते नहीं, तारे टंके हों ! या नाचती हुई चांदनी के पैरों में बंधे घुंघरू चमक रहे हों ?

सुंदरम् को उस वर्णन ने मोह सा लिया। बोल उठा—सेठ, तुम कविता नहीं लिखते ?

मनुभाई को लगा कि सुंदरम् मज़ाक कर रहा है। बोले—कविता का पीपल से क्या संबंध ?

सुंदरम् को निराशा हुई। मन में सोचा : मनुभाई सचमुच ही कवि नहीं हो सकता था, फिर भी कहा—सेठ, मन में गुदगुदी पैदा कर सके ऐसी हर चीज़ कविता हो सकती है। कभी चांदनी रात में जुहू गए हो ? उस चांदनी में नारियल के पेड़ों, तट के बालू और सागर की अजगर सी बलखाती हुई लहरों में कविता ही तो है।

मैं उस दृश्य का चित्र बनाऊंगा जिसमें समुद्र की उमड़ती हुई लहरें चांदनी के बल-खाते हुए अंगों सी लगती हैं। मेरा वह चित्र भी कविता होगा। कोई चांदनी में समुद्र के बालू को उड़ा-उड़ाकर उसीमें आप भी लोटे तो भी कविता ही लगेगी मुझे। हिमालय की जिन चोटियों का बर्फ कभी नहीं पिघला उनमें कितनी बड़ी कविता है। कन्याकुमारी की जिन चट्टानों पर सागर सदा मस्तक पटकता रहा उनमें कितनी अद्भुत कविता है। हमारे त्यागराज जब गाते थे तो कविता ही बरसती थी। कृति में कविता, स्वरों में कविता! मुझे अपनी बहन भी कविता लगती है। ठीक वैसी जैसी महाकवि कम्बन की कविता। मैंने सैकड़ों चित्र बनाए, पर अपनी बहन का चित्र आज तक नहीं बना पाया। उसमें तो मुझे इतनी बड़ी कविता दीखती है कि मैं अभी उन रेखाओं, उन रंगों को जानता ही नहीं जो उस कविता को लिख सकें। वह शायद मेरी अंतिम कविता होगी : रेखाओं में अंकित कविता, रंगों से भरी हुई कविता!

कहते-कहते सुंदरम् भावावेश से भर उठा। उस भावना के दुर्लभ क्षण में वह स्वयं मनोरम छंद सा लगने लगा था। वह सब कुछ भूल किसी तमिल कविता को अलापने लगा। मनुभाई प्यार से भरकर उसे देखते रहे। इस क्षण वे नौ नंबर की खोली का किराएदार भी भूल चुके थे। और चूड़ियों से भरे हुए जिस हाथ ने उन्हें किसी रहस्य का संकेत देकर अनमना कर दिया था उसे भी इस क्षण याद नहीं कर पा रहे थे। इस समय सुंदरम् के अलावा जो विचार उनके मन में था वह यही था कि सुंदरम् से कहकर अपना चित्र बनवाएं। चित्र में उनकी यह खोली, नीम का यह पेड़, इस चबूतरे पर बैठे हुए वे स्वयं और पृष्ठभूमि में फैली हुई नागफनी की बाड़ हो।

मनुभाई नीम के चबूतरे पर फिर अकेले रह गए। सुंदरम् अपनी खोली में आकर किसी अधूरे चित्र पर काम करने लगा था। उसकी खोली का दरवाजा खुला

था और लैंप का मद्धिम प्रकाश खिड़की-दरवाजे से झांक-झांककर चांदनी के फैले हुए आंचल को अजीब झिझक और ललक के साथ देख रहा था। मनुभाई की निरर्थक दृष्टि कभी-कभी खिड़की से झांकते हुए उस प्रकाश पर पड़कर लौट आती। वह उस नीम के चबूतरे से बाड़ी का अधिकांश भाग देख सकते थे। जो हिस्सा वहां से नज़र न आता था उसमें नौ नम्बर की खोली भी थी। नीम के पिछवाड़े में एक खूब चौड़ी मन वाला कुआं भी था। कुआं काफी बड़ा, पर कम गहरा था। पानी खींचने के लिए उसमें कहीं कोई घिरड़ी न लगी थी। कुएं की परली मन को छूती हुई नागफनी की बाड़ जा रही थी जो मनुभाई की इस छोटी सी रियासत का सीमान्त थी। उनकी दृष्टि इन सब चीजों को देखती रही। कभी पारसी के दुखने बंगले की दीवाल—शून्य सी दीवाल आंखों के आगे आकर अड़ जाती। पर आंखों से जो कुछ भी दीखता वह मन को उलझा न पाता। मन तो लालटेन को मद्धिम करने को उठे हुए हाथ में अटक चला था। पर यह हाथ का सौंदर्य-लावण्य न था जो मनुभाई के वृद्ध मन को परेशानी में डाले था। चूड़ियों की खनक उनके कानों में गूंज रही थी। कांच की चूड़ियों से मिली सोने की आवाज़। उससे भी बढ़कर थी कौंध जो अंगुली में पहनी हुई अंगूठी के नग से लालटेन की लौ पड़ते ही सूरज की पहली किरण सी फूट पड़ी थी। अवश्य ही अंगूठी में हीरा जड़ा था। मनुभाई उन सोने की चूड़ियों, हीरे की अंगूठी और नम्बर नौ की खोली में कोई साम्य ही नहीं बैठा पा रहे थे। यही उनकी प्रस्तुत चिंता का विषय था।

वे स्वयं ही तो उस किराएदार को लाए थे। चौपाटी के बदरंग बालू में जहां भेलपुरी के पत्ते, चुसी हुई गंडेरियों का फोकट और 'सींगदाना' के छिलके गंदगी बढ़ा रहे थे और उनसे निरपेक्ष बच्चे उसी बालू में हुड़दंग मचा रहे थे, वे अपने इस किराएदार से मिले थे। खोमचे वालों के शोरगुल, चंपीवालों की पुकार, 'डाभ' और पीने का पानी बेचने वालों की आवाज़ों में खोए रहने पर भी वे इस किराएदार को खोज सके थे।

उस समय वह स्त्री अकेली थी। आंखों में परेशानी का काजल और माथे पर चिंता का घूंघट। मनुभाई की क्षीण होती हुई दृष्टि उसपर पड़कर रुक गई थी और रुकर अचानक ही हाथ मूंछों से उलझकर उनके मन की विशेष स्थिति का परिचय

देने लगा था। सामने सागरगरज रहा था, पर वह उसे नहीं देख रही थी। बदरंग बालू पर रंग-बिरंगी दुनिया विहार कर रही थी पर उसका ध्यान उस ओर भी न था। अकेली थी। फिर भी किसीकी प्रतीक्षा में भी न लग रही थी। साथ ही यह भी स्पष्ट था कि वह बम्बई की नहीं बाहरी है। गुजराती या मराठी भी नहीं जिनका बम्बई तीर्थ है।

इतने में एक युवक आया। बिना कुछ कहे स्त्री के पास बैठ गया था। मनुभाई फौरन समझ गए थे कि वह अजनबी नहीं। स्त्री को जानता है। शायद साथी है। शायद पति या भाई है। स्त्री देखने में २५ की लग रही थी। युवक भी कुछ वैसा ही। शायद दो-एक बरस छोटा ही। उसके चेहरे पर कच्चापन था। अच्छे डील-डौल के बावजूद भी कहीं कच्चापन था जिसका संबंध मन तक की अपरिपक्वता से ही होता है।

मनुभाई को सब से बड़ी परेशानी उनके मौन से थी। वे बात करते, हंसते-झगड़ते, इधर-उधर घूमते, कुछ खाते-पीते तो उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। पर जैसे बंद सीप के पास बेजान घोंघा पड़ा हो, ऐसी उनकी स्थिति थी।

उनका निरीक्षण करते-करते मनुभाई को काफी देर हो गई थी। वे सहसा अपने उस निरीक्षण के भद्देपन से चौंक से उठे और चुपचाप आगे बढ़ गए। उन्होंने कितना ही समय इधर-उधर बिताया, पर मन बारबार उन्हें चौपाटी की रेती की ओर खींच रहा था। रात का कोई नौ बजने वाला था। चौपाटी की हलचल हल्की पड़ने लगी थी। भीड़ सिमटती जा रही थी। वे चौपाटी पर लौट ही आए। उन दोनों को उसी जगह बैठा देखकर उन्हें बड़ी खुशी हुई थी। जैसे बिछुड़े हुए स्वजन मे ही मिल गए हों। इस बार वे बिना हिचक के उनके पास चले आए थे। स्नेह भरे स्वर में पूछा था—क्यों भाई, परदेसी हो ?

उन दोनों की आँखें उठीं। सामने एक लंबे डील पर कृश शरीर का वृद्ध था। बोलने में जिसकी बड़ी-बड़ी सफेद मूंछें हिल रही थीं। युवक उसे देखकर कुछ परेशान सा हो उठा था। उसका 'हां, ना' कहने का प्रयत्न भी वृथा गया। पर स्त्री का चेहरा चमक उठा था। उसने बड़े विश्वास के साथ कह दिया था—हां।

उस 'हां' के उत्तर में मनुभाई उनके पास ही बैठ गए थे। युवक की परेशानी

बढ़ चली थी। स्त्री की आंखों की चमक दुगुनी हो गई थी। मनुभाई ने बैठते हुए पूछा था—बम्बई देखने आए हो ?

प्रश्न उसने युवक की ओर देखकर किया था, पर उत्तर स्त्री ने दिया—नहीं।

—तो धंधे की तलाश है—मनुभाई का दूसरा सवाल भी युवक ही से था।

इस बार वह किसी तरह से उत्तर दे सका—हां !

मनुभाई मूंछों ही मूंछों में मुस्कराए। बोले—बड़ी अजीब है बम्बई। हर कोई खिंचा चला आता है; जाने क्या सोचकर खिंचा चला आता है। तुम तो बड़े हिम्मत वाले निकले भई। साथ में घर वाली को भी लेते आए।

इसपर तो युवक की परेशानी माथे पर पसीने की बूंद बनकर चमक आई थी। उस परेशानी को मनुभाई ने चाहे भांपा न हो, पर स्त्री से छिपी न रह सकी। इसीसे उसकी आंखों में कुछ खीज, कुछ रोष उमड़ पड़ा था। पर जैसे ही मनुभाई की उपस्थिति का बोध हुआ, वह हठात् लजा उठी थी। मनुभाई आज तक जान नहीं पाए कि वह अभिनय था या सचमुच की लाज थी।

मनुभाई के नए प्रश्न ने उस स्थिति को कुछ सम्हाल लिया था! उन्होंने पूछा—होटल में हो ?

स्त्री ने युवक के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कह दिया—नहीं, धर्मशाला में। आज आखिरी दिन है।

मनुभाई ने इसपर आत्मीयता के साथ कहा—खोली चाहिए। मेरे पास है। कल ही मिल जाएगी।

इस बार वे दोनों ही चकित हो गए। मकान की समस्या इतनी आसानी से हल हो जाएगी, यह उन्हें आशा ही न थी। युवक का मन हल्का हुआ और आंखों में उम्र के उपयुक्त चमक उभर आई। स्त्री ने प्रसन्नता के पनपने के साथ ही पूछा—किराया ?

—जितना तुम दे सको—मनुभाई का उत्तर था।

फिर उसी रात को वे दोनों मनुभाई की बाड़ी में आ गए थे। रास्ते में जाने उनके मन में कितना ऊहापोह हुआ, कितनी अच्छी-बुरी-बातें उठीं, मनुभाई के प्रति कितना विश्वास-अविश्वास जागा, और बाड़ी में पहुंचकर बम्बई कैसी लगी।

वह रात उन्होंने उस खोली में बिना लालटेन या किसी खास व्यवस्था के उस अंधेरे में ही विताई थी।

पर जाने क्यों तब मनुभाई को यह न लगा था कि उस स्त्री की हैसियत इस खोली से ऊंची है। इस समय यही उनकी परेशानी का कारण था। उसी परेशानी में वे उठे और नीम के पिछवाड़े के कुएं की तरफ चल पड़े।

ज्यों-ज्यों चांद की दीप्ति बढ़ती जा रही थी त्यों-त्यों तारों की टोलियां क्षीण होती जा रही थीं। नीम की एक लम्बी शाखा जो पेड़ के मुख्य परिवार को छोड़कर नीचे ही नीचे दूर तक फैली चली गई थी, कुएं के ठीक बीचोंबीच से होती हुई नागफनी की बाड़ भी पार कर गई थी। दिन में गिलहरियां उसपर दौड़ लगाया करतीं और शाम को थके-हारे पांखी उसपर बैठकर थकान मिटाया करते। इस समय वह सुनसान की छाती में अंधियारे के खंजर सी गुबी थी। चांद इस समय कुछ ऐसी स्थिति में था कि उस शाखा की परछाईं कुएं की मन पर अजगर सांप सी लोट रही थी। पर इस समय मनुभाई के लिए आसपास की किसी भी चीज़ का कोई अस्तित्व न था। चूड़ियों की खनक से संगीतमय सुन्दर हाथ की हीरे की अंगूठी की दमक फणिधर की मणि सी चमक उठती। उसी चिन्ता में वे कुएं की मनि पर बैठने जा रहे थे कि किसी चीज़ के स्पर्श से चौंक पड़े। आत्मस्थ होकर देखा तो जिस स्थान पर बैठने जा रहे थे उस जगह न्हाना भाई को लेटे पाया। उन्होंने गुजराती में पूछा—न्हाना भाई, तुम!

उसने उत्तर दिया—हां सेठ। खोली में नींद नहीं आ रही थी।

मनुभाई ने कहा—गर्मी जो है।

न्हाना भाई बोला—नहीं, खटमल बेहद हैं।

मनुभाई बोले—छोटा सा जीव इतने बड़े आदमी को परेशान कर देता है। काटता क्या है बदन में अंगारे रख देता है।

न्हाना भाई को 'छोटे से जीव' की यह प्रशस्ति बड़ी अच्छी लगी। समर्थन में बोला—आकार नहीं, शक्ति होनी चाहिए। शेर कितने बड़े हाथी को मार डालता है !

पर प्रसंग आगे न बढ़ सका। मनुभाई वहीं पास में बैठ चुके थे। कुछ देर मौन रहा। फिर मनुभाई ही बोले—नए किराएदार आए हैं। मुलाकात हुई उनसे।

न्हाना भाई ने उपेक्षा से उत्तर दिया—मुझे दूसरों के बारे में जानने की बहुत कम फुर्सत रहती है। पिछले नौ साल में तुम्हारी इस बाड़ी में जाने कितने किराए-दार आए और कितने गए। सब का हिसाब रखता तो मेरे बैंक का सब से मोटा रजिस्टर भर जाता।

पर मनुभाई ने जैसे उसकी अनिच्छा को महत्त्व ही नहीं दिया। कहा—औरत किसी बड़े घर की मालूम देती है। तुमने देखा तो होगा। क्या राय है ?

न्हाना भाई को आत्म-अभिव्यक्ति का कुछ और अवसर मिला। बोला—सेठ, न्हाना भीष्म है। राह चलती औरत वैसे ही नहीं दिखाई देती जैसे पांव तले की चींटी। जानते हो जब नौ साल पहले बम्बई आया था तो यह क़सम उठाई थी कि बम्बई की किसी औरत को फूटी आंख भी नहीं देखूंगा।

—ऐसा क्यों ?—मनुभाई ने पूछा।

न्हाना ने बताया—मुझे नफ़रत है उनसे।

—नफ़रत !—मनुभाई बच्चे के से अचरज में भरकर पूछ बैठे।

न्हाना की नसों में तनाव सा आ गया था। वह सहसा उठ खड़ा हुआ। मन में कुछ ऐसा कड़ापन आया जैसे वामन ने तीनों लोकों को नापने का संकल्प किया हो। वह कुएं की मन के ऊपर ही इधर से उधर घूमने लगा। मनुभाई ने मीठे स्वर में पूछा—तुम कुछ परेशान हो न्हाना भाई, क्या बात है ?

वह कुछ देर तो चुप ही रहा। फिर बोला—बात···बात ऐसी है कि मैं आज तक किसीको न बता सका। पर तुम्हें बताऊंगा सेठ ! मालूम है इस समय मेरी उम्र क्या है ?

मनुभाई ने अनुमान लगाया—होगी बीस के आसपास !

न्हाना ने उसके अनुमान पर हंसना चाहा। पर उस मनोदशा में हंसी बुल्ले

सी फट गई। शब्द भी नहीं हुआ। बोला––सेठ नौ साल तो तुम्हारी खोली में ही कट गए। तुम्हारी बम्बई में तब आए भी एक साल हो गया था। तुम्हारी बम्बई में जब आया तब मेरी उम्र बीस मे पांच ज्यादा थी।

मनुभाई ने कहा––अचरज की बात है। तब तो यही कहूंगा कि तुम्हारी उम्र और औरत के मन का पता लगा सकना नामुमकिन है।

न्हाना उत्तेजित होकर बोला––औरत की मिसाल मत दो। मैं जानता हूं उनके मन को। तब···तब था मैं बीस साल का। घर में और कोई न था सिवा पिता के। मां जनमते ही मर गई थी। भाई-बहन और कोई था नहीं। पिता ने ही पाला। दूसरी शादी तक नहीं की। जब मैं बीस का हुआ तो उनके मन में आया कि बेटे की शादी करें। मैं दसवां पास कर चुका था। उतना पढ़ा-लिखा मेरी बस्ती में कोई नहीं था। वहीं एक ग़रीब विधवा थी। उसके एक लड़की थी। पिताजी को वह पसन्द आई। विधवा से उसे मेरे लिए मांगा। उसने उनका बड़ा एहसान माना। ऐसा घर-बार मिल सकेगा, उसने सपने में भी नहीं सोचा था। पर······

न्हाना की सांस फूल उठी थी। मनुभाई उसकी विकलता को समझकर चुप ही रहे। कुछ रुककर उसने कहना शुरू किया––पर लड़की ने कहा: मैं इससे शादी नहीं करूंगी। जबर्दस्ती करोगे तो ज़हर खा लूंगी। जानते हो उसने ऐसा क्यों कहा? क्योंकि मैं ताड़-सा लंबा न था। उसे अपनी खूबसूरती पर नाज़ था। मैंने उसकी बात सुनी और तभी क़सम खा ली कि···

वह फिर रुक गया। उसकी ज़ुबान लड़खड़ा गई। फिर किसी तरह हकलाते हुए वाक्य पूरा किया––कभी शादी नहीं करूंगा।

मनुभाई ने बड़प्पन के साथ कहा––वह तो गुस्से की कसम थी न्हाना भाई। अब भूल जाओ।

––नहीं सेठ! ––न्हाना ने पूरे जोर के साथ कहा––क़सम तोड़ने के लिए नहीं खाई थी। पिताजी की मौत के बाद जब बम्बई के लिए चला था तो लोगों ने कहा था कि 'न्हाना' सदा के लिए गया। अब औरत की मोहनी से नहीं बचेगा। मैं मन ही मन हंस पड़ा था। तब मैंने दूसरी कसम उठाई थी कि औरत से बदला लूंगा। उसके रूप के गर्व को पैरों तले रौंदूंगा। बम्बई का सारा सौंदर्य

एक ओर और न्हाना एक ओर।

इतना कहकर उसने सीना तानकर गर्व से सिर ऊंचा किया। मनुभाई उसकी उस मुद्रा पर कठिनाई से हंसी थाम सके। तभी एक चमगादड़ उनके सिरों पर से उड़ती हुई कुएं पर फैली हुई नीम की डाल पर लटक गई। जैसे चांदनी की चुनुर में अंधियारे की थेगली लग गई।

मनुभाई ने चमगादड़ को देखा और कहा—चलो हम लोग चलकर सोएं। रात काफी बीत चुकी लगती है। चमगादड़ों तक को नींद आने लगी।

पर न्हाना भाई इस समय आवेश में था। आज आधी रात में उसे एक ऐसा श्रोता मिला था जिसपर वह स्वयं को उंड़ेल सकता था। बोला—सोना सेठ। ऐसी जल्दी भी क्या? आज तुमने न्हाना को मुखर किया है तो उसकी सुनो भी। तुमने दुनिया देखी है। तुमसे एक बात पूछूं सेठ!

मनुभाई उठता-उठता फिर बैठ गया। न्हाना उसके पास चला आया। उसका भारी सिर छोटे से धड़ पर बड़ा बेतुका लग रहा था। उसने बड़ी गंभीरता से पूछा—सेठ, मुझे देखकर लोग हंसते हैं। अगर मेरे पास इतना रुपया हो कि बैंक खोल सकूं, मिलें चला सकूं, ताज को खरीद सकूं, मेरे घोड़े रेस में दौड़ें, मेरी हुंडियां बाजार में चलें, मेरे नाम की धर्मशालाएं, स्कूल और अस्पताल हों, मैं हर दिमाग को खरीद सकूं, हर रूप को चाकर बना सकूं, हर ताकत पर हुक्म चला सकूं, तो बोलो क्या तब भी लोग मुझपर हंसने की हिम्मत करेंगे। मैं बम्बई वही ताकत पैदा करने आया हूं। मैंने यहां आकर रुपए की ताकत को अच्छी तरह समझ लिया है। सेठ, तुम्हारे पास इतना रुपया है, पर उसकी ताकत को जाने क्यों नहीं समझते। क्यों कंगालों की तरह इस खोली में पड़े रहते हो। बोलो, अगर मैं कुबेर बन जाऊं तो क्या······

मनुभाई की मूंछें हिलने लगी थीं। उन्होंने हाथ की लाठी को बगल में लिटा दिया था। उसके वाक्य को स्वयं पूरा करते हुए बोले—सब कुछ न खरीद लूंगा! हां, सभी कुछ खरीद सकोगे: रुपये से मिलने वाली हर चीज़ खरीद सकोगे। उठे हुए सिर झुकेंगे, पर मानपूर्वक नहीं। रूप खुशामद करेगा, पर प्यार नहीं। तन ऐश्वर्य को पा लेगा, पर शांति नहीं! न्हाना भाई, मैं खुद उस शांति को पा नहीं

सका। उसके लिए मैं अपना सब कुछ देने को तैयार हूं।

न्हाना ने शंका की—शांति सब कुछ देकर मिलेगी ?

—नहीं जानता—मनुभाई ने किसी सोई हुई पीड़ा को कुरेदते हुए कहा—यह जरूर जानता हूं कि जिसे दुनिया 'सब कुछ' कहती है, वह सब पाकर भी नहीं मिली।

न्हाना को मनुभाई की बातों में सार लगा। पर बुद्धि के स्वीकार कर लेने पर मन विरोध से भरा था। उसके मन को लग रहा था कि सेठ मन का कमजोर है। अपने ऊपर भरोसा नहीं। तभी, तभी ऐसा कहता है। उसने कह भी दिया—सेठ, तुमने कहीं शांति देखी है ?

मनुभाई को इस प्रश्न ने चौंका सा दिया। वह उत्तर दे ही न सका। उसके मौन पर न्हाना गर्व से बोल उठा—वह कहीं नहीं है, वह कहीं नहीं है! वह झूठ है, धोखा है!

वह कहीं नहीं है, वह कहीं नहीं है! वह झूठ है, धोखा है!—ये शब्द धक्का सा दे रहे थे। मनुभाई जैसे इन्हींके धक्कों से अपनी खोली तक चले आए। अब पूरे ताले और चौखट पर चांदनी पड़ रही थी। मनुभाई ने जनेऊ में बंधी ताली से ताला खोला। खोली की नम-गरम हवा किवाड़ खुलते ही उनके रोम-रोम से लिपट गई। नम्बर नौ खोली के किराएदार की चिन्ता भूल इस समय वे न्हाना भाई के शब्दों से उलझे थे। उन शब्दों की ध्वनि रात में सुनसान को भेद-कर हवा के रथ पर बैठकर फैलती हुई समुद्र के आलोड़न की ध्वनि सी सुनाई पड़ रही थी। उस ध्वनि में वामन न्हाना भाई विराट् होकर उनकी चेतना को आत्म-सात् किए था। जैसे बीज देखते-देखते अंकुर से पादप और पादप से वृक्ष हो उठा हो। वृक्ष भी वह था जिसकी जटाएं धरती में समाकर जड़ बनती जा रही हों। और हर जड़ एक पुष्ट तने का आधार बन रही हो। इस शांति की खोज में वे

कितना भटके हैं, कैसी-कैसी राहों से बढ़े हैं; ऊंच-नीच, अंधेरा-उजाला सब कुछ से गुज़रे हैं। पर ये शब्द उन्हें तब सुनाई दे रहे हैं जब कि यात्रा का अवसान ही समीप है। क्या इस अवसान के तीरे उस बौने के शब्दों को विराट् मानकर उन्हींको समर्पित हो जाएं।

इसी चिन्तन में खोए-खोए अपने बिस्तर पर जा लेटे थे। पर लेटते ही करवटें दुखने लगीं, इसीलिए करवटें बदलने लगे। गर्मी महसूस हुई तो बदन की झंगुली बनियान भी उतार दी। उसके उतारते ही कोई खटमल पीठ पर टहलने लगा। उसके नन्हे-नन्हे कदमों ने कमर में अजीब सी सुरसुराहट पैदा कर दी। वे उठे। पीठ और बिस्तर को गमछे से झाड़ा। कोने में रखे तांबे के कलश से पानी लेकर पिया। खिड़की जो अब तक बंद थी उसे भी खोल दिया। दरवाज़े की चौखट को चांदनी पूरी तरह पार न कर पाई थी। खिड़की के खुलते ही वह मनुभाई के बिस्तर पर कूद पड़ी। जैसे कह रही हो: आओ, वृद्ध तपस्वी, मेरे साथ अभिसार करो। जानती हूं इन्द्रियां शिथिल हैं, बुद्धि अवसन्न है, मन में उमंग नहीं! पर मुझे अपने वक्ष पर लोटने तो दो। मैं चन्द्रसार हूं। अमृत से मेरा अंग-अंग नहाया हुआ है। तारों ने अपना समस्त रस मुझमें ही उंड़ेल दिया है। धूप मुझसे ही तो हारकर छिपी बैठी है। सूरज सो रहा है। तपने-जलने वाले सब सो रहे हैं। जिनके पास शांति है वे जाग रहे हैं। तुम्हें यकीन नहीं होता। कहते हो, मैं तो तपन से भरकर जाग रहा हूं। तो आओ, तपन मिटा दूं। इस रात में सोने वाले भी जागेंगे।

मनुभाई ने बिस्तर पर लेटी हुई चांदनी को देखा। इस वार्द्धक्य में भी जाने कैसी अनुभूति का संचार हुआ। कुछ देर तक वे अलग खड़े-खड़े उस परकीया के स्वेच्छाचार को देखते रहे। फिर उन्होंने आगे बढ़कर अपना बिस्तर समेट लिया। चांदनी चट से ज़मीन पर जा गिरी। नंगा फर्श। जाने चांदनी के कोमल तन को कैसा लगा। मनुभाई को लग रहा था कि यह चांदनी उनके मन की बची-खुची शांति को भंग करने उनकी खोली में घुस आई है। तभी उनकी मदद एक बदली ने की। उसने चांद को अपने घूंघट में ले लिया। और जब वह घूंघट उघड़ा तो चांद के ढलने की घड़ी का प्रारंभ हो गया था। मनुभाई अंधियारे कोने में जा बैठे। चांदनी अपना आंचल समेटने लगी थी। वह चौखट से हट गई। फर्श से उठकर

खिड़की की सिल पर बैठ गई। फिर खोली के चबूतरे को भी छोड़ दिया। खिड़की से मुख मोड़ती हुई नीम के घेरे से भी बाहर हो गई। आकाश की चांदनी धरती पर निछावर हो जाती है तो तम के तारों को अच्छा नहीं लगता; मलिन पड़ने लगते हैं। चांदनी के सिमटते ही धरती का अंधेरा सघन हुआ। और आकाश के तारे हंसने लगे। उनकी टोलियां किलकारियां सी मारती देवताओं के आंगन में विहार करने लगीं। मनुभाई की आंखों में जागरण से जलन होने लगी, पर बिस्तर को संवार-कर लेट ही नहीं पा रहे थे। धीरे से उठकर बाहर आए। सिमटती हुई चांदनी को देखकर उन्हें राहत हुई। नीम के तले आए। लाठी न थी। अतः एक ढेले से ठोकर खा गए। वहां से कुएं की तरफ बढ़े, मन तक पहुंचे। न्हाना भाई खोली में लौट चुका था। नागफनी की बाड़ अस्पष्ट सी दिखाई दे रही थी। वे उधर बढ़े ही नहीं, पीछे को लौटे। समुद्र का गर्जन बढ़ चला था। अंधकार में उसकी ध्वनि किसी सुप्त महादानव की सांस सी लग रही थी। उन्होंने देखा। पारसी के बंगले की सफेद दीवाल अंधियारे में डूब चुकी थी। वे वाड़ी में खोलियों के पास-पास होकर चलने लगे। कहीं कोई हरकत नहीं। कोई रोड़ा उनकी ठोकर खाकर सोते से जाग उठता था तो कोई पत्थर उन्हें अपने रास्ते में आने की मनाही करके एक ठोकर के साथ उन्हें समझा देता। खोली के पास पहुंचने पर किसीके खुर्राटे की आवाज़ सुनाई दे जाती, कभी वह भी नहीं। न्हाना भाई सब कुछ भूल, सो चुका था। पता नहीं कुबेर बनने का उसका स्वप्न भी सोया था या नहीं। चित्रकार के भी कल्पना के गगन-चुंबी गोपुरम् नींद की पलकों में सिमट गए थे। गाडगिल पता नहीं स्टूडियो में था, किसी लोकल ट्रेन में या खोली के अंदर ही। मौसी जगत् के सब नाते भूल, सौतिया नींद को छाती से लगाए पड़ी थी। सिंधी परिवार को किसी बात की सुध न थी, लड़कियां नींद में अपनी जवानी भूली थीं तो मां-बाप अपना बुढ़ापा; जवान भाई अपनी बेकारी से बेफिक्र था।

सब बेफिक्र थे। फिक्र केवल मनुभाई के बाटे में रह गई थी। पर इससे वे खुश थे, एक उनके जागने से अगर शेष सब सुख की नींद सो सकें। घूमते-घूमते वे नौ नम्बर की खोली के पास आ गए थे। बाईं तरफ खोली का दरवाजा था और दाईं तरफ वाड़ी के बाहर पारसी की दुमंजिली कोठी की खिड़की। खिड़की खुली थी।

हरे रंग का बहुत ही मद्धिम बल्ब जल रहा था। इधर खोली की खिड़की भी बंद थी। पर किवाड़ों की संधों से मद्धिम की हुई लालटेन का प्रकाश बाहर झांक रहा था। वह बिजली का हरा लट्टू, वह मद्धिम लालटेन, घर वालों के सो जाने पर जैसे पहरा दे रहे थे। इस पहरे की ज़रूरत खास स्तर के लोगों को ही पड़ती है। मनुभाई यह अच्छी तरह जानते थे। पारसी एक बैंक का मैनेजर है, नौ नम्बर की खोली वाली के हाथों में सोने की चूड़ियां खनकती हैं और अंगुली में हीरे की अंगूठी दमकती है। इन्हें सचमुच ही पहरे की ज़रूरत है—रोशनी में अंधेरे के पहरे की, अंधेरे में रोशनी के पहरे की !

मनुभाई के मन में भी एक पहरेदार बैठा था। वह थी उनकी चिंता। पर यह पहरेदार सुहाने वाला नहीं : हरे बल्ब सा मधुर प्रकाश नहीं करता, मद्धिम लालटेन सी कोमल जोत नहीं देता। इसमें तो लपट सी तेज़ी है। ऐसा भी पहरा क्या ? पर वे इस पहरे से बच नहीं सकते। उन्होंने अपने जीवन में ऐसी रहस्यमयी संपदा छिपा रखी है जो उन्हें निरन्तर बेचैनी से भरे रखती है।

वहां पहुंचकर मनुभाई रुक गए। पर रुककर क्या करें। सरसर की आवाज़ हुई। शायद नेवला निकलकर भागा। या हो सकता है कि गटर का चूहा हो, बिल्ली जैसा चूहा। पर ये क्यों जाग रहे हैं। तारे भी तो जाग रहे हैं। मनुभाई के लिए समय जैसे स्थिर हो गया। वे वहीं खड़े-खड़े जाने क्या-क्या सोच गए। इतना सोच गए कि तारों की आंखें झपने लगीं। वे फीके पड़ने लगे। चांद और चांदनी का कभी का पता नहीं था। अंधियारा भी हल्का पड़ने लगा। उसका पहरा शायद पूरा हुआ। उसके झीना पड़ते ही नभ के जौहरी ने अपने हीरों को बटोरना शुरू किया। हवा भी कम बोझिल हो चली। आसपास के पेड़ों में कुछ हलचल सी हुई। मनुभाई ने देखा कि पक्षी नीड़ छोड़ने लगे। जैसे भागते हुए अंधकार का पीछा कर रहे हों। कहीं कोई मुर्गा भी बोला। सागर का गर्जन अस्पष्ट हो चला था। भला मुर्गा बोले तो वह कहां रहे ! 'ओह सबेरा' मनुभाई ने होंठों ही होंठों में कहा। वे तेज़ी से अपनी खोली की ओर चले। नीम की ओट से दिखाई पड़ने वाले आसमान में आलते सी लाली फूट पड़ी थी। मनुभाई की आंखों में वह लाली बुरी तरह गड़ी। वे

झपटकर अपनी खोली में पैठ गए। घुसते ही दरवाज़ा बंद किया, खिड़की बंद की और वह भूलने का प्रयत्न करने लगे कि रात खत्म हुई।

रेवती प्रतीक्षा में हार गई। स्टोव पर दिन में कुछ बनाया था। वह अभी रखा ही था। दिन थककर कहीं आराम कर रहा था। रात ताज़गी से भरी थी। नौमी का चांद खिल उठा था। उसकी खोली की नई लालटेन भी जल रही थी। पर उसके मन में कहीं अंधेरा था। प्रतीक्षा की एक हद होती है। एक, दो, तीन। हां, पूरे तीन दिन। पूरे तीन दिन से वह गायब था। भूख अलग परेशान किए थी। फिर इस खोली की संकरी सीमा, जैसे हवालात हो। जब से इस बाड़ी में आई थी, कहीं बाहर ही न निकली थी। पड़ोसियों से मेल बढ़ाते डर लगता था। जयन्त के बल पर दिग्विजय करने निकली थी। पर जयन्त···वह उसीसे कटकर भागता फिरता था। जैसे वह सीता के चरणों में कागा बनकर प्रहार करने वाला इन्द्रसुत जयन्त हो और रेवती रामबाण! 'रामबाण'···रेवती रामबाण ही है। उससे जयन्त कैसे बचेगा! एक नेत्र की बलि देकर भी नहीं बच पाएगा। रेवती का विवश मन छटपटाने लगा। उसके अभिमान की प्रत्यंचा शिथिल पड़ने लगी। शिथिल प्रत्यंचा वाले धनु से बाण कैसे छूटे!

उधर भूख खुद को खाए डाल रही थी। वह उठी। दिन में बनाए खाने को खाया। भूख का समाधान हो गया। पर मन की भूख तो न मिट पा रही थी। अपने यौवन से वह आप पीड़ित थी। अपने रूप को आप वहन न कर पा रही थी। लालटेन की रोशनी में उसका अस्तित्व कुछ अधिक मुखर हो रहा था। वह उठी। हाथ उठाया। चूड़ियां खनकीं। अंगुलियों ने फूल का पेंच पकड़ा। अंगूठी का हीरा दमक उठा। अंगुलियों ने फूल के पेंच को उमेठा। लालटेन की लौ लीन होते-होते बची। अब खोली के अन्दर की प्रत्येक वस्तु अस्पष्ट थी। खिड़की खुली थी। उस खिड़की से वृद्ध मनुभाई की आंखों ने उसके लालटेन को मद्धिम करते हुए हाथ में

क्या देख लिया था, रेवती को पता भी न चला। एक कोने में धरती पर बिछे बिस्तर पर वह लुढ़क गई। आंखें बंद कीं। शायद नींद आ जाए। पर नींद की एक खास आदत है। बुलावे पर कभी नहीं आती। मनुहार से दूर भागती है। वैसे खुद आ-आकर लिपटती है।

ठीक औरत जैसा स्वभाव। रेवती को भी लगा : ठीक औरत जैसा स्वभाव। पर वह नींद के बारे में ज़्यादा सोच ही नहीं सकी। जयन्त का ध्यान आ ही गया। वह क्यों नहीं आया, तीन दिन से क्यों नहीं आया ? कहीं छोड़कर भाग तो नहीं गया ?

रेवती को लगा कि जैसे उसने स्वयं अपना अपमान किया है। वह विकल सी हंसी हंसी। 'जयन्त भागेगा ! रामबाण से जयन्त भागेगा !' जब वह बाहर जा रहा था तो रेवती ने भी साथ चलना चाहा था। पर जयन्त के मुख के भय से उसने स्वयं को अपमानित महसूस किया था। तभी कहा था—कायर !

जयन्त चला गया। कायर जयन्त ठिकाने के मकान की खोज में चला गया। रेवती ने कहा था, पैसा है, वह भी इतना कि पानी की तरह बहा सकें। फिर क्यों न ढंग के होटल में जाकर रहें। पर जयन्त को होटल पसन्द न था। सब तरह के लोग होटलों में आते हैं। होटल के रजिस्टर में बहुत कुछ दर्ज़ होता है। ऐसी जगह वह रेवती के साथ नहीं रह सकता था। 'कायर' रेवती ने तब भी कहा था। जयन्त ने इस विशेषण का कभी प्रतिवाद नहीं किया। वह हमेशा कहता—पुलिस हमारा पीछा कर रही होगी। हर शहर में हमारे फोटो पहुंच चुके होंगे। किसी भी घड़ी हम पुलिस के कब्जे में आ जाएंगे। पुलिस……

जयन्त का तन-बदन पसीने-पसीने हो जाता। रेवती बिजली-सी तड़प उठती। कहती—तुम पुरुष हो। जयन्त, तुम राजपूत हो। पुलिस से डरते हो ! स्त्री के लिए इतिहास में क्या नहीं हुआ ! राज्य मिट गए, सत्ताएं पलट गईं। नाश नग्न हो उठा। पर तुम…देखो ! मुझे देखो ! क्या मेरे लिए एक लंका नहीं जलाई जा सकती थी ? क्या मेरे लिए एक महाभारत नहीं हो सकता था ? क्या मेरे लिए ट्राय का सर्वान्तकारी युद्ध नहीं हो सकता था ? अतिरंजना नहीं है जयन्त। सब कुछ हो सकता था ? सब कुछ हो सकता है। पर करने वाले पुरुष थे। आज भी पुरुष

कर सकता है–पुरुष जो स्त्री के यौवन का, रूप का, प्यार का मूल्य जानता है। तुम···तुम नहीं, कायर नहीं, जिन्हें सब से बहुमूल्य केवल अपनी जान लगती है वे नहीं।

जब जयन्त में वैसा पौरुष न जागा वह दीन होकर जलती हुई होली से उस रूप को देखने लगा। पास रहा तो वह खुद जल जाएगा। तो भाग चलें। पर भाग भी न सका था। उस रूप की सैकड़ों-सहस्रों रश्मियां उसे अपनी ओर खींच लाती थीं। वह महासागर में तिरते हुए जहाज़ के पंछी के समान था। इधर उड़के चला जाता। उधर जलराशि में कहीं ठौर न मिलता। फिर लौटता। जहाज़ पर ही लौट पड़ता।

रेवती को पिछले दृश्य याद आने लगे। मां-बाप गरीब थे, फिर भी पढ़ाया। इकलौती बेटी थी। बेटे की तरह पढ़ाया। लाख मुसीबतें भोगकर बी० ए० कराया। वह हर परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास होती गई। ज्यों-ज्यों ऊंचे दर्जों में चढ़ती गई, जवानी भी चढ़ती गई। उसे पता ही नहीं चला, किन्तु उसका रूप कालेज भर की चर्चा बन गया। जब कालेज में गई थी तो दिए की लौ सी थी–मनोहर, आकर्षक, स्नेहपात्री। लौटी तो यज्ञवेदी की लपट सी–अंगों में उभार, मुख पर निखार, आंखों में क्षार! कालेज के चार वर्षों ने उसे युवती बना दिया था। जिसके नयनों की ओट में बैठकर कामदेव अपने प्रताप का विस्तार किया करता है। पर रेवती न जान पाई अपने में ही छिपे उस अनंग को। एक दिन उसने सुना, शादी तय हो गई है; बड़ा घर, भला वर। दौलत का बखान करते हुए लोगों ने कहा––दरवाज़े पर हाथी झूमते हैं; घोड़े दूध-जलेबी खाते हैं। इस प्रशस्ति के साथ उसने यह भी सुना कि रूप भी तो रानियों का पाया है। राजा के घर न जाएगी तो!

रानियों का रूप! ···वह एकांत में भाग आई। इतना रूप कि सब जगह चर्चा। कैसे सम्हालेगी। और निखर न जाए। लोभी जन लूट न लें। वह अकेली थी और बिना किसी श्रम के ही हांफ सी रही थी। बोझिल रूप, दुर्वह रूप। ओह, तभी कालेज में···। पर यकीन न आया। किसीकी गवाही चाहिए। दुनिया पर नहीं, शीशे पर यकीन किया। वह भी उस शीशे पर जिसे रोज़ देखती आई है। इस बार शीशे ने भी दाद दी। उसने देखा––गालों में लाज के बादल उमड़ रहे हैं।

हाय, यह सुर्खी आंखों के काजल तक को खूनी किए डाल रही है। ऐसी है वह तो कैसे किसीके सामने आएगी ! उसने शीशे को आले में रख दिया। फिर कुछ हटकर देखा। वक्ष तक दर्पण में उमड़ आया ! हाय राम, यह सब क्या ! कैसे छिपाऊं, कहां छिपाऊं ? उसने शीशे की तरफ से मुंह फेर लिया। लेकिन अब तो हर सांस उस बोझिल सौंदर्य की अनुभूति करा रही थी।

उसका मन मचल उठा; अपनी आंखों से अपने-आपको देखने को मचल उठा; नख-शिख तक देखने को मचल उठा; जिन अंगों से स्नान के समय भी अनजान बनी रहती थी उन सब को देखने को मचल उठा। वह कहां जा खड़ी हो कि उसकी छाया में वास्तविक रंग उभर आए। वह दर्पण बहुत छोटा था। इस क्षण तो और भी छोटा लग रहा था। बस, वह कल्पना में खो गई; लोगों के नेत्रों में खो गई; उनकी बातों में खो गई। उनकी दृष्टि में स्वयं को देखने लगी; उनकी प्रशंसा में स्वयं को पाने लगी। कालेज की दृष्टियां, कालेज की प्रशंसाएं, सभी कुछ याद आने लगीं। वे सब मिलकर ऐसा दर्पण बन गई जिनमें रूप का नंदन कानन खिल उठा। ओह, सर्वत्र बसंत छा गया था। कुसुमायुध फूलों का धनुष लेकर आ गया था। उसने उसपर बाण चढ़ाए। आमों का बौर, पारिजात, कमल और जाने क्या-क्या ? बाण छूटते गए। उनकी नोकों पर मत्त भ्रमर आरूढ़ थे। गजों के मस्तक से मद बहने लगा। मरुओं में झरने फूट पड़े। कमलों से पराग उड़ा। पुष्पों से सुवास बहा। शेफालिका ने फूलों की वर्षा की। मौलश्री बौरा गई। पवन गंध के भार से धीमा पड़ गया। आसमान ने चांदी बरसाई। नदियों ने लहरों की मालाएं गूंथीं। सागर ने रत्नों-मोतियों को लुटा दिया। रेवती ने कली को चटखते हुए देख लिया था। वह बौरा गई थी। वह वधू की लाज से सिमट गई। घूंघट की यवनिका डाल दी। फिर भी नयनों की चपलता न रुकी। कानों में शहनाइयां बजती रहीं। पंडितों ने मंत्र पढ़े, पर उसने सिर्फ गीतों को सुना। मंडप में वेदी सजग हुई, पर वह स्वयं को भी भूली रही। क्या हो रहा था, क्या होने जा रहा था, उसे कुछ भी पता न चल रहा था। शहनाई ! ओह, उसकी खुशियां नाच रही थीं। उसमें सब कुछ नया ही नया जाग रहा था। रेवती रेवती नहीं रह गई थी। शहनाइयां, दूर से आती हुई बधाइयां, उसके कानों में अब भी गूंज रही थीं। पर दूसरे ही क्षण उसे खोली की

मटमैली दीवारें ऊपर को गिरती सी दिखाई देने लगीं। लालटेन की मद्धिम जोत बुझती सी लगने लगी। हाय, वह सच कहां गया ! उसने चाहा कि रो पड़े पर आंसू भीतर के ताप से ही भाप बनकर आह में उमड़ पड़े। वह रो ही न सकी। पर तब तो रो पड़ी थी। मां से लिपटकर, बाप से लिपटकर, सखियों से लिपटकर, अपनों से लिपटकर रो पड़ी थी। पर तब भी शहनाइयां बज रही थीं। वह रोती रही। शहनाइयां बजती रहीं।

खोली रोने और शहनाइयों की आवाज़ से भर उठी। हर ध्वनि-प्रतिध्वनि को और प्रतिध्वनि अपनी प्रतिध्वनि को पैदा करती रही। जैसे धरती के किसी अतल विवर में पैठकर शब्द का देवता गर्जना कर रहा हो। रेवती को लगा कि उन ध्वनियों से खोली की हवा तक घुट गई, दीवालें दरकने लगीं, किवाड़ टूटने से लगे। वह उठी। उसने दोनों तरफ के दरवाजे खोल दिए। पिछवाड़े की बंद खिड़की भी खोल दी। अंदर का अंधेरा बाहर की तरफ को भागा। बाहर की चांदनी भीतर को भागी। हवा का झोंका आया। चिपचिपे बदन को बड़ा सुहाना लगा। समुद्र का गर्जन हवा पर तिरता आया। लेकिन वह मधुर संगीत-सा लगा। वह पिछले दरवाज़े की चौखट पर आ खड़ी हुई। बाड़ी का पिछला हिस्सा घासपात से भरा था। उसके पार नागफनी की बाड़ अपने काँटों से चांदनी को बींधती हुई खड़ी थी। नीम तो नहीं उसकी कुएं के ऊपर फैली हुई शाखा वहां से दिखाई दे रही थी। लेकिन झाड़-झंखाड़ की वजह से कुएं की मन नहीं दिखाई दे रही थी। रेवती चौखट पर ही बैठ गई। चांदनी उसे गुदगुदाती रही। पर उसे उसके स्पर्श की अनुभूति तक नहीं हुई। वह बैठी थी प्रतीक्षारता सी, वियोगिनी सी। किसकी प्रतीक्षा, किसका वियोग ? रेवती के मन में 'प्रतीक्षा' और 'वियोग' ये दो शब्द गूंजे। उसने प्रतिवाद में चिल्लाना चाहा : मुझे किसीकी प्रतीक्षा नहीं। मुझे किसीका वियोग नहीं। पर चिल्ला न सकी। कान के पास आकर मच्छर भनभनाने लगा। उसने उसे भी न रोका ! हवा के झोंके ने सिर का आंचल उड़ा दिया, उसने उसे भी नहीं बरजा। एक झींगुर पांव पर से जाने लगा, उसने उसे भी नहीं रोका। वह बैठी रही—गुमसुम, खोई-खोई, रीती, खाली। उस रीतेपन में भी स्मृति चपल हो उठी। वह उसे फिर वहां ले गई जहां उसके आने पर दीवाली जाग उठी थी; होली की खुशियां मुक्त हो उठी थीं; शह-

नाई ने सब से मीठे राग छेड़े थे, सब से कोमल फूलों से सेज सजाई गई थी। चारों ओर इत्र गमक रहा था। गुलाब जल की बारिश हुई थी। चांदनी रात न थी। पर उतना प्यारा अंधकार भी कभी न उमड़ा था। जायसी की पद्मावती के केश-कलाप सा कोमल। मुक्त होते ही 'सरग पाताल' में घन छा गए। ओ प्यारे अंधकार! ओ सुखदायी सखा! अंधकार भी इतना प्यारा हो जाएगा, रेवती न जानती थी।

सचमुच ही प्यारा अंधकार। दुमंजिले के उस कमरे का पहरा दे रहा था। अंदर गुलाबी रोशनी जाग रही थी। प्यारा अंधियारा फिर भी चीज़ों की ओट में जा छिपा था। तारे खिड़की की राह उसकी शरारत देख रहे थे। प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह कब दूध के फेन सी उस सेज पर छा जाएगा; कब वह गुलाबी रोशनी उसे समर्पित हो जाएगी; कब वह दो अभिन्न हृदयों की धड़कनें सुनेगा; कब वह उन्हें निर्लज्ज होने का बढ़ावा देगा; कब वह नई सृष्टि का 'पहरुआ' बनेगा। कब? कब?······

रेवती के माथे पर हथोड़े से बज उठे। पर तब तो वह प्रतीक्षा में बैठी थी। कोई आएगा। अरे वही आएगा? क्या कहेगा वह? कैसे बोलेगी उससे? सखियां कह रही थीं, बहकाने में न आ जाना। मान करना, मोहिनी फेंकना, वशीकरण में न आ जाना। हाय, आहट आ रही है। हाय, वे ही आ रहे हैं। उफ़, सांस को क्या हुआ! क्यों इतनी तेज चलने लगी। आहट बंद हुई। कोई नहीं आया। ओह, जान में जान आई। पर क्यों नहीं आए? यह इंतज़ारी भी तो जानलेवा है। आ जाओ न। हाय री निर्लज्ज! बुला रही है। आज की रात की किसी वधू ने प्रियतम को पुकारा। यह तो फिर न आने वाली रात है। कुंवारी रात है। सुहाग की नहीं, मान की रात है। कोई जैसे गा-गाकर सुना रहा हो—'अजब बात है! गज़ब रात है, रूठना मत, मानना मत, कुंवारी रात है। जागना मत, सोना मत, फिर न आने वाली रात है। इस रात में सीप मोती उगलेगी, इस रात में फूल पराग बिखेरेंगे। इस रात में चंपा को भँवरा ढूंढेगा। इस रात में कमल आँख न मूंदेंगे। अजब बात है, गज़ब रात है, आज की रात बिजलियां तड़पेंगी, पर बदलियां न होंगी, चांदनी झूमेगी, पर चांद न होगा। पर तू होगी, वह होगा, ग़जब होगा, गज़ब होगा।'

फिर आहट! दरवाज़ा बोला, हाय गज़ब होने वाला है। घूंघट को कस के

थाम लिया। उड़ न जाए, खुल न जाए। घूंघट···वदन सिहर उठा। रोम सिहर उठे। उफ़! कोई दूर से ही छू रहा है। हाय, मेरे मन में पैठ गया। तन तो क्या, मन भी न छिप सका। हाय रे पापी मन! कहां दगा दिया। पर नहीं, कहीं कोई नहीं, कोई नहीं मैं तो हूं! पर वह नहीं, वह नहीं, वह नहीं!

आहटें हुईं! पर वह नहीं आया। पलंग के कोने से जरा आगे को खिसक आई। दुल्हिन आप खिसक आई। अब पलकें भारी हो रही थीं। नींद की आहट आ रही थी। कमर कुछ थक सी रही थी। जरा ऐसे? हां, ऐसे। तकिए को पास बुला लिया! कोई नहीं तो नींद तो! तकिया तो! गुलाबी रोशनी न बुझी। अंधियारा खिड़की से भीतर घुस न पाया और न परछाइयों से अलग हो सका। किसीने दुल्हिन का घूंघट न खोला, कोई अनुनय से भरा न आया, कोई ढीठ बनकर भी न आया। पर नींद आ गई, वधू का सिर तकिए पर लुढ़क गया। सेज ने आह भरी! तारे निराश हुए। शहनाई की गूंज मिट गई। गीतों का रंग उड़ गया। और तो और, वह रात भी सिमट गई। कुंवारी रात भी मुरझा गई। न आने वाली रात, भी चली गई। उफ, अजब बात। गजब की रात चली गई।

रेवती ने आंखें खोलीं। खिड़की से सूरज उतर आया था। बिन सलवटों की सेज पर फूल मुरझा गए थे। गुलाबी बत्ती जल रही थी। पर दिन की रोशनी में फीकी पड़ गई थी। पर वे क्यों नहीं आए। फिर भी क्यों नहीं आए। हाय, गज़ब हो गया! सचमुच ही अजब गज़ब हो गया! वे क्यों नहीं आए? वे क्यों नहीं आए?

रेवती ने इधर देखा, उधर देखा, सब तरफ देखा, कहीं नहीं। कोई नहीं, पर आहट, फिर आहट, धोखेबाज आहट! रात कितनी बार मोह में डाला, झूठी आहट पर आहट बढ़ती गई। कोई सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर आ रहा है। अरे, वह तो बिल्कुल दरवाजे तक चला आया। हाय, दरवाजा हिल उठा, वह आ ही गए। आएं, बला से आएं, अब रेवती मान करेगी। ऐसा मान कि······

पर मान कर भी न पाई कि मान मिट गया। 'बहूजी?' नौकरानी थी।

रेवती को सांप सूंघ गया।

सांप···रेवती चौंक पड़ी! चौंकते ही सिर चौखट से जा टकराया। उफ!

वह तो यहां है, मनुभाई की वाड़ी में, नौ नंबर की खोली में; नागफनी की बाड़ से घिरी। जयन्त अब भी नहीं आया। रात आधी भी नहीं बीती। स्मृतियां पुरानी भी न पड़ीं। पर दिल घुट रहा है। कैसी तड़पन है, कैसी जलन है, कैसे इस आग को बुझाए! आंसू ''कहां आंसू। 'जयन्त, लौट आओ, देखो मैं रो भी नहीं पा रही, जयन्त!''

रेवती के दर्प को ठोकर लगी। जयन्त। ठोकर! क्यों पुकारे किसीको। क्यों रोए रेवती किसीकी याद में। रेवती अब भी वही है। उस गजब की रात सी रेवती। वह अजब रेवती। उसकी हर रात कुंवारी रात रही है। कुंवारी रातों की रानी रेवती!

आधी रात बीत गई। शायद कुछ ज़्यादा ही! कुंवारी रातों की रानी रेवती नागफनी से घिरी बाड़ी की खोली में पड़ी-पड़ी कभी अतीत की प्रवंचना से खीज उठती, कभी वर्तमान के व्यंग्य से तिलमिला जाती। कहां वह कमरा जहां उसने वासक सज्जा के रूप में वह रात प्रतीक्षा में ही बिता दी थी, कहां यह खोली! खपरैल की छत! उसमें भी कहीं-कहीं झरोखे! चांदनी जब उन झरोखों में से झांकती तो वह तिलमिला उठती। वर्जना से भरी तर्जनी सी चांद की किरण खपरैल को चीरकर फर्श में गड़ी सी जा रही थी। रेवती के दिल में भी कुछ गुब सा रहा था। पिछले दरवाज़े से किसीकी बातचीत के अस्पष्ट शब्द सुनाई दे रहे थे। कुएं की तरफ से शब्द आ रहे थे। उसे उस सुनसान में जब कि वह अपने में ही खोई हुई हो, बाहर की वह हलचल व्याघात ही लगी। वह उठी, उस ओर के किवाड़ दुवा दिए। खिड़की भी! और फिर बिस्तर पर दीवाल से पीठ लगाकर बैठ गई।

खोली में घुटन थी। पसीने से बदन चिपचिपा रहा था। समुद्र की सैर करके आया हुआ हवा का एक नमकीन झोंका सामने के दरवाज़े से अन्दर घुस पड़ा। पर उस घुटन में वह इतना बेजान हो उठा कि कोने में बैठी रेवती

तक पहुंच ही न सका।

चट्-चट् फिर आवाज़ हुई। रेवती की निगाह खपरैलों की संधियों पर दौड़ने लगी। वहां एक छिपकली थी। उसे कोई शिकार मिल गया था। चट्-चट् छिपकली! शिकार और छिपकली! उफ कितना ज़हर भरा है इसमें! ज़हरीले से ज़हरीले जीव को चट कर जाती है। इतने ज़हर को लेकर यह जी कैसे रही है! इसके अन्दर ज़हरीला धुआं घुटता होगा तो ?···तो ?

रेवती का कौन समाधान करे। 'तो' का जवाब ही न मिला। पर वह बिना जवाब के कैसे रहे ? उसीके मन ने कहा : ज़हर ही उसकी ज़िन्दगी हो सकता है। भीतर की आग भी जीवन हो सकती है; अभिशाप भी वरदान हो सकते हैं। कुंवारी रातों की रानी रेवती।···वह सचमुच ही रानी है। उसके अन्दर काम का ज़हर भरा पड़ा है। कोई उसे पचा नहीं पाया। ऋषि, मुनि, ज्ञानी, तपस्वी, वीतरागी—सब परास्त हुए। कोई मेनका, तिलोत्तमा या उर्वशी! बस संयम जल उठा। साधना राख हो गई। जैसे सोने के पात्र में ज़हर, वैसी ही ये मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी। रूप की चिन्गारियां। अनंग की प्रतिमाएं। पर रेवती क्या है ? उसने तो काम के कालकूट को कंठ में स्थापित कर रखा है। वैसा तो नीलकंठ भी न कर सके। उन्होंने तो काम जला ही डाला था। रति रोती रही। शिव के तीसरे नेत्र की आग में काम जल गया। आशुतोष ने रति का रोना सुना। दया आई! जिला दिया। काम अनंग होकर जी उठा। पहले से भी घातक हो उठा। अब तो पता भी नहीं चलता कि वह कब किस ओर से प्रहार कर बैठेगा। भीतर, बाहर, सर्वत्र! वह सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् काम रेवती से जूझ रहा है। रेवती क्या करे! वह काम को पचा सकने वाले शिव से भी बड़ी शक्ति है। या सिर्फ काम का साधन!—मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी। विष भरा सोने का भांड!—छिपकली! ज़हर की कूची, विष-तूलिका। रेवती छिपकली भर!

धप सी आवाज़ हुई। छिपकली छत से फर्श पर गिर पड़ी। भीने अंधेरे में कुछ नहीं दिखाई दिया। फिर भी रेवती सिहरन से भर उठी। जैसे उसके अंग-प्रत्यंग में छिपकलियां दौड़ रही थीं; ज़हर से भरी छिपकलियां। कुंवारी रातों की रानी और छिपकलियां—रेवती का जी मिचलाने लगा। आत्मजुगुप्सा प्रबल हो उठी। भीतर

का विष बुझ न पाया। उसने दीवाल से सिर दे मारा। पर कुछ न हुआ। छिप-कली रेवती की आंखों में तैरती रही। दम घुटता रहा !

जब सहा न गया तो बरामदे में निकल आई। सामने ही पारसी का दुमंज़िला मकान खड़ा था। ऊपर वाली खिड़की से हरी रोशनी झांक रही थी। और भी कुछ था; जीवन का लक्षण था। उस कमरे में दुल्हिन रेवती प्रिय की प्रतीक्षा में न बैठी थी। वहां किसीके हृदय में आशंका, आतुरता, भीति न थी। अनिच्छा का विनिमय या इच्छा का दमन भी न था। वहां तो कुछ सुबह की धूप सा कोमल, चांदनी सा मधुर, हवा सा मुक्त, गंध सा उन्मत्त था; शायद भूख सा स्वाभाविक, प्यास सा दुर्निवार भी था। वहां तृप्ति में लिपटी हुई अतृप्ति, अतृप्ति पर बरसती हुई तृप्ति थी। पर रेवती ने तो कुछ और ही जाना था।

वह दुल्हिन का दूसरा दिन था। उफ़, कितनी रौनक ! कितना शोरगुल, गाना-बजाना, बधाइयां, बहू के रूप की तारीफ। वर की तकदीर की सराहना। ससुर तो कभी के स्वर्ग सिधार चुके थे। सास थी, निहाल थी। उसके घर में ऐसी वधू आई थी जो उसके बड़े-बड़े कमरों के कीमती कालीनों पर चलती अच्छी लगेगी, जो सजावट की कीमती चीजों के बीच फबेगी, जिसके अंग को छूकर सोना खिल उठेगा, हीरे-मोती हँस पड़ेंगे; रेशम का गौरव बढ़ेगा। हाय रे ! उस पुरुष का क्या होगा जिसपर यह रूप कहर बनकर नित टूटेगा। औरतें घायल हो रही थीं। कोई ईर्ष्या कर ही नहीं पा रही थी। निगाहें हैं कि बिजलियां ! वह चलती है तो धरती क्यों नहीं डोल जाती ! वह बोलती है तो हवा सरगम से क्यों नहीं भर जाती ! ऐसे ही रूप को देखकर तो दाड़िम फट पड़ता है, कलियां चटख उठती हैं, भंवरा कमलकोष में बंद हो जाता है। उसकी आंखों में तो मणिधर की मणि सा तेज है, होंठों में तो मार-मारकर जिलाने वाला जहर है। आंचल में भी तो यह अपने रूप के उन्माद को छिपा नहीं पा रही। क्या कयामत ही आएगी। चन्द्रकांत को सचमुच ही चांदनी मिल गई। चन्दर, तूने बड़े पुण्य किए थे।

रेवती का पति चन्द्रकान्त। मा पुकारती चन्दर। सचमुच ही सोचती कि चन्दर ने बड़े पुण्य किए थे। उस पुण्यवान् के विवाहित जीवन की दूसरी रात आ गई। दिन बीत गया। दिन में भी उसने अपनी प्रियतमा के जलते हुए रूप को देखने

की कोशिश न की थी, किसी बहाने से ही, छिपकर ही, कैसे भी !

अब रात। बिना कुतूहल की रात; बिना प्रतीक्षा की आतुरता से भरी रात; फिर भी रात; भय की रात; असह्य एकांत की रात ! रेवती ने कपड़े बदल लिए; गहनों के बोझ से स्वयं को मुक्त कर लिया। वह बाप के घर में जैसे रहती थी वैसी हो गई। पर माथे पर अंगारे सी बिंदिया तो चमक रही थी। मांग में किसी अनुरागी के फटे हुए हृदय सी दरार तो थी। हाथ-पांव में भी कुछ न कुछ ऐसा ज़रूर था जो उसे अपने जीवन के नए अध्याय की सूचना देता। अचानक वह चौंक पड़ी। हाय यह क्या ! इतनी सुन्दर यह दूसरी कौन ! सोचते ही रेवती शर्मा गई। आदमकद शीशा था। बाप के घर में न सही, पति के घर में तो है। उफ, वह ऐसी लगती है ?

हाय, बड़ा बेशर्म रूप है। यह सब कुछ दूसरों को भी दिखाई देता होगा। क्या सोचते होंगे। अब यह सब जानकर मैं कैसे जा सकूंगी किसीके सामने ! गज़ब कि कपड़ों में कुछ छिप भी तो नहीं पा रहा ! तो सब सच कह रहे थे ? मैं ऐसी ही हूं। मैं ऐसी हूं जैसा कि मैं खुद नहीं जानती।

रेवती भूल गई। कल की सुहागरात...नहीं, कुंवारी रात को भी भूल गई। आह, कैसे अपने इस रूप को अपने से अलग करके देखे। कैसे इस रूप से प्यार करे। प्यार के लिए तो दो का होना ज़रूरी है। परकीया प्रेम। हां पढ़ा तो है। प्रेम स्व-कीया से कहां ! पर से प्रेम। दूसरे से प्रेम। जो स्व में समा गया उससे प्रेम असंभव। प्रेम तो दुई है, द्वैत है। अद्वैत तो वेदान्त है। द्वैत भक्ति है। दुई प्यार है। मैं कैसे दो में बंट जाऊं ! कैसे अपने इस रूप को भोगने के लिए इससे अलग हो जाऊं !

रेवती पर अजीब नशा छा गया। जब लगता कि मैं यह खुद हूं। यह रूप मेरी ही कला है, शोभा है तो सकुचाने लगती; लाज के भंवर में डूब जाती। जब कल्पना भी कर पाती कि यह उससे कुछ पृथक् है तो उस रूप को आत्मसात् करने को विकल हो जाती। पर कैसे करे ! दार्शनिक कह देता—मैं यह भी हूं, मैं वह भी हूं। मैं आधार भी हूं, आधेय भी हूं। आलंबन भी हूं, आश्रय भी हूं। मैं क्रिया भी हूं, कर्ता भी हूं। जो भोग रहा है वह भी मैं हूं, और जो भोगा जा रहा है, वह भी मैं ही। पर रेवती स्वयं को स्वयं से अलग कर ही न सकी। हाय ! उसने

मुट्ठियां कसकर छाती से लगा लीं।

दूसरे ही क्षण वह चौंक उठी। कोई देख तो नहीं रहा। इधर से, खिड़की से, बालकनी से, बंद किवाड़ की संध से ? नहीं ! कोई नहीं। भ्रम है। वही देख रही है ? खुद को देख रही है, या ये चारों ओर की चीजें देख रही हैं। पलंग बेहया सा घूर रहा है। नहीं लेटूंगी इसपर। यह तो मुझे छू-छूकर देखेगा। ढीठ। नहीं फटकूंगी पास भी। पर ये गुलदस्ते के फूल। हां देखें मुझे ! मैं इन्हें तोड़कर अपने जूड़े में लगा लूंगी। शैतानी करेंगे तो होंठों से मसल दूंगी। ये तसवीरें···गिला नहीं, दुनिया इन्हें देखती है। वे मुझे देखें। मैं भी इन्हें घूर-घूरकर देखूंगी ! हाय, मेरी तो निगाहें झंप जाएंगी। ये तो पलक भी न मारेंगी। और यह सब क्या ? सोने के काम की साड़ी। सोने के तारों से मढ़ी अंगिया। यह माथे का तिलक। यह नाक का बेसर। यह कंठ का हार, यह भुज का केयूर। ये कलाइयों की चूड़ियां, हीरे जड़े दस्तबंद ! ये अंगुलियों की मोहनियां, रत्नमयी अंगूठियां। ये पांव के अलंकार। रेशम, सोना, हीरे, मोती, ये सब मैंने ही तो पहन रखे थे। कैसी लगती थी तब इन्हें पहनकर ? फिर पहन लूं। और तब पूछूं इस शीशे से कि बता कैसी लगती हूं ? झूठ न बोलना। अतिरंजना न करना। कुछ कम ही बताना। हाय, तरेड़ पड़ जाएगी इस शीशे में। टूक-टूक हो जाएगा हिया।

अजीब सा नशा छा गया। रेवती सिंगार करने लगी। कहां छिपा था यह शीशा। उसने सोने के काम की नीली अंगिया उठाई। अंगिया बदलने में यह क्या हो गया ! बिजली कौंध गई, आँखें चौंधिया गई, शीशा हंस पड़ा। रेवती लाज से भर गई, निगोड़े शीशे के आगे से हट गई। अंगिया पहनी, साड़ी पहनी। अब आई शीशे के सामने—हिम्मत से, विश्वास से। ले देख निगोड़े ! उफ़, कैसी लगने लगी। शीशा स्तंभित हो गया। क्या उपमा दे रेवती ? चांदनी ने आसमानी साड़ी पहन ली, बिजलियां सोने के तार बनकर लिपट गई। चांद मुस्कान बनकर मुख पर फैल गया। रेवती का सीना तन गया। गर्दन तन गई, सिर ऊपर को उठ गया। दर्प मूर्तिमान् हो गया। वह शीशे की तरफ दो कदम बढ़ी। क्या उपमा दे ! नहीं सूझ रही। सोने की चोंच वाली हंसिनी, नहीं ! बादलों के ठटों को चीर डालने वाली बिजली, नहीं ! कुमुदिनियों को खिला देने वाली चांदनी, नहीं। हविष्य को लेने के लिए ऊर्ध्व-

मुख वैश्वानर! उसकी जिह्वा, नहीं। वह वैसा कुछ भी नहीं जो अन्यत्र है। वह तो निरी स्वयं है। अपने जैसी आप। रेवती जैसी रेवती! अनुपम! निरु-पम! रेवती! काम के धनु की प्रत्यंचा रेवती! नहीं उससे भी कुछ पृथक्, उससे भी कुछ अधिक। रेवती नहीं जान पाएगी तब क्या? जानेंगे वे जिनके ऊपर यह रूप की गाज गिरेगी।

अभी आभूषण नहीं पहने थे उसने। यह भी देखे, उसके अंग पर पड़कर सोना कैसा दमकता है, मोती में कैसी आब आती है, हीरे-जवाहर में कौन सा नूर पैदा होता है। वह सिंगारदान के सामने सुंदर मूढ़े पर बैठ गई; अधिकार से भरकर बैठ गई। शीशे को ललचा-ललचाकर एक-एक अंग को सजाया। नीले अंबर में तारे जड़ दिए। रति पर रत्नाकर को जैसे लुटा दिया। वह उठी। फिर आदमकद शीशे के सम्मुख आई। ग्रीवा में सुनहरी नागिन लिपट गई थी। फिर उपमा! अनुपमेय की उपमा ठीक नहीं। कोई उपमा नहीं, वे आभूषण भी अपने ही जैसे थे। उन बेजोड़ अंगों पर पड़कर स्वयं बेजोड़ हो उठे थे। शीशे ने हार मान ली। उसमें इतनी शक्ति कहां कि उस रूप को प्रतिबिंबित कर सके। वह तो स्वयं को उस रूप के दर्पण में देख रहा है। रेवती हंस पड़ी, जैसे पहाड़ी झील के नीलम से पानी पर चांदनी थिरक उठी। शिखरों से घिरी, अमृततोया, आकाश की आरसीसी झील! जिसमें चांदनी भी नहाकर विमल हो उठे। रेवती का रूप भी कुछ वैसा ही! कुछ वैसा ही। नहीं, उससे भी अधिक। यह उपमा भी हार गई। रेवती आज रूप के समस्त उपमानों की अवमानना करके रहेगी। वह अप्रतिहत योद्धा सी रूप के एकान्त समरांगण में खड़ी थी। दूर-दूर तक कोई तलवार नहीं। प्रहार की शक्ति नहीं। विजय के दर्प से भरकर उसने चारों ओर देखा। वे सज्जा अलंकार की चीज़ें तुच्छ, सब तुच्छ। जैसे बच्चों के निमित्त। वह कमरा उसे अपने रूप का अपमान सा करता लगा। इतना रूप कैसे ज़रा कमरे में समाए। बाहर तारों जड़ी रात उससे स्पर्द्धा करने को खड़ी है। बाहर बालकनी से देखा जा सकेगा। नीचे के उद्यान पर छाई होगी। फूलों की कांति उसने छीन ली होगी। चांद उसके सामने आने का साहस न कर रहा होगा। तारों जड़ी रात। विभावरी। समस्त चराचर पर छाई हुई सुन्दरी निद्रा की सहचरी। प्रकृति के रोम-रोम में अपने अस्तित्व को

स्थापित करती हुई। विभावरी। तारों जड़ी रात। रेवती उसीको ललकारेगी, उसे रूप की परिभाषा बताएगी, उसके मान को तोड़ेगी। विभावरी और रेवती। दिशाएं साक्षी बनें। पवन न्याय करे। सर्वत्र व्याप्त प्राण न्यायकर्ता को बल दें। रेवती रूप की दिग्विजय पर निकली है। रेवती। धरा का सौंदर्य रेवती। सौंदर्य का सार रेवती। रेवती चल दी। रेवती बढ़ दी। रूप के सोते फूट पड़े। झरने बह चले। प्रपात टूट पड़े। रेवती चल रही है। धरती धीरज रखे। गर्वित रूप चल रहा है। बस, ज़्यादा नहीं। दस पांच कदम ही। बाल्कनी दूर नहीं। वहीं, वह विभावरी को चुनौती देगी। रेवती और विभावरी।

रेवती सचमुच चल दी! एक कदम, दो कदम। तीसरा ' उफ, गिरते-गिरते बची। वह कमरा कहां था। वह बालकनी कहां थी। मनुभाई की बाड़ी! खोली नम्बर नौ। आगे वाला छोटा सा बरामदा, खम्बे ने सहारा दिया। रेवती संभल गई, गिरते-गिरते बच गई। रेवती खंबे से लिपटी खड़ी थी। उसकी छाती फट पड़ना चाहती थी। जीवन में पहली बार आलिंगन मिला था तो किसका। खंभा! कुरूप खंभा। जड़ खंभा। चन्द्रकांत तुम कहां हो। चन्द्र' ' 'उफ! उससे तो यह खंभा ही अच्छा। नहीं, नहीं, तुम नहीं! तुम दूर ही रहना। दूर ही रहना! जयन्त, उसे दूर रखो। जयन्त, चन्द्र को दूर रखो। जयन्त!

पर जयन्त कहां! रेवती चीख भी न सकी। रेवती रो भी न सकी। खंभा जयन्त बन ही न सका!

रेवती ने माथा खंभे पर टेक दिया था। दाहिनी बांह आकाश-बेल सी उसे लिपट गई थी। वह एक अजीब दोराहे पर खड़ी थी। नहीं! चक्की के दो पाटों के बीच में पिस रही थी। दारुण अतीत; दीन वर्तमान। वह खुद सुलगते हुए उपले सी। जिसमें आग है, धुंआ है, ताप है, जलन है; पर लपटें कभी नहीं उठतीं, आंधियां भी लपटें नहीं उठा पातीं। शायद लपटें अन्दर की ज्वाला की अभिव्यक्ति

हैं, जिनमें भीतर का दाह उतना दारुण नहीं रह जाता। पर जहां आग जल रही हो और लपटें अन्तर्मुखी हो उठी हों, कैसा दहन होता होगा !

उसकी आंखें यों ही पारसी की खिड़की से झांकने लगीं। हरी रोशनी ऐसे स्पन्दनशील प्राणों के अस्तित्व का आभास दिला रही थी जिन्हें रेवती की आंखें देख तक नहीं पा रही थीं। अचानक एक हंसी ! बंधनों से हीन हंसी। किलकती हुई हंसी। उफ, बेईमान हंसी। स्त्री की हंसी ! स्त्री की हंसी, कुछ ऐसी भी है। रेवती तो कभी वैसी हंसी हंस न पाई थी। कभी नहीं ! जहां तक याद है, कभी नहीं। वह हंसी क्या थी जैसे शराब की ढेरों बोतलें खुल पड़ी हों। बड़ी नशीली ! लाजवाब ! नहीं जवाब आया ! झुंझलाहट ! किसी पुरुष की झुंझलाहट। अस्पष्ट शब्द। रेवती शब्दों का अर्थ नहीं ग्रहण कर सकती ! पर ध्वनि तो पकड़ सकती है ! शायद हंसी डूब जाएगी। अन्दर ! पर नहीं ! वह तो तिरती रही। झुंझलाहट के उफान पर तिरती रही। कैसी हंसी। क्या कोई हंसी पर झुंझला भी सकता है ? क्या झुंझलाहट पर कोई हंस भी सकता है ? पर हो वही रहा है ? रेवती अकुला उठी। उसे कभी ऐसी हंसी क्यों नहीं मिली। उसकी हंसी को ऐसी झुंझलाहट क्यों नहीं मिली। हाय, हंसी है कि तारे टूट रहे हैं, फूल बिखर रहे हैं। नहीं, बिखरते फूलों से कहीं अधिक प्रखर है, हंसी। समुद्र-तट से आई बोझिल हवा से छनकर भी कैसी मादक ! पर रेवती तो जल रही है। उस हंसी से जल रही है। हाय, कैसे बंद हो वह हंसी। अपने कान बंद कर ले। वहां से हट जाए। खोली में घुस जाए। खिड़की-दरवाजे बंद कर ले। पर वह हट नहीं पाई, हिल न पाई ! उस हंसी के मंत्र ने उसके उत्पीड़न के नाग को कील दिया था। पर··· हंसी बंद न हुई तो ! तो उसकी आंखें खिड़की पर जा बैठीं। यह क्या ? परछाइयां ? दीवाल पर आलिंगन-बद्ध परछाइयां। हंसी खो गई। जलते हुए होंठ रह गए। रेवती के मन ने पुकारा : जयन्त ! कायर जयंत ! तुम कहां हो ! उसे लगा कि किसीने उसे बांध न लिया तो वह बिखर जाएगी। उफ़, असह्य। उसने खंभे को कसकर पकड़ लिया। काठ का खंभा जाने क्यों चूर-चूर न हो गया। फिर बंधन शिथिल पड़ गया। खंभे को लिपटने वाली बांहों पर खून उमड़ आया था। दांतों ने होंठों को घायल कर दिया था। आंखों में भूख भर उठी थी। रेवती रेवती न रह गई थी। वह दर्पण वाली

रेवती। दर्प और विश्वास से भरी रेवती। यह खंभे वाली रेवती। टूटी हुई रेवती ! दर्द और आग से भरी हुई रेवती। एक रेवती या दो रेवती। जैसे यह बरामदा और वह बालकनी, एक नहीं। वैसे ही उस क्षण की रेवती और इस क्षण की रेवती एक नहीं, दो। बरामदे वाली रेवती बालकनी वाली रेवती के बारे में सोचने लगी।

वह रत्नमाला सी रेवती तारों जड़ी रात पर हंसने बालकनी पर आई। चौखट पार करते हुए उसने सोने के काम की भारी साड़ी को सहज अदा के साथ कुछ ऊपर को उठाया। पांव टखने तक दिखाई दे गए। जैसे सुबह की पहली किरण में लिपटे बर्फ के दो कबूतर। बाहर फैले अंधियारे के माथे पर चन्दन के तिलक से चढ़ गए। रात फीकी सी पड़ गई। रेवती हंसी नहीं। कोई झरना नहीं फूटा। कोई घुंघरू नहीं बजे। कोई वीणा विचलित नहीं हुई ! सिर्फ मुस्कान दूध के फेन सी, आंख की काली पुतली के सफेद घेरे सी; होंठों से झांकते हुए कपूरी दांत सी; घूंघट से झांकते हुए रूप की कौंध सी। उसने रेलिंग पर हाथ टेक दिए। कबूतर उड़ गए। मुस्कान तारों में जाकर जम गई। बगिया के फूल ऊपर को मुंह उठाकर देखने लगे। नभ के तारे सिर्फ उसीको देखते रहे। रात फीकी पड़ चली। रेवती का पल्ला खिसक पड़ा; सिर से कंधे पर आ गया। सागर के सांवले जल से कपूरी चांद उठ आया। रेवती की गर्वित दृष्टि अंधियारे में ही दिग्विजय कर आई। उसे लगा, वह स्वयं में पूर्ण है। रेवती रूप की ऐसी सत्ता है जिसका अथ-इति उसीमें है।

पर तभी आहट हुई। कोई बालकनी में पड़ी कुर्सी से हड़बड़ी सी में उठ बैठा था। रेवती के तेवर बदले। सम्राज्ञी ने दर्प से पूछा—कौन ? यहां क्यों ? कैसे ?

वह व्यक्ति थोड़ा पास चला आया ! रेवती को परिचित सा लगा—'तुम'। पर फिर झिझक गई। हां, देखा है। फोटो ! ···'ओह, आप !' सकुचा गई। रोष-मान कुछ भी याद नहीं रहा।

चन्द्रकांत था। सुन्दर नखशिख। कोमल कलेवर। पर पुरुष के लिए कुछ अधिक ही कोमल। झिझक के साथ बोला—मेरा साहस न हो रहा था !

रेवती का मान लौटने लगा। फिर भी पूछा—किस बात का साहस !

उसने बताया—तुम्हारे सामने आने का।

मान कर भी नहीं पाई कि झटका सा लगा। रोष करना चाहा पर असफल

रही। वह चकित थी। मन को जाने कितने प्रश्न, कितने उत्तर मथ रहे थे। पर होंठों पर एक भी न आया। वह चुप ही रह गई। आँखों में तिरस्कार जरूर उमड़ा। पर न वह खुद जान पाई और न वह देख पाया। दीन स्वर में बोला—मैं, पता नहीं, माफी का भी हकदार हूं या नहीं !

—माफी ! किस बात की माफी—रेवती पूछ बैठी !

उसने उसी दीनता से कहा—तुम नहीं अनुमान कर पाईं। मैं, मैं शादी नहीं करना चाहता था। मैं जानता था कि मुझे शादी नहीं करनी चाहिए। पर मां न मानी। मैं इकलौता बेटा जो ठहरा! उन्होंने ज़िद की। पूछा—'आखिर क्यों नहीं।' मैं नहीं बता सका कारण। पर मुझे शादी नहीं करनी चाहिए थी। उफ, मैंने दगा किया है; मैंने एक निर्दोष के साथ दगा किया है। पर मैं मजबूर था। मैंने भाग्य को बड़ा मान लिया था। रेवती, मैं, यूरोप जाऊंगा, अमरीका जाऊंगा, बड़े से बड़े डाक्टर को दिखाऊंगा; रुपया पानी की तरह बहकर भी उसे हासिल करूंगा। पर रेवती, तुम मुझे तब तक के लिए माफ करना !

रेवती की समझ में कुछ नहीं आया। जो समझ में आता उसे जानकर जुगुप्सा होती। उसने कह दिया—नहीं, नहीं। मुझे कुछ नहीं चाहिए। आपने कोई अपराध नहीं किया। पर इस वक्त आप आए क्यों ? मैं अकेली रहती आई हूं, रह लूंगी।

रेवती का स्वर तीव्र हो उठा था। किसी वधू को कैसे व्यवहार करना चाहिए वह नहीं जानती थी। पर उसे लगा कि उसके व्यवहार में कहीं अस्वाभाविकता है। शायद दोनों के ही व्यवहार में अस्वाभाविकता है। चन्द्रकान्त जाने लगा था। बालकनी से वह कमरे में आया। फिर धीरे-धीरे कमरे के बीच में। वह देखती रही: वह और आगे बढ़ा; रूप-रंग का अच्छा, डील-डौल का अच्छा, पर फिर भी अनाकर्षक; रेवती के मन को आनन्द से भरने में असमर्थ। वह दरवाज़े के समीप आ गया। रेवती ने देखा। जो हो, उसका पति है, पति। वह पुकार बैठी—ठहरिए।

वह रुक गया, बोला कुछ नहीं। आँखों से ही पूछा—आज्ञा !

रेवती ने कहा—आपका कमरा तो यही है न। आप यहीं सोइए। मैं इधर कहीं भी सो लूंगी। बाहर अच्छा है। बालकनी में सो लूंगी। आप मत जाइए।

उसने रेवती को देखा। बिना घूंघट की रेवती को देखा ! उसकी सुहागरात

वधू से मिले विना बीत गई। दूसरी रात वधू पराई सी मिली। कोई संकोच नहीं, झिझक नहीं, उत्सुकता-आशंका नहीं। जिस रात में आकर्षणहीन वधू भी फूलों की रानी लगती है उस रात में रति सी सुन्दर रेवती का रूप उसे केवल आतंकित ही कर सका। उसने देखा और आंखें झुका लीं।

आलिंगनबद्ध छायाएं जैसे स्थिर हो गई थीं। उन्हें देखते रहने में रेवती को कुछ अजीब सा लगा। उसकी आंखें हठात् झुक गई। वह फिर वहां एक क्षण भी खड़ी न रह सकी। मुड़ी, खोली के भीतर आई। दरवाज़ा बंद किया। खिड़की बंद की! हाहाकार से भरी बिस्तर पर जा गिरी। कठोर बिस्तर। फिर भी कोमल लगा। वह अपने-आप में आती सी जान पड़ी। तकिये में मुंह छिपा लिया। उस रात को बालकनी में भी तो ऐसे ही सोई थी जमीन पर। कोई मनाने नहीं आया, उठाने नहीं आया। आज ही कौन आएगा। कौन आए? उस दिन तो वह ऐसी पीड़ा से भरी थी जिसे जानती ही न थी। पर आज की पीड़ा, ओह, अब तो बड़ी परिचित, आत्मीय हो उठी थी। जब आती है तो उसके रोम-रोम को जलाकर अपनेपन का परिचय देती है। हां, ऐसी ही जलन, ऐसी ही तड़पन, ऐसा ही अभिभव, ऐसा ही मंथन। सब कुछ ठीक ऐसा ही होता है; उसी रात से होता आया है। अब तो न होने पर विकल हो उठती है। जैसे संखिया का नशा। खाते-खाते आदत पड़ गई। संखिया न मिले तो मृत्यु हो जाए। तड़पन न हो तो चैन न आए। पर अब मामूली तड़पन से वह तृप्ति नहीं मिलती। कुछ और! और! और इतनी कि नसों का जाल टूट जाए, त्वचा के बंधन बिखर जाएं, हड्डियों का ढांचा ढह जाए; वह होश में न रहे। पर अब तो इस सदा की पीड़ा से नशा होता ही नहीं; होता ही नहीं। जहरीले से जहरीला कीड़ा छिपकली के लिए कुछ नहीं। चट्-चट्!

खोली में घुटन थी। रेवती की जिन्दगी में घुटन थी। चन्द्रकान्त को चाहे पति का पद और आदर न दे सकी, पर उस घर को उसने अपना लिया था।

'चन्दर' की मा अन्नपूर्णा के समान बहू को भंडार की चावी सौंप निश्चिन्त हो गई थी। उन्हें तो अब सिर्फ 'राम का काम' रह गया था।

रेवती धीरे-धीरे बालकनी से कमरे में चली आई। पति-पत्नी की तरह उनके बिस्तर बिछते, वे भी दिखावे को उसी तरह बरतते। लोग अचरज करते कि अंग्रेजी पढ़ी-लिखी बहू भी वैसा नहीं करती जैसा कि आजकल की अनपढ़ बहुएं करती हैं। पति के साथ बेशर्मी से बातें करना, घूमना, सिनेमा और चायपार्टी में जाना। सास कहती, जाने किसके पुण्यों से ऐसी बहू पाई। रेवती अपनी बढ़ाई सुनती, पर व [illegible]ी खुश न हो पाती। इसी तरह बरस पर बरस बीतते गए। सास पोते के जन[illegible] [illegible] लालसा लिए ही स्वर्ग सिधार गई। लोग अब भी कहते—हाय, राम का दि[illegible] स[illegible] कुछ! पर भोगने वाला कोई नहीं!

रेवती पूरे पच्चीस की हो गई। जवानी की दोपहरी। अंग-अंग में काम किलकता। जब रात आती, चन्द्रकान्त पलंग पर पड़ते ही खर्राटे भरने लगता। 'ठीक हो'? 'अच्छी हो'? 'कोई ज़रूरत है' 'वह चीज़ मंगवा दूं?' 'फलां चीज़ खरीद दूं'? बस ये ही कुछ बातें होतीं जिन्हें वह सोने से पहले दोहरा-दोहराकर पूछ लेता। और उनके मूक मुखर उत्तरों में, कर्तव्य की निवृत्ति का अनुभव कर लेता। लोटते ही उसकी नाक बजने लगती। रेवती को काम-भुजंग लपेट लेता। वह कल्पना में ही जाने कहां-कहां बिहार करती। जाने किन-किन कथाओं के नायकों के साथ मनोलोक में रमण करती और फिर कल्पना के थक जाने पर खुद भी थककर सो जाती। पर नींद में कभी चांदनी तंग करने लगती, कभी घने अंधेरे की कोई आवाज़। बरसात की रातों में बिजलियां चैन न लेने देतीं, तो जाड़े की रातें ठंड से दुर्वह हो जातीं। रोज़ वही होता। सेज शर-शय्या सी। वह भीष्म सी। जाने किस घड़ी की प्रतीक्षा में रहती!

तभी जयन्त आ गया। चन्द्रकान्त का ममेरा भाई। एफ० ए० पास क[illegible] चुका था। बी० ए० करने लखनऊ चला गया। घर में ही ठहरा। शुरू-शुरू में तो रेवती को बड़ा अजीब लगा। वह जिस मनोदशा में थी उसमें किसी भी तृतीय से बचना चाहती थी। मैके भूले-भटके जाती। मां-बाप सोचते: मन का पति मिल जाने से मन रम गया। ज़िद न करते। पर हर बार उसके विदा होते समय

एक वचन ले लेते—देख, तेरा पहला बच्चा जो भी हो, लडकी चाहे लड़का, वह नाना-नानी का। तेरे साथ हमारे घर का बोलता सुग्गा चला गया। अब तुझे ही वह देना होगा।

रेवती को तब कैसा लगता! होंठ वक्र हो उठते। पर वह उनसे हंसी का अभिनय करने का असफल प्रयत्न करती। मां-बाप सोचते, मन की खुशी दबा रही है। उसके दहन को किसीने जाना ही नही। वह भी क्यों जानने दे। क्यों किसीको सहानुभूति का ढोंग रचने दे। क्यों किसीको दया दिखाने का अवसर दे?

और इधर आ गया जयन्त। मसें भीगी ही थीं। चौड़े कंधे, लंबा कद। आंखें में अजीब लुनाई। कुछ भोलापन, कुछ खोयापन लिए। घने लहरीले बाल जिनमें उलझी हुई दृष्टि का विस्तार नहीं। जो पहन लेता उसीमें अच्छा लगता। आवाज में अजीब आकर्षण। उसमें वह सभी कुछ था जो वह चन्द्रकांत में पाने की लालसा रखती। फिर भी जयन्त उसे अच्छा न लगा। क्या सोचेगा हमे देखकर! भला दुनिया में जवान पति-पत्नी भी कभी इतने निस्पृह हुए! वह उससे दूर ही दूर रहती पर देवर भाभी से कैसे रहता! वह 'भाभी, भाभी' कहता कमरे में घुसा ही चला आता। भाभी बाल वहा रही है, फिर भी वह नहीं मानता। आ ही गया। 'हाय भाभी, कितने प्यारे बाल!' वह कहना चाहती—'नजर मत लगाइयो राजा' पर न कह पाती। उल्टे अचकचा जाती। किसी पुरुष से उसने ऐसी प्रशंसा सुनी ही नहीं थी; पति तक से नहीं। सिर पर आंचल रख लेती। फिर जयन्त की आंखों में कुछ देखती, पर उसे किसी पुरुष के दर्शन न होते। निरा बालक। अपनी प्रशंसा को आप ही न समझने वाला। वह हताश सी हो उठती। पर जयन्त वैसा ही बना रहा। 'भाभी गुलाबी रंग तो गजब ढाता है!' भाभी के गाल गुलाब हो जाते। जयन्त लजाने का हेतु ही नहीं समझ पाता। एक बार तो उसने भाभी को अचरज में ही डाल दिया—भाभी, ब्लाउज़ का यह फैशन तो पुराना हो चला। वैसा बनवाओ न जैसा इस तसवीर में है। सब पढ़ी-लिखी औरतें, ऐसा ही ब्लाउज़ पहनती है।

भाभी ने तसवीर को देखा: चोलीनुमा ब्लाउज़, उरोजों तक नंगा पेट। तसवीर बड़ी प्यारी थी। उस ब्लाउज़ में और भी प्यारी लग रही थी। पर इतना नंगा पेट। वह अपने-आपमें सिमटने सी लगी। यह पगला जयन्त क्या-क्या कह रहा

है। कनखियों से देखा : बड़ी भोली आंखें; अपनी बातों का आप ही मतलब न समझने वाली आंखें।

जयन्त यूनिवर्सिटी में, हज़रतगंज में, काफीहाउस या रेस्तरां में जो कुछ भी आंख को भाने वाला फैशन देखता उसीकी भाभी को आकर सूचना देता और यह भी चाहता कि भाभी वैसा करे। उसकी राय में वह उन सब से सुंदर थी, और वह फैशन उसपर सब से ज़्यादा फबेगा।

एक दिन वह बोला—भाभी, तुम 'बाब्ड हेअर' करवा लो तो बड़ी प्यारी लगो। पर भाभी करवाना मत। तुम्हारे ये लंबे बाल सचमुच बड़े प्यारे हैं। इन्हें छूने को मन करता है, भाभी !

रेवती पर जैसे नशा छा गया। रूपवती है, संदेह नहीं। पर जो रूप इन मृग सी भोली आंखों में भी सपने जगाए, वह सचमुच ही गर्व का विषय है। वह जयन्त के बिल्कुल पास आ गई। खुले हुए बालों की एक लट को हाथ में लेकर बोली—लो जयन्त, छूकर भी देख लो !

लट कंधे और वक्ष से होती हुई भाभी के गुलाबी हाथ से कुछ ऐसे लटक रही थी जैसे लाल कमल की अंजुलि जमुनाजल के अर्घ्य से देवता की प्रीति कर रही हो। सुवासित लटों को छूकर आई हवा जयन्त की नासिका के मार्ग से मन को बेहोश सा कर रही थी। उफ, इतनी सुंदर और अद्भुत है भाभी, यह उसे आज पता लगा। रेशम सी उस लट को छूना चाहकर भी छू न सका। शरीर में अजीब सी कंपकंपी हुई, रोम खड़े हो गए। आंखें झुक गईं। 'भाभी' पुकारने का प्रयास विफल हुआ। वह वहां से भाग गया। भाभी अकेली रह गई।···

रेवती ने तकिए को कसकर छाती से लगा लिया। यह जयन्त तो सदा का भगू रहा है। पर इतने दिनों को तो कभी नहीं भागा। पराए शहर में छोड़कर भाग गया। ओह, जयन्त लौट भी आओ !

···पर तब जयन्त बिना बुलाए लौट आता था। उस बार भी लौट आया था। बस कुछ देर तक लजाता रहा। आंखें बचा-बचाकर बात करता रहा। अचानक आंखें मिल जातीं तो बिना बहाने के हाथों से ढक लेता।

और भाभी ? उसने किसी पुरुष पर अपने रूप के इस अद्भुत प्रभाव को जाना ही न था। शुरू-शुरू में वह जयन्त की प्रशंसा से पुलकित हो उठती थी। पर अब जयन्त को पुलकों से भरने को प्रस्तुत रहती। पर कुछ ऐसे ढंग से जिससे उद्देश्य स्पष्ट न हो। धीरे-धीरे जयन्त भाभी से छेड़ करना भूल गया। नए फैशन का सुझाव देना भूल गया। पीछे से जाकर कन्धे पकड़ने का साहस खो बैठा। चारपाई पर लेटी हुई भाभी के पास ही बांहों पर गाल टेककर उसके मुंह को टुकुर देखने की बान छोड़ बैठा।

भाभी का सामीप्य चाहता ज़रूर, पर किसी व्याज से। उसे देखना चाहता जरूर, पर चोरी से। पहले भाभी तभी याद आती जब वह सामने होती, अब तब भी याद आने लगी जब कि दूर होती।

अब भाभी छेड़खानी करती और वह लजाता। भाभी उसके कपड़ों के रंग, ब्लाउज़ों के डिज़ाइन, साड़ियों के स्टाइल के बारे में सलाह लेती और वह कहता—में क्या जानूं भाभी !

वह भोली आंखों वाला मृग अब उतना भोला नहीं रह गया था। यह और कोई चाहे न समझे, पर भाभी जरूर समझती थी। एक बार कुछ शरारत सूझी। ब्लाउज़ पहनते वक्त जयन्त आ गया। देखते ही लौटने लगा। उसने आवाज़ दी—'जयन्त !' 'क्या भाभी ?' उसने बाहर से ही पूछा। भाभी ने बुलाया—'अन्दर आओ !' वह नीची निगाहों से आया। भाभी बिना उसकी ओर देखे, शीशे में उसकी परेशानी को पढ़ती हुई कंटीली मुस्कान के साथ बोली—तुम वक्त से आए जयन्त। इस ब्लाउज़ से तंग हूं। कितना तंग है। उफ, बटन तक बन्द नहीं होते। पर तुम्हें पसन्द जो ठहरा। इसीसे पहनती हूं। ज़रा हुक और बटन लगा दो !

जयन्त पास न आ सका। भाभी चली आई। पीठ कर दी। उफ सीप सी पीठ। शंख सी गर्दन से कर्धनी तक का कुछ-कुछ खुला भाग। बीच में काल तिल। जयन्त की आंखें परेशान हो गईं। भाभी का मुंह नहीं उस तरफ। फिर भी चेहरा लाज से लाल हो गया। बटन बन्द करने को हाथ बढ़े ही नहीं। पर भाभी जैसे उसकी हर भावना को पढ़ रही थी। जल्दी करो जयन्त। कोई आ जाएगा, क्या तभी बन्द करोगे।

कोई आ भी सकता है—यह नवीन भीति थी। आज तक तो उसके और भाभी के व्यवहार के बीच में किसीके आने से कोई भीति न जगी। पर आज... क्या वह बदल गया, भाभी बदल गई, सम्बन्ध बदल गए।

जयन्त के कांपते हुए हाथ पीठ की ओर बढ़े। हाथ, बचाते-बचाते भी अंगुलियां नंगी पीठ को छूकर कांप उठीं। अब कैसे लगाए बटन। नहीं लगे जयन्त से। 'भाभी, भाभी...' कुछ कह भी तो नहीं पाया। भाग गया जयन्त। भग्गू जयन्त। पीठ देखकर भागने वाला जयन्त! पीठ दिखाकर भागने वाला जयन्त!

आह, रेवती क्या करे? जयन्त ने तब उस पीठ पर माथा क्यों न टेक दिया। जलते हुए होंठों से उस शंख सी गर्दन को चूम क्यों न लिया। उस काले तिल पर दांत क्यों न गड़ा दिए।

पर भाभी को तब पता ही कहां था पीठ के उस तिल का! यह भी तो जयन्त ने ही बताया था। उसके साथ एक लड़की पढ़ती थी। गाल में तिल था। ब्यूटी स्पाट। लड़कों ने उस लड़की का नाम 'ब्यूटी स्पाट' रख लिया। लड़की खूबसूरत थी। तिल भी दिल तोड़ने वाला था। पर जयन्त को वह कभी सुन्दर न लगा। भला भाभी के पीठ के तिल से क्या मुकाबला! पर किससे कहे अपने मन की बात, आखिर भाभी ही मिली कहने को।

बोला—भाभी, एक बात बताओगी?

भाभी ने नशीली हंसी को साधकर कहा—पूछो।

जयन्त ने संकोच को छिपाते हुए कहा—सच-सच बताओगी न।

भाभी ने काली पुतलियों को नचाकर—नहीं झूठ!

जयन्त ने उस झूठ को ही सच मानकर एक और आश्वासन मांगा—मेरी हंसी तो नहीं करोगी भाभी!

भाभी ने फिर कहा—देवर से हंसी नहीं करूंगी तो क्या करम को रोऊंगी।

जयन्त ने उसे भी उचित आश्वासन मान लिया। बोला—तो बताओगी भाभी, गाल का तिल ज्यादा खूबसूरत होता है या पीठ का।

इस प्रश्न ने चिन्गारी को उकसा दिया। भाभी की आंखों में भूख उमड़ी; ऐसी कि जयन्त को निगल ले। मृग सी आंखों वाला जयन्त। उफ, नहीं। पर

उससे ऐसी बातें यह जयन्त ही क्यों करता है। और कोई क्यों नहीं करता, भला क्यों नहीं करता। भाभी बिखरने लगी। पर तुरत ही स्वयं को संभाल लिया। जैसे भूकम्प के एक धक्के में धरा का सब कुछ डोलकर फिर संभल गया हो। भाभी ने हंसी को उठाकर होंठों पर जड़ दिया। पूछा—वह तो मुख और पीठ की बात है बाबू! किसका मुह, किसकी पीठ मैं भी तो जानूं।

जयन्त ने बताया—कालेज में एक लड़की है। बड़ी सुन्दर समझती है खुद को। उसके मुंह पर तिल है।

—हूं—भाभी ने आंखें नचाईं—लालाजी पढ़ते हो कि लड़कियों के गाल के तिल घूरा करते हो!

जयन्त ने लजाते हुए सफाई दी—नहीं भाभी! लड़की को देखा तो बहुत बार, पर तिल आज ही दिखाई दिया।

भाभी ने अपनी ही पीठ के तिल को जाने बिना कहा—तो किसीकी पीठ के तिल ने दिखा दिया। हां तो, पीठ का तिल कहां देखा? कह दो कालेज में? मैं मान लूंगी कि वह गोमती जो बहती है, उसपर एक घाट है। वहीं लड़कियों की पढ़ाई हुआ करती है और लड़के उनकी पीठ के तिल गिना करते हैं।

—बड़ी बुरी हो भाभी!—जयन्त ने कहा।

—क्यों नहीं—भाभी का मजाक जोर पकड़ गया। भला उस पीठ पर तिल वाली से भाभी का क्या मुकाबला!

इसके उत्तर में जयन्त हठात् कह गया—भाभी, वह तिल तो तुम्हारी ही पीठ पर है। आज सुबह, ब्लाउज के बटन बन्द······

जयन्त फिर भाग गया। वाक्य भी पूरा नहीं किया। भाभी को परेशानी में डालकर भाग गया। उसकी पीठ का तिल देखने वाला पहला पुरुष भी वही निकला। पर वह भाग-भाग क्यों जाता है। हाय, उस तिल को कैसे देखे! देखने वाली आंखें तो सकुचाकर झेंप जाती हैं। भाभी ने ब्लाउज उतार दिया। पीठ के तिल की खोज में गर्दन मोड़ी। बहुतेरा शीशे को इधर-उधर किया। पर न देख सकी। कैसा लगता है वह भी तो देखे। गाल का तिल। पीठ का तिल। गाल के तिल तो ढेरों देखे। पर पीठ का तिल! पीठ का तिल! ज़रूर ही उसमें कुछ खासियत है। नहीं

तो जयन्त···वह सोचती रही। वह सोच ही रही थी कि जयन्त फिर आ गया। जयन्त ने देखा, अस्तव्यस्त भाभी। उफ, भाभी है या बिजली। तन पर ब्लाउज़ नहीं···नहीं···नहीं···कुछ नहीं। जयन्त अन्धा हो जाएगा। जयन्त ने भाभी को फिर देख लिया तो अन्धा हो जाएगा।

जयन्त फिर पूरे चौबीस घंटे गायब रहा। भाभी चौबीस युग परेशान रही। रेवती तो जाने कब तक परेशान रहेगी। आ, वह क्यों उसे बार-बार भाग जाने देती। उसने उसे क्यों नहीं बांध लिया। क्यों नहीं जकड़ लिया। क्यों नहीं अपने में समेट लिया। 'नैना अंदिर आव तूं, जो हों नैन झपेऊं। ना हौं देखूं और कूं, ना तुझ देखन देऊं॥' पर नहीं कर सकी रेवती। उसके नयन भटकते रहे। बार-बार उन पटों में उसका प्रिय आया और बार-बार आकर चला भी गया। यह पीठ का तिल भी उसे न रोक सका। इस बार तो तीन रातें बीत चली थीं, उसे गए। रेवती तड़पने लगी। पीठ में कहीं कोई अंगारा रखा था। उफ़, वह तिल ही जल रहा था।

रेवती का आत्मविश्वास टूट रहा है। पर भाभी, उफ, गज़ब थी। चन्द्रकान्त उसमें परिवर्तन देख रहा था। उस परिवर्तन से उसे शिकायत न थी। बल्कि वह खुश था। रेवती को प्रसन्न देखकर उसके मन की ग्लानि कुछ-कुछ धुल सी जाती।

एक बार वह इसी सिलसिले में मुखर हो बैठा था। वे दोनों सदा की तरह सोने आए थे। सदा की तरह पास-पास पलंगों पर लेटे थे। सदा की तरह वह रेवती से पहले ही लेट गया था। रेवती ने आभूषण-वस्त्र उतारकर स्वयं को हल्का किया। फिर धीरे से बिस्तर पर आई। चन्द्रकान्त का मुंह दूसरी तरफ था। वह उसकी ओर मुंह करके लेट गई। बेड-स्विच दबाकर कमरे में अंधेरा कर दिया। कुछ देर अंधकार की शांति धीमी-धीमी सांसों से भंग होती रही। चन्द्रकान्त ने करवट ली। पलंग मचमचाया। रेवती के लिए वह सब व्यर्थ था। अचानक किसीने रेवती को छुआ। रेवती को वह स्पर्श गर्म सलाखों सा लगा। चन्द्रकान्त ने धीमे से पूछा—

'सो गई ?' रेवती के कानों में घड़ियाल बज उठे। उसे बेहद खीज उठी। होंठों को दांतों से काटकर खीझ को दंशित किया। पर चन्द्रकांत चुप न हुआ। इस बार उसने उसे धीमे से हिलाया और कुछ ऊपर को झुककर पूछा—सो गई रानी ?

'रानी' असह्य हो गया। उठ बैठी रेवती। बेड-स्विच पर हाथ गया। कमरा रोशनी से भर गया। चन्द्रकान्त ने देखा : जैसे फूला हुआ कदंब धू-धू कर जल रहा हो। रेवती ने देखा : जैसे भीत मृग पीछा करती हुई सिंहनी की शरण में आया हो। इस दीन प्राणि पर रोष। रेवती को लगा कि वह अपना अपमान कर रही है। आग बुझने लगी। पर उसके छुए हुए स्थान पर जलन में कोई कमी न थी। उसने रोष को कुतूहल में डुबोकर पूछा—क्या बात है ?

——रेवती! चन्द्रकान्त ने झिझक के साथ कहा—रेवती, मुझे एक भीख दोगी !

भीख ! भीख में ही तो आई है रेवती। आंख बंद करके ही तो इस फटी झोली में मां-बाप ने उसे डाल दिया था। सब कुछ तो भीख में दी जा चुकी है। यह भिखमंगा अभी कुछ और की आशा करता है ! भिखमंगा !–रेवती भीख होकर भी ऊंची उठ गई। चन्द्रकांत उसे अतिशय तुच्छ लग रहा था। हिकारत भरी नज़र से देखकर बोली—कहो !

चन्द्रकांत ने सकपकाते हुए कहना शुरू किया—कैसे कहूं ! कैसे मांगूं ! मैं तो मांगने की काबलियत भी नहीं रखता। पर तुम इतनी अच्छी हो कि उसी अच्छाई के बूते पर हिम्मत कर पाता हूं। मैं···मैं बड़ा अभागा बनकर पैदा हुआ था। पर मेरा अभाग्य तुम्हें मिल गया। मैं भाग वाला हो उठा। मैं पत्नी वाला हूं। पता नहीं, कभी मुझ जैसा कोई पत्नी वाला हुआ या नहीं। पत्नी भी तुम्हारी जैसी। मैं कुछ और चाहता हूं। तुम्हें देखकर एक नई लालसा बढ़ आई है। तुमने मुझे पत्नी दी। तुम मुझे, हां रेवती, सचमुच रेवती···तुम मुझे शेष सब कुछ भी दे सकती हो। शेष, सभी कुछ···

रेवती नहीं समझी। अनजान। रेवती ने होंठ काटते हुए पूछा—शेष क्या ?

चन्द्रकांत उसकी ओर देख भी नहीं पा रहा था। चादर के किसी फूसड़े को नोच रहा था। सहसा कह दिया—सन्तान !

'सन्तान !' ज्वालामुखी फट पड़ा। रेवती के मन में आया कि इस बेईमान भिखमंगे के मुंह पर थूक दे। चाहा कि चिल्ला-चिल्लाकर कहे कि दुनिया में कभी किसी पौरुषहीन के संतान भी हुई, जो उसीके होती। उसके दांत होंठ में गड़ते जा रहे थे। चन्द्रकांत की नज़र पलंग पर बिछी थी। उसने देखा कुछ नहीं। सिर्फ मौन को अनुभव किया। उस मौन से उत्साहित होकर उसने कह दिया––मुझे जयन्त अच्छा लगता है।

'पापी'––रेवती चीख उठी थी। जैसे डाल तने से टूटकर गिर पड़ी थी। चन्द्रकांत ने आंख उठाकर देखा। आंगन की तुलसी पर जैसे लपटें मंजरी बनकर खिल रही थीं। उसने भावावेश में भरकर रेवती के पैरों में माथा टेक दिया––मुझे माफ करो देवी, मुझे माफ करो। मैं सचमुच नहीं जानता था कि मैं तुमसे क्या मांग रहा हूं। मैं···मैं ··

चन्द्रकांत रोने लगा। रेवती उसे रोता हुआ छोड़कर बाहर बालकनी पर चली आई। दीवाली आने वाली थी। हवा में गुलाबी ठंड थी। पर वह उसे लू सी लिपटी। चन्द्रकान्त उसे बुलाने का साहस भी न कर सका। वह बालकनी की रेलिंग पर वक्ष टेककर खड़ी रही; खड़ी रही गूंगी सी, पत्थर सी, कोई कल्पना नहीं, कोई विचार नहीं, अभी-अभी क्या हुआ, उसका ज्ञान नहीं। अभी-अभी क्या हो जाएगा उसकी चिन्ता नहीं।

बाहर क्षीण होता हुआ चांद था। दीपावली से डरा सहमा-सा। कमरे में आंखों में करकने वाली रोशनी थी। वह बालकनी के दूसरे छोर पर चली गई जहां रोशनी उसे छू भी न सके। फिर अंधियारे में लिपटी कल्पना में खो गई। चन्द्रकांत ने कमरे की बत्ती बुझा दी है, उसे पता भी नहीं चला। वह सो रहा है, या जाग रहा है, यह भी उसने नहीं सोचा। उसे ग्लेक्सो के कलैंडर में बनी उस सुंदर हृष्ट-पुष्ट बच्चे की तसवीर ध्यान में आई। कितना प्यारा बच्चा !–गोल-मटोल, केले की गोब सा। वक्ष के नीड़ में छिपा लेने को मन करता है। पर कहां से पाए वह बच्चा। उफ, वह तो बंजर धरती सी है। जिसपर दूब भी न उगे, पीपल भी न जनमे ! भाग की मारी बंजर। बादल जिसके पास फटके भी नहीं। सर्वत्र सहस्र-सहस्र धाराओं में फट पड़े, पर उसके नाम का छींटा भी नहीं। उसके जीवन के आकाश में कोई

भूला-भटका बादल भी नहीं। पर चन्द्रकांत उसे जैसे एक छोटे से बालक को दिखा रहा है। जयन्त ! जाड़े के बादल सा जयन्त। उसे तो यौवन की बरसातों ने, उन्मादों की घटाओं ने, तड़पन की बिजलियों ने वह ऊमस दी ही नहीं कि वह स्वयं में न रहकर, रोम-रोम से सरिताएं प्रवाहित कर सके; रस की धाराएं उमड़-उमड़-कर बहें; प्लावन मच जाए; बंजर धरती डूब जाए। उसके नुकीले पत्थर कोमल हो जाएं। उसमें बीज को ग्रहण करने की क्षमता पनप सके। नहीं, नहीं, इस जाड़े के बादल में कहां वह सब कुछ।

रेवती की बेकली का ठिकाना न रहा। रेलिंग पर कोहनियां टिकी थीं। फूल-फूलकर उठता-गिरता वक्ष उसे छू-छू लेता। रेवती की कोहनियां नीचे को सरक गईं। वक्ष रेलिंग पर पूरी तरह टिक गया और वह बावली सी उसे पीसने लगी; रेलिंग को तोड़ने लगी। सांसों में लपटें दौड़ने लगीं, पर बादल दूर ही रहे।

कमरे में जाने का रेवती का मन नहीं कर रहा था। बगल के पलंग से उठती हुई सांसें उसे बबूल के कांटे सी गड़तीं। बालकनी से लोहे की चक्करदार सीढ़ियां छत पर गई थीं। रेवती उन सीढ़ियों से चढ़कर छत पर चली आई। आसपास के किसी मकान की छत इतनी ऊंची न थी। तारे उसके बिल्कुल पास थे। अंधेरा जहां भी जगह मिली वहीं भरा पड़ा था : रेवती के भीतर-बाहर, सर्वत्र।

लखनऊ से दूर, बंबई में; बंबई की रौनक से दूर, मनुभाई की वाड़ी में; बाड़ी की हलचल से अलग नौ नम्बर की खोली में रेवती पड़ी है। मद्धिम लालटैन के बावजूद भी घनेरा अंधेरा लग रहा है। रेवती को ग्लैक्सो के कलैंडर में बनी बच्चे की तसवीर अब भी भूली नहीं। उसका कोई नहीं होता, कुछ नहीं होता, सिर्फ एक बच्चा होता। जब हूक उठती, दिल को भूख लगती, यौवन का नाग डसने को फुंकार उठता तब उसीको छाती से लगाकर खुद को बचा लिया करती। इस खोली में भी उसकी किलकारियां सुन-सुन संगीत की सरगम में खो जाया करती। वह पूछता, छिपकली को देखकर पूछता--'मां, यह कौन है।' मैं बताती—'इससे दूर ही रहना मेरे लाल। यह जहर की भरी विषतूली है।' वह दीवाल पर दौड़ते हुए खटमलों को देखकर चिल्लाता—'मां, मां, खटमल।' मैं तब उनके दशनों को भी भूल जाती। शायद उसे खटमल का नाम भी पता न होता। तब भी मैं अभावों में

भरी-पूरी रहती। खटमलों, मच्छरों और छिपकलियों के बीच अंधेरोंघुप में भी रह लेती। पर वह तो कलैंडर की तसवीर है। मेरा हंस कहां! मैं तो जाड़े के बादल को लेकर खुश्क ठंडी हवा सी, पछुआ सी उड़ती रही। जाड़े का बादल और पछुआ हवा। पछुआ हवा और जाड़े का बादल। आह, जयन्त। कायर!

जयन्त...जयन्त!—छत पर खड़ी भाभी ने पुकारा। पर पुकार को होंठों की परिखा पार न करने दी। पुकार दिल में घुटन सी घुमड़ उठी। सूनी छत। ऊंची अटरिया। अकेली नार। उसे अपने साथ पढ़ने वाली कश्मीरी लड़की मिस धर की याद आई। वह जब आग को 'नार' कहा करती तो उसे बड़ी हंसी आती। आज अचानक ही 'नार' शब्द दिमाग में घूम गया तो उसे लगा कि ठीक कहती थी मिस धर! नार, अकेली नार। ऊंची अटरिया की अकेली नार आग ही तो; रात में जिससे तारे जलते हों, दिन में जिससे सूरज तपता हो। हाय रे अकेलापन! जानलेवा, धीरज का लुटेरा अकेलापन! जब चन्द्रकान्त होता है, तब भी वही अकेलापन। जब नहीं होता तब भी वही अकेलापन। उसके लिए उसका कोई अस्तित्व नहीं। इस बंजर को तो बादल चाहिए, बादल!

वह अकेलेपन से घबराकर धम्म से छत पर बैठ गई। सीली, सीली, ठंडी-ठंडी छत। घुटनों में मुंह छिपा लिया। बांहों से टांगों को बांध लिया। खुले बाल अंधियारे के चमर से फैल गए। उनके सिरे छत को छूने लगे। एक क्षण, दो क्षण, तीन क्षण। किसीने उसकी लट को पकड़ लिया। हाय, फिर उसने छू लिया। रेवती पत्थर की रगड़ से निकली आग सी चमक उठी—पापी!

—भाभी—जयन्त था!

—ओ, तुम! मैंने सोचा...। मैंने सोचा... उफ, कुछ नहीं। बैठो जयन्त। मेरे पास ही बैठो जयन्त। तुम सोए नहीं। तुम्हें नींद नहीं आई। बैठ भी जाओ जयन्त। छत पर तुम कैसे आ गए। मैं तुम्हें याद ही कर रही थी। तुम्हें मैंने पुकारा भी था। तुमने सुन ली मेरी पुकार। जयन्त! ओह, तुम खड़े हो। बैठो भी जयन्त—भाभी बोलती गई, जैसे सपने बोल रहे हों।

जयन्त को भी वैसा ही लगा। ऐसी भाभी को, घास पर पड़ी ओस सी भाभी को तो उसने इससे पूर्व जाना ही न था। वह बैठ गया—भाभी, नींद नहीं

आ रही थी। बड़ी कोशिश की। नहीं ही आई। उल्टे तुम्हारी याद आने लगी।

——मेरी याद?——भाभी की गर्दन झटके से उठी। जैसे बदली पवन पर सवार हो गई।

रात के झीने अंधेरे में जयन्त भाभी की आंखों को नहीं देख पा रहा था। उन आंखों को जो उसे निरस्त्र सा कर देती हैं, उसके बोल छीन लेती हैं, उसके साहस पर डाका डाल देती हैं। न होंठों की उस वक्रता को देख पा रहा था जो उसे छुरे की धार सी लगती हैं; बिछलन भरे घाट सी, खड्ड में गिरती हुई पहाड़ी ढलान सी। और न वह गालों की उस मुखर सुर्खी को देख पा रहा था जो उसे जंगल की आग सी, फूले हुए टेसुओं के वन सी, सुग्गे की चोंच सी लगती है और जिससे उसका साहस हार मान लेता है। इस समय तो भाभी मात्र देह थी। वह देह जो दूर रह-कर उसे खींचा करता है। मात्र मांसपिंड थी, जो उसमें भूख जगाया करता है। मात्र छवि का झरना थीं, जिसकी चपल लहरियां उसके लिए अनन्त कटाक्ष बन जाती हैं। वह बैठ गया। बालों की जो लट भाभी के गर्दन उठाते ही छोड़ दी थी, फिर पकड़ ली। जैसे चकोर ने चांद पर कमन्द डाल ली। 'भाभी'——जयन्त उस लट को सूंघ रहा था। 'भाभी मुझे अपनी यह लट काटकर दे दो।' बावला जयन्त बोल रहा था।

भाभी अपने-आपको पा रही थी। बोली——नहीं दूंगी। तब तो तू मेरे पास नहीं आएगा।

——भाभी, मुझे अपनी इस लट से बांध लो——जयन्त का यही शायद उत्तर था।

——मुझे लूटने चले हो जयन्त?——भाभी प्रवीणा की तरह बोली।

——लूटना चाहता हूं भाभी, पर कैसे लूटूं। तुम्हीं बताओ कि कैसे लूटूं——मूरख जयन्त मुखर हो चला था।

——मुझसे दूर चले जाओ। मुझे छोड़कर भाग जाओ। मैं लुट जाऊंगी। मैं सचमुच लुट जाऊंगी——भाभी ने नाटक के रटे हुए सम्वाद की तरह कह दिया।

खोली में पड़ी हुई रेवती ने सोचा——जयन्त कहीं मुझे लूट ही तो नहीं रहा है। तब की बात अब तो नहीं कर रहा है।

—नहीं भाभी—जयन्त ने उस लंबी लट को अपने गले में लपेट लिया था। जैसे कह रहा हो : इससे बंधा हूं, नागपाश। कैसे मुक्त हो सकता हूं; कैसे भाग सकता हूं।

फिर मौन हो गया। लट से लपटा जयन्त बैठा रहा। केशों के सुवास में होश खोता रहा।

—भाभी नींद आ रही है !—जैसे तन्द्रा का स्वर हो।

—जाकर सो जाओ जयन्त। बिस्तर बिछा तो है—भाभी ने बिना बुरा माने कह दिया। उसे पता था कि यह सेज पर आने वाली नींद नहीं।

—बिस्तर छू-छूकर जगा देता है भाभी !—जयन्त बोला।

—और मैं छूती रहूं तो ?—भाभी ने पूछा।

—मैं सो जाऊंगा—जयन्त बच्चे की तरह बोला।

भाभी को लगा जैसे ग्लैक्सो के कलैंडर का बच्चा, कपूर सा, केले की गोब सा। भाभी का मन कर आया कि उसे थपक-थपककर सुला दे—ले सो जा जयन्त।

गोद में सिर ले लिया। जयन्त सीली हुई छत पर थके हुए पांखी सा लेट गया। भाभी की गोद एक-एक तिनका जोड़-जोड़कर बनाए घोंसले सी हो गई। भाभी की बिखरी लटों से मुंह को ढांप लिया। सांस बोझिल हो उठे, पानी के भीतर ही भीतर तैरती मछली से चलने लगे। उन लटों की कमंद के सहारे नींद की परियां उतरने लगीं। एक, दो, तीन, तीस, शत, सहस्र ! परियां ही परियां। जयन्त खो गया। भाभी खो गई। यह तो निरा कलैण्डर की तसवीर सा बच्चा निकला। नाक बजने लगी; करवट भी नहीं ले रहा; कुनमुना भी नहीं रहा। सचमुच ही बच्चा। पर भाभी को तो अभी बच्चे की ज़रूरत नहीं थी। जयन्त उसकी ज़रूरत समझ ही न पाया। वह होली सी जलती रही। जयन्त प्रह्लाद सा सुरक्षित रहा।

रेवती आज भी जाग रही थी। जयन्त तो आज की रात भी सो गया होगा; उससे दूर रहकर भी सो गया होगा। पर रेवती तो दईमारी है। न दूर सो पाती है, न पास ? क्या करे रेवती। यह रात ही युगों लंबी हो उठी थी। अतीत उसके मन पर परछाइयां छोड़ता हुआ बाज़ सा उड़ा चला जा रहा था। उन परछाइयों में

वह अपने विगत जीवन के सैकड़ों प्रतिबिम्ब एकसाथ देख रही थी। उफ, छोटे से क्षण में कितना फैला हुआ अतीत सिमट जाता है। रात अभी भी शेष थी।

जयन्त ढीठ हो चला। नींद के लिए भाभी चाहिए। आराम के लिए भाभी का सान्निध्य चाहिए, स्पर्श चाहिए। भाभी को भी जयन्त चाहिए, पर गोद में लेटकर सो जाने वाला नहीं, केशों के सुवास से तृप्त हो जाने वाला; केवल आंखों से ही उसे पीते रहने वाला नहीं।

एक दिन भाभी ने पूछा—जयन्त, मैं मर जाऊं तो!

भाभी मर सकती है, वह ऐसी कल्पना भी न कर सकता था। सुख का अन्त है, यह कोई सुखी सोचना नहीं चाहता। उसने कह दिया—मैं भी मर जाऊंगा भाभी।

भाभी को लगा कि जयन्त अभी मरने का अर्थ ही नहीं समझा। नहीं तो यों न कहता। उसने दूसरा प्रश्न किया—जयन्त, मैं कुरूप हो जाऊं तो! ये बाल झड़ जाएं, सफेद हो जाएं, त्वचा में झुर्रियां पड़ जाएं तो!

जयन्त घबड़ा उठा। सफेद बालों वाली बुढ़िया भाभी की गोद में सोने का सपना भी नहीं देख सकता था। उसकी आंखों में त्रास जम गया। बदन में कंप-कंपाहट सी हुई। जवाब कुछ न बन पड़ा। भाभी ने जान लिया कि जयन्त जीवन के यथार्थ से भागने वाला युवक है। भग्गू! यहां भी भग्गू!

भाभी ने तीसरा सवाल किया—जयन्त, जब तुम्हारी शादी हो जाएगी तो?

जयन्त उलझन में पड़ गया। भाभी कैसी संभावनाएं कल्पित कर रही है। भाभी ने स्वयं अपने प्रश्न का उत्तर दिया—तब वह तुम्हें मेरे पास आने न देगी। मेरे बालों को छूने न देगी। मेरी गोद में लेटने न देगी।

वह घबड़ा उठा। कह दिया—भाभी, मैं ब्याह ही न करूंगा।

जयन्त की यह घबड़ाहट सच्ची थी। भाभी को भी उसमें सच लगा। मन को अच्छा भी लगा। चाहा कि कह दे: तो मैं तुम्हें निहालकर दूंगी। तुम्हारे लिए नए

स्वर्ग की रचना कर दूंगी। तुम इन्द्र जैसे विलासों के स्वामी बनोगे।

पर कह न पाई। जयन्त उसे निरा बालक लग रहा था। उसमें पौरुष का उद्रेक न था। वह कैसे जयन्त को स्वयं को पीड़ित करने वाली शक्ति से भर सके।

दिन बीतते गए। वे कभी ताश खेलते, कभी चौपड़। कभी साथ-साथ सिनेमा भी देखते। चन्द्रकांत जयन्त के आने के बाद से अधिक निश्चिन्त था, अपने व्यवसाय में ध्यान लगाता; व्यवसाय में नए-नए लाभ होने पर रेवती पर नए-नए आभूषण चढ़ाता। वह रेवती को जो दे सकता था उसमें कभी कृपण न हुआ। पर उसके दान से रेवती संपूर्ण नारी कभी न बनी। वह दो पुरुषों के बीच में थी। एक बालक-युवा, दूसरा यौवनहीन युवा। यौवनहीन को वह यौवन न दे सकती थी, पर बालक युवा में 'पुरुष' को चैतन्य करने की लालसा से बराबर भरी रही। जयन्त के कुतूहल को अपने-आपमें बढ़ाते रहने के लिए उसने सहसा उससे कुछ-कुछ दूर रहना शुरू कर दिया और बीच में एक ऐसा आवरण डालती गई जो आवृत्त को देखने की इच्छा को प्रबलतर ही करता है। जब इस दिन जयन्त सदा की तरह आकर उसकी गोद में लुढ़क गया तो उसने आंखों के जादू को छोड़ते हुए कहा—जयन्त, अब तुममें जवानी जागने लगी है। अब मैं तुम्हें बच्चे की तरह थप-थपाकर न सुला सकूंगी।

जयन्त को अचरज हुआ। एक रात में वह इतना जवान कैसे हो गया। उसने गोद में सिर गड़ाते हुए कहा—नहीं भाभी!

—नहीं जयन्त। बोलो, तुम्हें मेरे पास इस दशा में तुम्हारे भैया देखें तो?

जयन्त अब भी नहीं समझ पाया।

भाभी ने कहा—नौकर-चाकर ही देखें तो?

जयन्त चुप ही रहा। भाभी ने भी विस्तार न किया। पर जयन्त के मन में वह विष का बीज बो चुकी थी। जयन्त जब-जब उस भाभी के बारे में सोचता, उस बीज को जैसे खाद मिलती। वह उस धरती सा तनाव महसूस करता जिसके गर्भ में छिपा बीज विस्तार की कामना से भर उठा हो!

एक बार भाभी ने ही उससे ब्लाउज के पीठ पीछे के बटन लगाने को कहा था। पर जयन्त उस परीक्षा में फेल होकर भाभी की नजरों में सफल हुआ था। जाने कितनी बार उसने भाभी की पीठ के उस तिल को देखने की कामना जगाई

थी, पर कामना पूरी न हुई। एक दिन वह भाभी के कमरे में ऐसे क्षण में जा पहुंचा जब वह उसी तरह के ब्लाउज़ को पहनने जा रही थी। बांहों में बांहें डाल चुकी थीं। बटन लगाने बाकी थे। भाभी ने दर्पण में पड़ी परछाई से उसे आते देख लिया था। वह कुछ न बोली। जयन्त बिल्कुल पास चला आया। भाभी अनजान बनी रही। जयन्त ने बटन बंद करने को हाथ बढ़ाया। अंगुली पीठ को छू गई। भाभी चीख सी उठी।—उफनते हुए वक्ष को हाथों से सम्हालती सी बोली—उफ़, तुमने तो मेरे प्राण ही ले लिए थे जयन्त। मैंने सोचा, जाने किसने छू दिया मुझे!

भाभी उस भीति में बड़ी मनोहर लगी। संवारा हुआ रूप जहां प्रभावशाली नहीं सिद्ध होता वहां कभी-कभी अस्तव्यस्त रूप हो जाता है। जयन्त ने भाभी के अनेक रूप देखे थे। पर तन-मन का ऐसा रूप नहीं देखा था। भाभी की घबराहट, आंखों की चपलता, शरीर की असंयतता उसे बड़ी मनोहर लगी। बोला—ब्लाउज़ के बटन लगा दूं।

—हाय, पगले हुए हो लाला। किसीने देख लिया तो? तुम जरा बाहर ठहरो, मैं कपड़े बदल लूं।—भाभी ने बड़े सहज ढंग से कह दिया।

जयन्त बाहर चला आया। पर भाभी की बात समझ में नहीं आई। आखिर यह पर्दा किसलिए, यह दूरी किसलिए? शायद भाभी नाराज़ है। थोड़ी देर बाद भाभी के आवाज देकर भीतर बुलाने पर उसने पूछा—भाभी, नाराज़ हो?

—क्यों?—भाभी उसका मनोगत भाव जानकर भी अनजान बनी रही।

जयन्त कैसे समझाए? फिर भी कहा—तुम मुझे अपनी गोद तक में नहीं सुलातीं।

भाभी ने कृत्रिम बड़प्पन से कहा—पगला! बच्चा ही बना रहेगा! इतनी भी बात नहीं समझता? अरे, मैं जवान हूं। और अब तो तू भी जवान हो चला है।

जयन्त ने अनुभव किया कि भाभी को देखते ही उसका रक्त कुछ तेज़ी से दौड़ने लगता है, नसें तनने लगती हैं, अजीब अनुभूति होती है।

क्या यही जवानी है? पर इसमें बुराई क्या? उसने कहा भी—पर इसमें बुराई क्या भाभी! सब बच्चे बड़े होते हैं, बड़े बूढ़े होते हैं।

भाभी हंसी। जैसे कांसी की थाली बज उठी हो। उस हंसी में झनझनाहट थी

जो जयन्त के स्नायुजाल तक में फैल गई। हंसी के डूबते ही भाभी बोली-और फिर मैं दूसरे की बीवी हूं। मुझपर उसीका एक अधिकार है। समाज, कानून और धर्म सभी ने मिलकर मुझे उसीको सौंप रखा है। मेरा बंटवारा नहीं हो सकता जयन्त!

बंटवारा! किस बात का बंटवारा? क्या भाभी का बंटवारा संभव है? वह क्या है जो मुझे नहीं बांटा जा सकता, जिसका अधिकारी मैं नहीं हो सकता?

उदास जयन्त लौट गया। भाभी ने रोका भी नहीं, मनाया भी नहीं। उसके पीठ फेरते ही आंखों की दमक दुगुनी हो गई, चेहरे की कांति बढ़ गई, होंठों का हास अर्थपूर्ण हो उठा। पर जयन्त जान ही न पाया।

और उसी रात को। काफी रात जा चुकी थी। पर जयन्त को नींद नहीं आ रही थी। भाभी उससे दूर जा रही थी। भाभी किसीकी ऐसी अधिकार-सीमा में थी जिसमें वह प्रवेश नहीं कर सकता था। वह बेहद बेचैन था: कंबल ओढ़ता तो गर्मी लगती, कंबल उतार देता तो ठंड लगती, उफ़ क्या करे? रोशनी सुहाती न थी, अंधियारा भाता न था। वह वहां से कहीं दूर भाग जाना चाहता; इतनी दूर कि भाभी की याद भी न पहुंचे। अस्पताल के जनरल वार्ड में पड़े रोगी सी उसकी हालत थी जो दूसरे रोगियों का साथ छोड़ वहां से भाग जाना चाहता हो।

दिमाग अलग भली-बुरी कल्पनाओं में परेशान था। सोचते-सोचते सिर फटने सा लगा। जयन्त का मन अब भी चाह रहा था कि भाभी आए और उसके दुखते हुए सिर पर हाथ रखकर उस दर्द को हर ले। भाभी''तभी किसी कोमल हाथ ने उसके माथे को सहलाया। कितना सुख! कल्पना भी इतनी सुखद! फिर उस हाथ की अंगुलियां उसके रूखे बालों को सुलझाने सी लगी। उसे लगा, कल्पना नहीं। चट से उसके दोनों हाथ उस हाथ की ओर बढ़े और उन्हें कसकर थामकर छाती पर खींच लाए। मुंह से निकला——भाभी!

भाभी थी। फुसफुसाहट के से स्वर में बोली——नींद नहीं आई जयन्त!

जयन्त चुप रहा।

फिर पूछा——सिर दुख रहा है जयन्त?

बोला——फटा सा जा रहा था भाभी!

भाभी ने कहा——मैं जानती थी। मैं तभी आई। लाओ सिर सहला दूं।

—अब ठीक हो गया भाभी।—जयन्त ने कहा।

—कैसे ?—भाभी ने पूछा।

—तुमने छू जो दिया—जयन्त ने भाभी के हाथ को उसी तरह छाती से भींचते हुए कहा।

—तो जाऊं—भाभी ने शरारत से भरकर पूछा।

—मैं मर जाऊंगा भाभी—जयन्त करवट लेकर भाभी की बांह से चिपट गया—मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता। भाभी। मुझे अपने से दूर न करो भाभी। मैं पागल हो जाऊंगा भाभी !

भाभी ने फिर शरारत के साथ कहा—तुम पूरी तरह जवान हो गए जयन्त। अब शादी कर लो, तब मन ठीक हो जाएगा।

—शादी करोगी भाभी मुझसे—जैसे कोई बच्चा पूछ रहा हो।

भाभी दूधिया हंसी हंस दी जिसके स्पर्श से रात का अंधेरा चमक उठा।—बावला है। अरे, मेरा तो ब्याह कभी का हो चुका।

जयन्त ने आतुरता से कहा—पर भाभी, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता। मुझसे दूर मत भागो भाभी।

भाभी ने दूसरे हाथ से उसका गाल थपथपाते हुए कहा—तो मुझे कहीं भगा ले चलो।

—चलो भाभी—जयन्त तैयार था।

—पर कहां ?—भाभी का प्रश्न अवरोध बन गया।

परेशान जयन्त ने कहा—मैं कुछ नहीं जानता भाभी। तुम मुझे अपने से दूर न करो। बोलो, कसम खाओ कि नहीं करोगी दूर।

भाभी ने स्वर को गंभीर करते हुए कहा—जयन्त, मन से तो तुम्हें कभी दूर नहीं कर पाऊंगी। पर तन…यह मेरा नहीं। यह मेरे स्वामी का है। मेरा इसपर इतना भी अधिकार नहीं कि किसीको इसे छूने तक की भी इजाज़त दूं। सारा समाज मेरे स्वामी के उस अधिकार की रक्षा करता है, उसके धन पर पहरा देता है। देखो, इसीसे, इस रात के अंधियारे में मैं तुम्हारे पास आई, सब अग-जग की आंखों से बचकर आई। दिन में मैं तुम्हारे प्रति कठोर हो चली थी। पर मजबूर थी। मैंने

तुम्हें पीड़ित किया, स्वयं पीड़ा भोगी। किसी तरह रात के अंधेरे का इंतज़ार किया। जैसे ही रात की ओट मिली, तुम्हारे पास भागी चली आई।

जयन्त ने कहा—पर भाभी, अभी तुम्हें यह क्या हो गया ! पहले तो···

—मैं नासमझी करती रही—भाभी ने कहा—तुम मुझे अच्छे लगते थे। तुम्हारा संग-साथ मुझे अच्छा लगता था। मन रस पाता था। उस रस में मैं भूल ही गई कि मैं पराधीन हूं; प्रतिबंधों से जकड़ी हूं। एक दिन मुझे लगा कि तुम्हारे भैया मेरे मन की कमज़ोरी को जान गए हैं। उन्होंने कहा कुछ नहीं। फिर भी मैं समझ गई। बस, तभी से मेरा मन चोर हो गया। देखो न जयन्त, तभी तुमसे दिन में भागती हूं और रात में स्वयं लिपटने चली आती हूं। जयन्त तुमने जाने कैसा जादू कर दिया। हाय, तुम यहां आए क्यों ? मैं अपने-आपमें बेहद प्रसन्न और सुखी थी। तुमने मेरे सोए हुए अभावों को क्यों जगाया ? जयन्त, तुम अपराधी हो, घोर अपराधी ! उल्टे मुझसे मान करते हो। हाय, दुष्ट ! अपने किए को तो तुमने कभी देखा ही नहीं। उस रात को मेरी गोद में सिर रखकर आप तो सो गए और मैं जागती रही। आह, तुमने यह तक नहीं सोचा कि मुझे भी नींद की ज़रूरत है। मेरी नींद को भी किसीकी गोद की ज़रूरत है।

भाभी कह रही थी और जयन्त नशे में डूबा सा उसकी पतली-पतली अंगुलियों को अपने सूखे होंठों पर फेर रहा था। भाभी का आखिरी वाक्य सुनते ही वह तड़-पन के साथ उठ बैठा। अपराधी स्वर में बोला—मुझे माफ करो, मुझे माफ करो। मैं केवल अपना ही मन देखता रहा।

भाभी ने आगे कहा—तुम शायद कभी-कभी ही जागे हो। पर मैं तो उस रात से बराबर जाग रही हूं। तुमने एक बार भी आकर जानना नहीं चाहा कि मैं जी रही हूं या मर रही हूं। तुम केवल मेरे जीवन का नाटक देखते रहे। जो मुझे समाज के भय से खेलना पड़ता ही है। तुमने मेरी असलियत को जाना ही नहीं।

जयन्त चारपाई से उठ बैठा। भाभी के भुजमूलों को पकड़कर उठाता हुआ बोला—उठो भाभी, तुम यहां लेटो। मेरी गोद में सिर रखकर लेटो। मैं तुम्हें सुलाऊंगा। मैं तुम्हारी आज तक की अधूरी नींद को पूरा करूंगा। उठो !

भाभी उठी। उठने में वक्ष जयन्त से छू गया। जयन्त पर और गहरा नशा छा

गया। वह खाट पर बैठते-बैठते एकदम खड़ी हो गई--नहीं जयन्त, अभी नहीं जयन्त। वे जाग गए तो ? मुझे जाने दो। मेरे भाग में सुख की नींद नहीं है। मुझे जागने दो। रात जागती ही है। मैं भी जाग लूंगी।

और भाभी जयन्त के उत्तर की प्रतीक्षा किए विना ही चली गई थी। रेवती को याद है, वह अपने कमरे में आकर फौरन सो गई थी। पर जयन्त नहीं सो पाया था। पर आज रेवती जाग रही है। जयन्त कहीं सो गया होगा। रेवती के पीड़ित मन ने पुकारा---जयन्त, क्या सो रहे हो ?

पर कौन जवाब देता। इस समय तो छिपकली भी सो गई थी।

आरम्भ में भाभी जल और हवा सी सुलभ थी। तब जयन्त वन के मृग सा था। जब आतप लगा, वह उस पेड़ की छांह में पहुंचकर हवा के आंचल से श्रम-सीकर मिटाने लगा। जब प्यास लगी तो उस वापी के तीरे पहुंचकर प्यास बुझा ली, अन्यथा केलि करता रहा, वन-वीथियों में दौड़ता रहा। उसे उस सुख से वंचित होने की आशंका ही नहीं थी। वह तो उसका अपना था। उसीके लिए सुरक्षित था पर अब······अब तो परिस्थिति ही बदल गई थी। वह हवा अब भी बहती है, पर उस कुंज की छाया में जब मन ने चाहा, नहीं पहुंचा जा सकता। वह निर्मल जल से भरी वापी भी नहीं बदली, पर उसकी ऊंची सीमाओं का हर समय उल्लंघन नहीं किया जा सकता। अब तो उसकी चाह किसी वर्जित प्रवेश में स्थापित हो चुकी थी। वह दुर्लभ हो उठी थी। उसकी चेतना सदा उसी तक पहुंचने के उपायों में व्यस्त रहती। भाभी कहीं आते-जाते अनायास मिल जाती तो सहमी सी बिना बात किए ही निकल जाती। जयन्त को बिजली का धक्का सा लगता। वह भाभी के पीछे-पीछे चलता तो वह आंख के इशारे से बरज देती। उस इशारे का आशय होता : अभी नहीं, यह समय ठीक नहीं, कोई देख लेगा।

कोई देख लेगा ! ···जयन्त इस भय को ठीक-ठीक कभी समझ ही नहीं पाया।

वह ऐसा क्या करता है जो कोई देख ले तो प्रलय हो जाएगी। वह पहले भी तो मिलता था; पहले भी तो भाभी के साथ हंसता-खेलता था। उसने कितनी बार उसके बालों को फूलों से सजाया है; कितनी बार भाभी का हाथ अपने हाथ में लेकर मीठी-मीठी बातें करता रहा है; कितनी बार उसकी गोद में अपनी सुध-बुध खोकर सो गया है। तो अभी क्या हो गया ? ऐसा क्या हो गया ?

इस बार भाभी से बात हुए तीन दिन हो गए थे। दूर से झलक भर मिली। पूरी तरह मुंह तक न देख पाया। एक बार वह छत पर अकेला घूम रहा था। भाभी गीले कपड़ों में वहां निकल आई, विद्यापति की सद्यःस्नाता सी। बालों से पानी चू रहा था। कुछ मनचली लटें माथे, गाल और कन्धे से चिपटी हुई थीं। गीले वस्त्र अंगों में समाए थे। जयन्त ने भाभी को देखा। भाभी उसे सदा असाधारण सुन्दरी लगती थी। वह अवाक् उस रूप को देखता रहा। भाभी ने कनखियों से उसे देखा। पर अभिनय किया न देखने का। हाथ में उसके चांदी की लुटिया थी। सूर्य भगवान् की ओर मुंह करके खड़ी हुई। नेत्र बन्द किए। होंठों से कुछ जाप सा किया और प्रणामपूर्वक सूर्य भगवान् को अर्घ्यदान कर दिया।

खुले नेत्रों का सौंदर्य तो जयन्त ने अनेक बार देखा था। पर बन्द नेत्र इतनी मदिरा से भरे होते हैं, यह उसे पहली बार ही पता लगा। जैसे नागमणि पर गुलाब की पंखुड़ी रखी हो और उस पंखुड़ी से केसर फूट रहा हो।

होंठ भी भाभी के उसने जाने कितनी बार ललच भरे जी से देखे थे। जब वह बोलती तो वह खुद उनके कम्पन को ही देखा करता। पर गीले होंठों की धीमी थिरकन उसे बारिश की बूंदों से लदी कोंपल सी लगी, जो हवा के हल्के झोंके से भयभीत मृगी की पलक सी कांप उठती हो। उफ, इस गीले सौंदर्य में कितनी तपिश है ! उरोज, शोले से उरोज। कितनी सुन्दर है वह। कपड़े उसके सौंदर्य को घटाते ही है, बढ़ाते नहीं। जब उन वस्त्रों का अस्तित्व न के बराबर है तब वह कितनी मनोहर लगती है ! क्या उसके और उस सौंदर्य के बीच से वे परिधान कभी हट सकेंगे !

अचानक उसे लगा कि भाभी ने भी उसे देख लिया। उसे लगा कि भाभी घबड़ा उठी। उनके नेत्रों की पुतलियां भय की अभिव्यक्ति में और भी काली पड़

गई। उनकी चपलता और भी बढ़ गई। भाभी का अंग-अंग कांप उठा, हाथ बेबस से हो गए, मुंह से हल्की सी चीख निकली। हाथ से चांदी की लुटिया छूटकर गिर पड़ी। क्षण भर वह स्तम्भित सी रही। फिर वह नीचे की ओर भागी। साथ ही कहती जा रही थी---मुझे नहीं मालूम था कि तुम यहीं हो। ओह, मैं तो अर्घ्य देने आई थी।

अर्घ्य का दान छत पर लुढ़का पड़ा था। अर्घ्य का आकाशवर्ती देवता अपने तेज से दीप्तिमान् हो रहा था। अर्घ्य की वासना से भरा धरती का जयन्त अपनी जलन से आप जल रहा था। वह कुछ भी तो नहीं समझ पा रहा था। आखिर यह सब क्या हो रहा है। भाभी, इतनी बदल क्यों गई हैं। मैं इतना अजनबी क्यों लगने लगा उन्हें। छाती में अजीब तूफान सा उठा। जयन्त ने दोनों हाथों की मुट्ठियां कसकर छाती पर दे मारीं। आघात से वह हिल उठा। पर मन का आघात उससे भी गहरा था। उस पीड़ा में अन्तर ही नहीं हुआ।

भोजन का वक्त हुआ। चन्द्रकान्त, रेवती और जयन्त साथ-साथ खाने बैठे। चन्द्रकान्त भोजन के समय प्रायः कुछ न कुछ बोलता है। पर पहल रेवती से होती है। आज रेवती चुप है। चन्द्रकान्त भी बोल नहीं पा रहा। जयन्त को कुछ अस्वाभाविक लग रहा है। चन्द्रकान्त के मन में क्या है ? वह इतना गम्भीर क्यों है, मेरी ओर आंख बचा-बचाकर ही देखता है। जरूर ही वह सब सच है जो भाभी कहती है। यह बड़ा क्रूर है; हृदय की कोमल भावनाओं तक को नहीं समझता; सौंदर्य और प्यार में केवल पाप देखता है।

भोजन समाप्त हो गया। बीच-बीच में मिसरानी ही मौन भंग करती---यह ले लो। वह ले लो। नमक कम तो नहीं, मिर्च ज्यादा तो नहीं। हां पानी। संगतू पानी ला। कुछ और खा लो। बहूजी, आप तो बस, फूल ही सूंघती हैं। बड़े भैया, आज तो लगता है, भूखे ही रह गए। छोटे भैया, तुम इस तरह खाना घटाते ही चलोगे तो बस सींकिया पहलवान बने बिना न रहोगे---पर मिसरानी की इन टिप्पणियों से कोई फर्क नहीं आया।

सब भोजन करके उठे। नौकर ने हाथ धुलाए। बाहर एक छोकरा चांदी की तश्तरी में पान लिए खड़ा था। भाभी ने उससे तश्तरी ले ली, चन्द्रकांत को

ओर बढ़ाई। वह कृतज्ञतापूर्वक पान लेकर अपने कमरे की तरफ बढ़ चला। जयन्त ने उसकी ओर देखा तक नहीं। अन्यथा उसकी आंखों की कृतज्ञता देखकर उसे अपना मत बदलना पड़ जाता। भाभी ने फुर्ती से ब्लाउज़ से चिट्ठी निकाली और चौकन्नी आंखों से चारों ओर देखते हुए पान के बजाए वही जयन्त के हाथ में दे दी। जयन्त ने घबड़ाहट के साथ उसे थामकर झट से कुर्ते की जेब में रख लिया और बिना पान लिए तेज़ी से अपने कमरे में चला आया।

यह सब कुछ ऐसे ढंग से हुआ जैसे घर मे परस्पर बड़ा तनाव हो और जयन्त और भाभी घर भर की आंखों मे बचाकर किसी अवैध षड्यंत्र को पूरा करने में लगे हों।

जयन्त ने कमरे में पहुंचते ही दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया। फिर कुर्सी के बजाय पलंग की बांही पर बैठकर जेब से मुसी हुई चिट्ठी निकाली। अचानक उसका ध्यान कमरे की खुली हुई खिड़कियों पर गया। शायद कोई उससे उसकी गतिविधि का निरीक्षण कर रहा हो। उसने चिट्ठी फिर जेब में रख ली और खिड़कियां बन्द करने को बढ़ा। दोनों खिड़कियां बन्द करके वह वहीं दीवाल के सहारे खड़ा हो गया। चिट्ठी निकाली। खोली! पढ़ना चाहा। पर सहम गया। जाने क्या हो चिट्ठी में। एक छत के नीचे रहते चिट्ठी लिखने की नौबत क्यों आई? ज़रूर ही कोई संगीन बात है। भाभी किसी मुसीबत में है। भैया कोई अत्याचार कर रहे हैं। मैं····मैं देखूंगा उन्हें। मैं रक्षा करूंगा भाभी की। जयन्त अपने भीतर पुरुष की दृढ़ता अनुभव करने लगा। उसने चिट्ठी पढ़ी। लिखा था—

"जयन्त, गज़ब हो गया! तुम्हारे भैया के क्रोध का ठिकाना नहीं। और तुम जानते हो कि जब गुस्से से पागल होते हैं तो एकदम पत्थर की तरह चुप हो जाते हैं। पता क्या हो गया? उन्होंने हम दोनों को छत पर साथ-साथ देख लिया। उनका विश्वास है कि यह हमारे मिलने की पूर्वयोजना थी। मैंने बताया, विश्वास दिलाया कि मुझे नहीं मालूम था कि जयन्त छत पर है। नहीं तो गीले कपड़ों में कभी ऊपर नहीं जाती। पर वे मानें तब न! हाय, जयन्त, उन्होंने मुझसे क्या-क्या कहा, मैं नहीं दोहरा सकती। वे हम दोनों पर शक करते हैं, हम दोनों में अनुचित संबंध मानते हैं। हमारे प्यार को पाप समझते हैं। कहा: वह कालेज का छोकरा, जानता हूं

कितना पाजी है। ऊपर से सीधा-सादा पर बेहद बना हुआ। जयन्त, वे तुमसे कुछ नहीं कहेंगे। तुम भी उनसे कुछ न कहना। सफाई देने न पहुंच जाना। मुझसे जो बनेगा करूंगी। और हां, मुझसे मिलने या बात करने की कोशिश भी मत करना। घर के सभी नौकर उनकी तरफ से जासूसी कर रहे हैं। इस समय सारी दुनिया हमारे खिलाफ है। पर मैं डरती नहीं। जयन्त, तुम मेरे साथ हो तो मुझे डर किस बात का। मैं तुम्हारे प्यार के सहारे भगवान् से भी लड़ लूंगी। घबराना नहीं। कहीं अकेले भाग जाने की भी न सोचना। हां, मुझसे कुछ कहना हो तो चिट्ठी लिखना। तुम्हारी खिड़की का जो फूलदान है न, उसीमें चिट्ठी छिपाकर रख देना। मैं मौका पाकर वहां से उठा लूंगी। पर सावधानी बरतना। और हां! तुम्हारे भैया को इस बात की हवा भी न लगे कि मैंने तुम्हें सब कुछ बता दिया है। बस करूं, प्यारे जयन्त। आह, तुम मेरे लिए कितना बड़ा सुख बनकर आए थे! अच्छा बस··· कहींकिसी जासूस की आंखें मेरा पीछा न कर रही हों।—तुम्हारी ही···"

आगे कुछ न था। सिरनामे में भी कुछ न था। जयन्त उस पत्र को पढ़ते-पढ़ते आपे से बाहर हो गया। 'राक्षस!' उसके मुंह से निकला। 'स्त्रीभक्षी!' उसने होंठों ही होंठों में कहा। फिर जैसे आकाश में किसीको सुनाकर बोला—घबराओ मत। भाभी! घबराओ मत। मैं इस पशु पुरुष से तुम्हारी रक्षा करूंगा। मैं देखूंगा कि···

अचानक उसकी निगाह कागज के दूसरी तरफ पड़ी। उसपर भी हड़बड़ी में लिखे से अक्षरों में कुछ था। पढ़ा—

"हां, इस पत्र को पढ़ते ही फाड़ देना। नहीं, फाड़ना काफी न होगा। जासूस इसकी चिप्पियां जोड़-जोड़कर पूरा खत बना लेंगे। तो जला देना। ज़रूर जला देना। भूल न करना।"

आखिरी तीनों वाक्यों के नीचे गहरी लकीर खिंची थी जो इस निर्देश के महत्त्व को बढ़ा रही थी। जयन्त उस पत्र को कैसे जलाए। कहां जलाए।···पर जलाना भी तो ठीक नहीं। प्रिया का प्रथम पत्र। और वही अग्नि को समर्पित कर दूं। पर इसे रखना भी ठीक नहीं। उसने मना किया है। कभी यह चन्द्रकांत के हाथ में पड़ गया तो। अब उसे चन्द्रकांत के लिए 'भैया' शब्द का प्रयोग भी अच्छा नहीं लग रहा था। वह चिंता में पड़ गया। अचानक उसे याद आया। सन् बयालीस में

क्रांतिकारी छात्रों ने गुप्त दस्तावेजों को पुलिस से बचाने के लिए खा डाला था। हां, यह ठीक। मैं भी इस पत्र को निगल ही जाऊं।

बस वह उसके टुकड़े-टुकड़े करके खाने लगा। भरे पेट पर यह आहार, बड़ी कठिन बात थी। पर सामने खड़ी हुई भाभी की त्रस्त मूर्ति उसे उस पत्र को निगल लेने की शक्ति दे रही थी। उसने समूचा पत्र निगल ही लिया। जी मिचलाता रहा। पर वह किसी तरह उबकाई को बचाता रहा। एक गिलास पानी पिया और थोड़ी देर में ठीक सा हो गया। ठीक होते ही वह भाभी को पत्र लिखने की अकुलाहट से भर उठा। कापी से कागज़ फाड़े। फाउन्टेन पेन उठाया। पर क्या लिखे ? कैसे शुरू करे ? वह सोच-सोचकर भी कुछ सोच न पाया। कोई उपयुक्त संबोधन सूझ ही नहीं रहा था। आखिर भाभी की तरह ही बिना सिरनामे के लिखा--

"और यह तुमने क्या खबर दी ! मेरे लिए तुम यह कैसा संताप भोग रही हो ! पर मैं तुमसे बिना मिले, बिना बोले कैसे जी पाऊंगा ! आह, बताओ। बताओ, कहीं यह पत्रों का माध्यम भी हाथ से जाता रहा तो मैं मर जाऊंगा। मुझे इस समय आत्महत्या के सिवा कुछ भी तो नहीं सूझ रहा। पर मरने से पहले उस राक्षस से तुम्हारा बदला लूंगा, जरूर लूंगा।"

जब जयन्त यह पत्र लिख रहा था तो चन्द्रकांत रेवती से कह रहा था--मुझे जयन्त बड़ा प्यारा लगता है। तुम्हें भी वह अच्छा लगता है। इससे मैं बेहद खुश हूं। हालांकि रिश्ता करीबी नहीं, पर उसे देख-देखकर मैं यही सोचा करता हूं कि वही मेरा उत्तराधिकारी होगा। मुझे वह बेहद प्यारा लगता है। कारण पूछोगी तो न बता पाऊंगा। तुम उसका सदा इसी तरह ध्यान रखना।

खोली में करवटें लेती हुई रेवती की आंखों में जयन्त का पत्र था और कानों में चन्द्रकांत के शब्द। पर जयन्त ने जो कुछ लिखा था वह सब जैसे उसीके कहने पर ही तो लिखा था। वह यह क्या करने जा रही थी। वह तभी क्यों नहीं रुक गई। उसके मन में हलका सा पछतावा उठा, पर तुरंत मिट गया। वह उस पुरुष को कभी क्षमा नहीं कर सकती थी जिसने उसकी ऐसी होली जलाई है जो कभी न तुझे, कभी न बुझे।

उसने जयन्त को उस पत्र के जवाब में लिखा था--

"अपनी जान को मेरी जान समझकर हिफाजत से रखना। प्यारे, मुझे मंझधार में न छोड़ देना। एक तेरे ही सहारे तो जी रही हूं। इस सब कुछ को सह रही हूं। एक तू ही नहीं रहा तो? आह, तेरे सहारे मैं रेगिस्तान में भी हरी हो लूंगी, जंगलों में भी मंगल बना लूंगी। पर मुझे यों न छोड़ना। लो खाओ कसम। मेरी इन लटों को, जिन्हें तुमने जाने कब से सूंघा तक नहीं, छूकर कसम खाओ कि आत्महत्या का विचार सपने में भी मन में न लाओगे।"

जयन्त पर उसके प्रयोगों का कैसा प्रभाव पड़ रहा है, यह रेवती पूरी तरह कभी जान ही नहीं पाई। उसके एकान्त की तड़पन को देखने का कोई उपाय ही नहीं था। फिर भी वह कल्पना करती। पर जयन्त की पीड़ा उसकी कल्पना से अधिक ही रहती। पत्रों में वह कुछ बावला सा रहता। दुखी भी, सुखी भी। अब रेवती के पत्र ही उसे असीम सुख देने लगे थे। वह रेवती के बजाय अब उन्हींकी प्रतीक्षा करता। प्रत्याशित समय से यदि पत्र न मिलता तो उसे जीवन बोझ लगता। जब-जब वह रेवती को एकांत में पाकर कुछ बात करने की कोशिश करता, रेवती टाल जाती। वह उससे उसकी इच्छा के अनुसार कभी नहीं मिलती। जब वह उसे लिखता: तब मिलो न? तब उत्तर आता: काश, मैं तुम्हारी और अपनी इच्छा के अनुसार कभी भी मिल सकती। मैं तो यहां कैदी की तरह हूं। मेरे जिस्म पर ही नहीं, इच्छाओं पर भी हज़ार प्रतिबंध लगे हैं। तुम क्या जानो कि मैं ये पत्र तक लिखने का समय कैसे निकाल पाती हूं। फिर तुम तक पहुंचाना? उफ, यह एक मुसीबत ही है? उस दिन उस गुलदस्ते में चिट्ठी रखते मिसरानी ने देख लिया। तो मुझे रुपयों से उसका मुंह बंद करना पड़ा। पर वह ऐसा मुंह है कि कभी भी खुल सकता है। अत: मेरे रुपए बराबर उसके लिए हाजिर रहते हैं। वह मेरी नौकरानी है। हज़ार बार घी चुराते मैंने उसे पकड़ा है। पर एक बार उसने मुझे ऐसे क्षण में पकड़ लिया कि मैं उसकी बांदी हो गई। उफ, इस घर का हर आदमी जेल-

दरोगा है। हर ईंट के आंख और कान दोनों हैं। जयन्त ! तुम पुरुष हो। तुम इस परवशता की पीड़ा को क्या जानो। तुम स्वेच्छा से यहां रुके हो। जब चाहो, जहां चाहो, बंधन तोड़कर जा सकते हो। पर मैं···मैं तो देहरी भी नहीं लांघ सकती। मेरा मन करता है कि भाग जाऊं। कहीं दूर भाग जाऊं। पर कैसे ? अकेली कहां ? आह, काश मैं यहां से किसी भी तरह भाग सकती !

जयन्त ने उस खत के उस हिस्से को बार-बार पढ़ा और हर बार मन में आया कि 'भाभी' को लेकर भाग जाए। पर दूसरे ही क्षण उसे तरह-तरह के भय जकड़ लेते। वह चाहकर भी अपने जवाब में नहीं लिख पाया कि तो चलो। हम दोनों भाग चलें। चिंता किस बात की ! मैं जो हूं। मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। मैं तुम्हारा साधन बनूंगा। उल्टे उसने बड़ा पोच सा उत्तर लिखा—पर भागकर जा भी कहां सकते हैं। पुलिस, समाज सब हमारा पीछा करेंगे। हमें चोरों की जिन्दगी बितानी होगी। काश, मैं तुम्हारे लिए एक नई दुनिया बसा सकता ! तुम इसकी सम्राज्ञी होतीं और मैं तुम्हारा क्रीत दास !

ऐसा ही बहुत कुछ उसने लिखा। रेवती ने पढ़ा। आज भी रेवती को स्मरण है उसके होंठों पर व्यंग्य खेल गया था। इस समय भी व्यंग्य क्रूर हो उठा था। 'कायर' एक स्त्री को भगा तक नहीं सकता। जिस स्त्री पर जान देने को बैठा है उसे तक भगा नहीं सकता। 'वाक्-शूर' नई दुनिया बसा सकता है। पर पुरानी दुनिया में नया घर नहीं बना सकता। उफ़, वह क्या भगाएगा। आज तो वह खुद ही भागा फिर रहा है। अपने लिए नई दुनिया खोज रहा है। रेवती राख में दबे अंगारे सी सुलगती रही।

एक सुबह जब जयन्त ने नहानघर में घुसकर सहज भाव से किवाड़ बंद करके सिटकनी भी लगा ली तो रेवती को वहां मजूद देखकर अचरज में पड़ गया। उसके मुंह से हठात् निकला—तुम !

—हां—रेवती ने नयनों को विषैला करके कहा—तुमसे मिलने, तुम्हें देखने। तुमसे दो बोल बोलने के लिए। तुम क्या जानो कि मुझे कितने खतरे उठाने पड़ते हैं। मैं जानती थी कि तुम नहाने आओगे। बस, सब की आंख बचाकर कभी की आकर छिप गई। पर तुम···तुमने आने में ही युग लगा दिए।

जयन्त ने सफाई दी—में तो आज और दिनों से जल्दी ही आया हूं नहाने। फिर मुझे पता भी कहां था।

रेवती ने जयन्त का हाथ अपने हाथ मे ले लिया। उसकी अंगुलियों के पोखों पर अपनी अंगुलियां नचाती हुई बोली—बड़े निठुर हो। कैसे जवाब देते हो। उफ, तुमने कभी किसीकी प्रतीक्षा में घड़ियां युग सी जो बिताई ही नहीं। मैंने यहां प्रतीक्षा में अपनी एक-एक सांस गिनी है। बाहर की हर आहट गिनी है। खैर, छोड़ो इस बात को। वह मेरी पीड़ा है। तुम तक क्यों पहुंचाऊं। पर एक बात पूछूं। वही पूछने यहां आई भी हूं। सच-सच बताना। तुम मुझे प्यार करते हो?

इतना कहकर उसने अपनी आंखें उसकी आंखों की राह उसके हृदय में उतार दी थीं। क्या हो गया था तब जयन्त को। खोली में पड़ी रेवती आज भी देख रही है: उसका अंग-अंग कांपने लगा था। रेवती की आंखों के आमंत्रण पर वह अपने बस में न रहा था। उसने रेवती को दोनों बांहों पर कसकर पकड़ लिया था। फिर उसने अपने प्यार के प्रमाण में कुछ ऐसा साहस करना चाहा जो अभूतपूर्व था, पर जिसके लिए वह जाने कब से आकुल था। रेवती ने अपने होंठों पर तर्जनी रखकर उसके होंठों की वर्जना कर दी थी। जयन्त झटके के साथ रुक गया। उसके हाथों की पकड़ ढीली पड़ गई। रेवती ने रूप-मोहिनी का विस्तार करते हुए पूछा——मैं पूछ रही थी, मुझे प्यार करते हो?

जयन्त ने कुछ रुककर, कुछ झिझककर नीची आंखों से जवाब दिया——सबूत चाहती हो?

——नहीं—रेवती ने कहा था——नहीं। कहते हो तो विश्वास है और विश्वास है कि तुम मेरे लिए खून भी कर सकते हो।

'खून!'——जयन्त की आंखें हठात् ऊपर उठ गई थीं। उनमें भय था। स्वर में भय था। रेवती से वह छिपा न रहा। फिर भी उसने कहा——तुम मेरा कितना बड़ा भरोसा हो। तुम मेरे लिए तलवार बनकर लड़ सकते हो। जयन्त! मैं ऐसे पुरुष को प्यार नहीं कर सकती जो मेरे दिल के घावों का मरहम न बन सके, जो केवल मेरे होंठों का प्रशंसक हो, जो कायर हो। मुझे कायर से नफरत है! कायर मुझे छू भी लेगा तो मैं, मेरा गर्व सभी कुछ मिट जाएगा। जयन्त, तुम वीर हो,

पुरुष हो। मैं तुम्हें सचमुच ही प्यार करती हूं। तुमसे मुझे मौत भी अलग न कर सकेगी।

रेवती में सिंहनी सा दर्प भर आया था। जयन्त ने देखा। वह उस दर्प से डर गया। उसे उसका रूप सांप की मणि सा लगा। जिसकी ओर हाथ बढाया नहीं जा सकता। यौवन-उद्वेलित सागर सा लगा जिसके पानी से प्यास तक बुझाई नहीं जा सकती! वह सहमा सा खड़ा रहा।

रेवती मन ही मन अपमानित हुई। उसने सोचा––क्या मेरे जीवन में कभी कोई पुरुष आएगा ही नहीं। एक बार मन में आया कि वह उसके मुह पर थूक दे और हंसकर कहे कि गीदड़ का कलेजा पाया था तो सिंहनी से प्यार क्यों करने चले थे पर वह ऐसा कुछ भी नहीं कर सकी। वह जयन्त से हाथ धोना नहीं चाहती थी। वही एक व्यक्ति था जिस तक उसकी बांहें आसानी से पहुंच सकती थीं। उसीको उसे पुरुष बनाना था। उसीमें अपने स्वप्न को मूर्त करना था। उसने अपमानित मन पर मुस्कान का मुलम्मा चढाकर कहा––मैं बड़ी भाग वाली हूं जयन्त। इन पीड़ाओं में भी भाग वाली हूं। मेरा भाग तुम हो। तुम्हारे सहारे मैं अवश्य ही वह सब कुछ पाऊंगी जो मेरी कामना का विषय बनेगा।

इतना कहकर उसने उसकी बाईं बांह को अपनी दाहिनी बांह से लपेटकर उसके कंधे पर अपना सिर रखकर निवृत्ति की सी सांस ली और उसी तरह उसके कंधे पर गाल टेके-टेके बोली––जयन्त! तुम मेरे हो! सर्वथा मेरे हो। देखो, जो प्यार मुझे दिया है, उसपर किसी दूसरी की कुदृष्टि पड़ने भी न देना। अन्यथा···

उसका स्वर भीग सा उठा था। वह कहती गई––अन्यथा मैं मर जाऊंगी। मैं एक क्षण भी जीवित न रह पाऊंगी। जयन्त!····

जयन्त को लगा कि वह रो पड़ेगी। रेवती जैसे स्वयं को संभाल न पा रही थी। हिचकी से उसकी सांस टूक-टूक हो जाती। अचानक वह उससे अलग हुई और नहानघर का दरवाजा खोलकर भाग गई। जयन्त उस ठूंठ सा खड़ा रहा जिसे उखाड़े बिना ही आंधी हवा हो गई थी!

जयन्त सुन्न सा खड़ा रह गया। रेवती उसकी आंखों में सोने की तलवार सी झूल रही थी, मोह और भय साथ-साथ। कैसे भाग जाए। कैसे अंगीकृत कर ले।

वह रेवती से दूर रह सकेगा, यह कल्पना भी उसके लिए दुर्गम थी। तरल सोने की नदी बही जा रही है पर उसके प्रवाह में सोने के साथ-साथ आग भी है। उस नदी में अवगाहन की लालसा से भरा यात्री कैसे अपनी चिरपोषित कामना को पूरा करे। उस कामना की पूर्ति में जैसे मृत्यु ही है। अपूर्ति भी कम दारुण नहीं। कैसे थके निराश पांव ले लौट पाएगा। फिर पीछे आशा भी ऐसी कौन सी छोड़ आया है जो संबल बन सके प्रत्यावर्तन का !

उसी दिन जयन्त को रेवती का एक पत्र भी मिला। लिखा था—आज मिलोगे न ! रात को मिलोगे न। मैं छत पर आऊंगी। मेरी प्रतीक्षा करना। मैं आऊंगी, ज़रूर आऊंगी। सब के सो जाने पर आऊंगी। तुम मेरे लिए रुके रहना। मौका पाते ही मैं आकर तुम्हारी बांहों मे भर जाऊंगी। पर देखो, तुम सावधान रहना। तुम्हें कोई देख न ले। पर ऐसा न हो कि मैं भी न देख पाऊं। मैं ज़रूर आऊंगी।

पत्र पढ़ते ही जयन्त नहानघर की रेवती को भूल गया था। अब तो जो रेवती उन अक्षरों में बोल रही थी उसमें नारदी वीणा के मोहक स्वर, वसन्त की सारी सुषमा, उषा की समस्त लुनाई, चांदनी की माधुरी और अमृत की तृप्ति थी। अभी दोपहर ही थी। वह रात की उतावली से प्रतीक्षा करने लगा। रेवती तो शतरंज के बोर्ड पर एक और चाल चलकर अलग हो गई। उसकी हर चाल सीधे बादशाह पर शह पड़ती थी। वह चाल के बाद भूल भी जाती। बेचारे बादशाह को जान के लाले पड़े रहते।

मनोहर कल्पनाओं में जयन्त ने किसी तरह उस दिन को काट ही लिया जो लंगड़े रोगी की तरह धीरे-धीरे, सुस्ता-सुस्ताकर किसी तरह ही अपनी छोटी सी यात्रा को दीर्घ श्रम के साथ पूरी करता सा लग रहा था। रात आई। काजर की वर्षा करती आई। चांद न था। अतः तारों की खूब बन आई थी। झुंड के झुंड यहां, वहां सभी जगह विचर रहे थे। जयन्त को वह अंधेरा सगे भाई सा लगा। यद्यपि कोई उसे नहीं देख रहा था फिर भी उसने आड़ से बढ़-बढ़कर छत की सीढ़ी तक रसाई की और फिर बिल्ली के कदमों से धीमे-धीमे एक-एक सीढ़ी चढ़ छत पर आ पहुंचा, सूनी छत, अंधियारे से ढकी छत। बड़ी प्यारी लगी। उसके मन में तो शून्यता न थी। छत सूनी थी तो क्या ? उसने बड़े प्यार से भरकर उस सूनी

छत को देखा। उधर, हां उधर। बालकनी से ऊपर आने वाली घुमावदार सीढ़ियां हैं। वह उसी सीढ़ी से आएगी। जब अपनी मदमस्त चाल से बढ़ती हुई छत के बीचोंबीच आकर खड़ी होगी तो कितनी प्यारी लगेगी! मैं तब भी जीने में ही छिपा रहूंगा; बस एक क्षण ही। वह विकल हो उठेगी, घबराई सी इधर-उधर देखेगी। मैं तब प्रकट हो जाऊंगा। वह मान करेगी। कहेगी : कितने बुरे हो। उफ़, कितने बुरे हो। मैं तो मर ही गई होती, अगर दो घड़ी और न आए होते। तब मैं कहूंगा : मेरे अमृत, तुम कैसे मर सकते हो। मेरी—संजीवनी, तुम्हीं तो मेरा जीवन हो। आह, इतनी बुरी बात मुंह से न निकालो। तुम क्या जानो मैं कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं। आज का दिन मैंने किस विकलता से काटा। हाय, काश, काल के रथ को मैं मनमाने ढंग से हांक सकता! तब मैं प्रतीक्षा की लंबी अवधि को भी इतनी छोटी बना देता कि पलक झपकते ही पूरी हो जाती। किसी को विरह न भोगने देता। संयोग की बेला में उसकी गति इतनी मंद कर देता कि किसीको प्रिय से बिछुड़ने की आशंका ही नहीं रहती। मैं प्रकृति का स्वामी बन जाता। जब चाहता रात होती, दिन होता; सूरज उगता, चांद छिपता; चांद उगता, सूरज छिपता। ऋतुओं का मैं नियामक होता। ग्रीष्म कभी न आती, वसंत कभी न जाता, फूल कभी न मुरझाते, सौरभ कभी न थकता। मैं तारों की फुलझड़ियां दिन के हाथों में दे देता। उषा का सुहाग-सिंदूर अमावस की रात के माथे पर मल देता। पूनो सदा हंसती ही रहती। तुम मेरी आंखों से ओझल न होतीं।

तभी लगा जैसे बालकनी की सीढ़ियों पर कोई दबे पांव चढ़ा। धीरे-धीरे छत पर आया। अब उसकी तरफ बढ़ा। आंखें फाड़कर देखा, कोई नहीं। पर पांव में कुछ लगा। कौन? बिल्ली? हंसी आ गई जयन्त को। बिल्ली! वह भी आएगी। जरूर आएगी। भैया···ऊंह, चन्द्रकांत जाग रहा होगा। न खुद सो रहा होगा न उसे···नहीं, वह नहीं सोएगी। हरगिज़ नहीं सोएगी। आह, मेरे लिए कितनी मुसीबतें उठाती है। मेरे लिए सभी कुछ तो करती है। सभी कुछ तो कर सकती है। आह, रेवती···

पहली बार यह नाम उसके होंठों पर आया। पर होंठों पर से ही लौटा ले गया, किंतु नाम की मिठास होंठों को लग जो चुकी थी; नहीं माने। बस मचल उठे।

हिले। संगीत सा गूंजा—'रेवा'। हां, रेवा ही। कितना प्यारा नाम है ? रेवती नहीं रेवा। वह रेवा ही कहेगा। भाभी नहीं, रेवती नहीं, रेवा। या केवल रे ! पत्र में सिर्फ रे। और कभी-कभी री ! री···हाय री, उफ री, अरी, गजब री !

जयन्त रेवती की प्रतीक्षा ही भूल गया। वह आएगी। रात उसकी है, अवश्य आएगी। इस विश्वास ने उसे प्रतीक्षा की कटुता भुला दी। उल्टे उन मनोरम कल्पनाओं में, अनुपभुक्त सुख की कल्पनाओं में वह प्रतीक्षा और भी मीठी हो चली। उसके मन-मस्तिष्क पर वे मनोरम कल्पनाएं नशा बनकर छा रही थीं। वह सब कुछ भूल बीच छत पर चला आया। हां, उस रात को, पहली रात को, यहीं, ठीक यहीं वे दोनों बैठे थे। नहीं, वह बैठी थी। मैं तो उसकी गोद में सिर रखकर नींद की कोहबर में चला गया था। फिर कुछ याद ही नहीं रहा। सुख वही है, वही है। स्वर्ग कुछ नहीं, कहीं नहीं। बस फिर याद भी कैसे कुछ रहता। पर आज···आज की रात मैं नींद को छल करने ही न दूंगा। मैं उसके हाथ को अपने हाथों में लेकर बैठूंगा। उसकी प्यारी लटों को अपने गले में लपेटकर उससे बंध जाऊंगा। वह हंसेगी तो उसके दांतों की चमक देखूंगा। वह बोलेगी तो गूंगा बनकर इन बोलों का रस लूंगा। पर पलकें न झपकाऊंगा। उसे नींद आएगी तो मैं उसका पहरा दूंगा पर मैं भूलकर भी न सोऊंगा। आज तब से उसे आंख भरकर देखा तक नहीं। आज की रात सपनों की नहीं, अरमानों के जागरण की होगी। वे धूम मचाएंगे ऐसी कि तारे भी जल मरें।

जयन्त मनोमय हो उठा था। कब घड़ियाल ने बारह बजाए, कब दो, कब तीन, कब चार। उसे पता ही नहीं चला। उसकी 'रेवा', 'रे', 'री' सब कुछ आराम से सो रही है, उसे ध्यान भी नहीं आया। तभी अंधेरा फट सा चला। तारे लुकने लगे। प्राची की मांग में लाल किरण खिल उठी। कोई पक्षी तीर सा उसके सिर पर से उड़ता चला गया। कोठी के बाग के पेड़ मुखरित हो उठे। पक्षी बसेरा तजने के फिराक में थे। निष्क्रियता मिटने लगी थी। कर्म उगने लगा था। जयन्त भी मनोमय न रह सका। कानों में उसके 'रेवा' नहीं विहगों की प्रभाती गूंज रही थी। आंखों में उसकी 'रे' नहीं दिन की ज्योति थी। पर उसे लगा जैसे वह लुट गया, सब कुछ से वंचित हो गया। पर यह सब कैसे हो गया। कहां रह गई मेरी 'री'।

ओ री, बोल री, कहां रह गई री !— पर कौन बताता। री सो रही थी। पर वह कैसे जानता।

री, री, ओ री, नहीं आने दिया न तुझे चन्द्रकांत ने। उस चन्दर ने। हाय री, तू उसके सिरहाने बैठकर जागती ही रही। उफ री, तेरे प्राण कैसे छटपटाए होंगे।

जयन्त की पीड़ा का वार-पार न था। अपनी 'रे' से वंचित रहने की पीड़ा। अपनी 'री' को जकड़ने वाले बंधनों की पीड़ा। कोई और होता तो शिकायत करता, शिकवे करता; गली-कूचों में उसे संगदिल कहता फिरता; बेमुरौव्वत और बेवफा की उपाधियां देता; उसके जुल्फ के खिलाफ जिहाद करता। पर जयन्त, गिला कर ही न सका। शिकवे लबों पर आए ही नहीं। वह नानी की कहानियों जैसी उस सुकुमारी राजकुमारी की यातना पर तड़प-तड़प उठता।

जब सूरज ने आगे बढ़कर उसे भरोसा दिला दिया कि रात गई, दिन आ गया तो वह छत से उतरकर नीचे आया।

पर रेवती तब भी सो रही थी। इस विश्वास के साथ सो रही थी कि वह ज़रूर जागेगा। रात भर उसीकी याद के सहारे जागेगा।···पर आज तो रेवती जाग रही है; बिना सहारे जाग रही है। नहीं, याद तो है, पर कितनी कटु। उफ, वह सब क्यों याद आ रहा है उसे। वह क्यों नहीं भूल जाती उस जयन्त को। कायर को। भग्गू को।

परेशान रेवती तड़पकर उठ बैठी। पर बैठकर भी क्या करे। लालटेन बुझाए, या छिपकली को ढूंढ़ने लगे, खटमलों का संहार करे या···या क्या। उसके पास करने को कुछ भी तो नहीं; कुछ भी तो नहीं; नींद तक नहीं !

रेवती सोचती रही उस रात की बात जब उसने जयन्त को प्रतीक्षा और उसकी निराशा का सुख भोगने छत पर आमंत्रित किया था और स्वयं जानकर नीचे ही रह गई थी। किसीने चकोर को बहका दिया कि अमावस नहीं पूनो है। फूले हुए

कदंब सा चांद उगेगा। पर चांद न उगा। चकोर भी आशा न छोड़ पाया। रेवती सोने की तैयारी में लगी भारी आभूषण उतारती जा रही थी और सोचती जा रही थी कि कल सुबह उसे किस आशय का पत्र लिखेगी। उसे याद आया, तभी चन्द्रकांत ने खाट पर लेटे-लेटे उसका नाम लेकर कहा—रेवती, आजकल जयन्त नहीं दीखता। ठीक तो है ?

कंठहार उतारने के प्रयत्न में कुछ बाल उसमें फंस गए थे। उसने उन्हें सुलझाते हुए कहा—ठीक ही होगा। इधर तो मुझसे भी कम ही मिलजुल पाता है। शायद पढ़ाई पर ज़ोर दे रहा है।

चन्द्रकांत ने बात जारी रखी—बड़ा भला लड़का है, सीधा भी। तुम उसका ख्याल रखा करो।

रेवती के बदन में एक गुस्से की लहर सी दौड़ी। कहना चाहा : मैं ही सब का ख्याल रखूं कि कोई मेरा भी रखे। पर संभाल ले गई। बालों से हार मुक्त हो चुका था। बोली—जवान लड़का है। खूबसूरत भाभी ने मोह लिया तो।

इतना कहकर उसने गूढ़ दृष्टि से चन्द्रकांत को देखा। वह चादर के किसी छोटे से छेद में अंगुली डालकर उसे बड़ा करने के प्रयत्न में था। रेवती देख ही नहीं पाई कि उसकी आँखें क्या कह रही हैं। उसने कुछ तिक्त स्वर में कहा—क्यों, कुछ अच्छा नहीं लगा ?

चन्द्रकांत ने आंखें उठाईं : उनमें केवल दीनता थी। बोला—नहीं, मैं सोच रहा था कि काश ऐसा हो ही जाता।

रेवती जल मरी। उसके प्रति उदारता दिखाई जा रही थी। उसके जीवन के अरमानों का खून करके उसे सहलाया जा रहा था। पर जलन को ज़ाहिर करने में भी उसका पराभव था। उस ज़हर को पी लिया। पर व्यंग्य से न चूकी—यह किसके भले की सोच रहे हो ?—मेरे या जयन्त के ?

चन्द्रकांत ने शांत स्वर में कहा—पता नहीं इसमें किसका भला या बुरा है। मेरे मन पर जो पहाड़ सा बोझ है, शायद वह हल्का हो सके।

रेवती तिक्त होकर बोली—ओ, तो एहसान नहीं, प्रायश्चित है। मुझे कोठे पर न बैठा दो। जो पूरा पाप ही धुल जाए !

—रेवती ! —चन्द्रकांत का आहत स्वर कुछ ऊंचा उठ गया।

ओह, तो गुस्सा भी आता है तुम्हें—रेवती ने नश्तर चलाना जारी रखा।

चन्द्रकांत चुप रहा। रेवती शीशे में अपना मुंह देखने लगी थी। पास ही चन्द्र-कांत का बिंब भी पड़ रहा था। उसे नागवार लगा। शीशे के सामने से हट गई। पर्दे के पीछे जाकर कपड़े बदलने लगी। कपड़े बदलकर अपनी खाट पर आई। जैसे मकड़ी अपने शिकार से खेलती हो, उसी तरह चन्द्रकांत से खेलती हुई बोली—तुम्हारा मन कभी मुझे देखने को नहीं करता ?

—देखता तो हूं—चन्द्रकान्त ने डरते हुए कह दिया।

—नहीं, यूं नहीं—रेवती ने अंगड़ाई ली—यूं नहीं। यूं तो सारी दुनिया देखती है। पर तुम तो मुझे ब्याह कर लाए हो। तुम्हें तो मुझे हर हालत में, हर रूप में देखने का अधिकार है। बोलो—क्या मैं इतनी सुंदर नहीं कि तुममें एक छोटी सी कामना भी जगा सकूं।

चन्द्रकांत ने छलकते यौवन को देखा। ठंडी सांस ली। बोला—मैंने इतने पुण्य ही कब किए थे रेवती, जो उस सुख को भोग भी पाता जिसका अधिकारी बना।

वह बोली—तब तो हम दोनों ही एक से हैं। दोनों ही पिछले जन्म के पापी हैं। मैं तो शायद तुमसे भी बड़ी पापिन। तुम जलते तो नहीं हो। मेरे तो भीतर ही भीतर दाह होता है।

चन्द्रकांत ने कहा—वह भी मेरा ही पाप है। जाने कैसे इस पाप से उबरूंगा।

रेवती पलंग पर लेट गई थी। सांसों में वक्ष उठ-गिर रहा था। बढ़ते हुए उद्वेग के साथ वह और अधिक फूल-फूल उठता। उस उद्वेग को छिपाने के लिए उसने करवट ले ली। इससे चन्द्रकांत के और समीप चली आई। उसके बदन की गंध ने चन्द्रकांत की पीड़ा को कुछ और बढ़ाया। बोला—सच बताओ रेवती। तुम मानवी हो या…

—दानवी—रेवती ने उसे पीड़ित करने को कहा।

पर चन्द्रकांत भावावेश में कहता चला गया—नहीं, तुम स्वर्ग की अप्सरा हो। किसीके शाप से मानवी बनी। मुझे पाया। मुझे इसलिए पाया कि तुम दिव्य हो। इस धरती का आदमी तुम्हें छूने का अधिकारी हो ही नहीं सकता।

रेवती हंस पड़ी। हंसती रही—कुछ और। कुछ और!

फिर हंसते-हंसते ही बोली—तो पारखी हो। मेरे मूल्य को जानते हो। मैं भी अपना मूल्य जानती हूं। इसीसे सोचती हूं कि कहीं भाग जाऊं; अकेले नहीं, किसी पुरुष के साथ। तुम्हें जयन्त पसन्द है। तो उसीके साथ। वह पुरुष है। पर पौरुष-हीन। मुझे उसमें पौरुष जगाना होगा। बोलो, अगर एक दिन तुम रात को घर लौटो और हम दोनों को गायब पाओ तो कैसा लगेगा!

चन्द्रकान्त चुप रहा। रेवती देखती रही। वह कुछ कहने के लिए जैसे शब्द तोल रहा था। बोला—रेवती, ऐसे न जाना। मुझसे बताकर जाना। मैं यात्रा की ठीक-ठीक व्यवस्था कर दूंगा। रुपये-पैसे का इंतज़ाम भी कर दूंगा। नहीं तो तकलीफ होगी।

रेवती उठ बैठी। तड़पकर बोली—नहीं, यह सुख तुम्हें न दूंगी। यह दया भी न लूंगी। जयन्त को अपने रूप की डोर से बांधकर ले जाऊंगी। जिस जेवर-पैसे को मैंने अपना समझकर जोड़ा, बटोरा है, सिर्फ वही ले जाऊंगी। घबराओ नहीं, परदेश में मुसीबत नहीं उठाऊंगी। देखो, मेरी तरफ देखो। क्या इस रूप के लिए कहीं भी कोई दिक्कत हो सकती है!

चन्द्रकान्त ने देखा। नागिन फन उठाए लहरा रही थी। उसने अपनी आँखों पर हाथ रख लिए। शब्दों को रोकने के लिए होंठों को काट लिया। फिर भी यह कह ही गया—'तुम्हें अधिकार है। तुम्हें यह सब कुछ कहने और करने का अधिकार है। तुम इस अधिकार को कभी न छोड़ना, कभी न छोड़ना रेवती!' चन्द्रकान्त रोने लगा था। रेवती पाषाणी हो उठी थी। बोली—बिजली बुझा दूं। नींद आ रही है।

इतना कहकर उसने बैड-स्विच दबाकर कमरे में अंधेरा कर दिया। चन्द्रकान्त के लिए उसके पास नाम को भी सहानुभूति न थी। पर वह सो न पाई थी। जलती, तड़पती सी करवटें लेती रही। चन्द्रकान्त के प्रति बरती कठोरता का भी कुछ पछतावा था। उसपर दया आने लगी थी। वह तो दईमारा है। ऊपर से मैं बिजली गिराऊं। वह सब कुछ भूलकर चन्द्रकान्त के बारे में ही सोचती रही। इस समय उसे उसकी अच्छाइयां ही अच्छाइयां याद आ रही थीं। ईश्वर ने पुरुषत्व से वंचित रखा तो क्या? मनुष्यता का तो धनी है, पशु तो नहीं।

वह सोचती रही। इसी तरह बहुत कुछ सोचती रही। मन कोमल हो-होकर दया से भरता गया। कितनी ही देर हो गई। उसे लगा अब चन्द्रकान्त सो गया होगा। मन में आया कि देखे कि नींद में भी तो कहीं पीड़ाएं नहीं घेरे हैं। उसने बैड-स्विच दबाया। कमरा रोशनी से भर गया। चन्द्रकान्त करवट लिए पड़ा था, वैसे ही पड़ा रहा। रेवती को लगा, सो गया है। उठी। सिरहाने की तरफ से पलंग के ऊपर झुककर उसका मुंह देखने लगी। वह इतनी झुक आई थी कि उसकी सांसें चन्द्रकान्त के गाल पर गुदगुदी करने लगीं। उसने आंखें खोल दीं, निर्मल आंखें। पर अब पीड़ा के स्थान पर प्रसन्नता की सहमी सी झलक थी। बड़े ही कोमल स्वर में बोला—ओह, तुम सोई नहीं? क्या देख रही थीं मेरे मुंह पर? अपने प्रहारों को! पगली हो। वे तो फूल से कोमल हैं। सोओ।

पर उसकी आंखों में प्रसन्नता देखते ही रेवती कठोर होती चली गई। उसकी स्नेह भरी उदार बातों को सुन-सुनकर प्रतिहिंसा से भर उठी। तड़पकर बोली—मुझे बहुत ही अच्छी समझते हो तुम। नहीं, इतनी भली नहीं! देख रही थी कि सो गए हो तो अभिसार को जाऊं। शायद जयन्त कहीं मेरी प्रतीक्षा कर रहा हो।

चन्द्रकान्त ने विदग्ध स्वर में कह दिया—तो जाओ न रेवती। मुझे सुनाती क्यों हो!

रेवती बोली—इसलिए कि तुम्हें भी तो जलन हो। तुम भी अपने पाप को प्रत्यक्ष देखो। पर अब नहीं जाऊंगी। ऐसे नहीं जाऊंगी। तुम्हारी आज्ञा से कुछ नहीं करूंगी। तुम नहीं, मेरा मन स्वामी है। उसी स्वामी के मन से चलूंगी।

उस रात को जाने कब रेवती सो गई थी। खोली में दीवाल के सहारे पीठ लगाए बैठी रेवती को उस रेवती से ईर्ष्या हो रही थी जो उस मनोमंथन के बावजूद भी सो तो सकी थी। आज की रेवती की नींद भी सौत हो गई थी। पर नींद-मारी रेवती नहीं जान पाई थी कि उस रात जयन्त पर क्या बीती थी।

जयन्त अब नीचे आया तो उसने सब से पहला काम रेवती को पत्र लिखने का किया। जाने क्या-क्या लिखा, कितनी बार लिखा। पर संतोष नहीं हुआ। वह उसे बताना चाहता था कि इस जागरण की रात में मैंने आत्मविश्वास पाया है, अपने मन को जाना है। तुम मेरे लिए सांस सी अनिवार्य हो, यह पहली बार समझा। तुम्हारी स्मृति के सहारे मैं बहुत कुछ सह सकता हूं। तुम मिल जाओ तो इन्द्र को भी जीत सकता हूं। सचमुच ही मैंने अलौकिक सुख के साथ वह रात बिताई। तुम्हारी स्मृति के पांखी जो मेरी हर सांस की डोर से बंधे दूर उड़ते-उड़ते भी पास खिंचे चले आते थे। पर उस सुख में भी मै नहीं भूला कि तुम कितने बन्धनों से जकड़ी हुई हो। मायावी दानव ने तुम्हें सोने के किले में बंद कर रखा है। मेरा मन करता कि खिड़की-दरवाज़े तोड़ तुम्हें मुक्त कर दू। तुम घबराना नहीं रेवा। तुम्हारा जय तुम्हारे साथ है, हर हालत में साथ है; आंसुओं में भी, मुस्कान में भी।

आखिर पत्र पूरा हुआ। आरम्भ में उसने उसे 'री' कहकर सम्बोधित किया था। मध्य में 'रेवा' कहा। स्वयं का पहली बार 'जयन्त' से 'जय' बनाया। और अंत में 'रे' का 'ज' लिखकर समाप्त किया।

पत्र पूरा कर वह अपने पलंग पर आया। शरीर थक रहा था। लेट गया। अपने लिखे पत्र को ही पढ़ना आरम्भ किया। एक बार पढ़ा। कुछ अच्छा लगा, कुछ बुरा। छाती पर रखकर सोचने लगा कि कैसे उसे ऐसा बना दे कि 'रेवा' पढ़ते ही अपनी समस्त पीड़ाएं भूल जाए। सोच ही रहा था कि नींद आ गई। 'जय' अपनी 'रे' और उस प्रेमपाती दोनों को भूल गया। इस समय नींद ही उसकी प्यारी हो चली थी।

जब रेवती उठी तो धूप काफी चढ़ चुकी थी। चन्द्रकांत उठकर जा चुके थे। उसने बगल की सूनी खाट को देखा जिसपर एक सलवट भी नहीं थी। फिर आंखें बंद कर लीं। नींद देर से उठने पर भी पूरी न हुई थी। लेटी रही। पर न नींद आई और न आराम ही मिला। मुंह फीका-फीका था। उठी। कुछ देर सिरहाने के सहारे बैठी-बैठी बदन तोड़ती रही। घड़ी पर नज़र गई। सुई भी न जाने कितना सफर तय कर चुकी थी। उठी! सुबह के कामों में लग गई। जयन्त को एक

बार याद तक नहीं किया; नहाई। बड़ा तौलिया लपेटकर बालों को सुलझाने शीशे के सामने जाकर खड़ी हो गई। हाय! कितनी सुन्दर है!·····अपने रूप पर आप मोहित हो गई। तभी जयन्त की याद आ गई। उसे भी तो ऐसी ही लगती हूं न। ज़रूर। हा, ज़रूर। वह रात भर अवश्य ही जागा होगा। इस समय क्या कर रहा होगा। शायद बाल नोच रहा हो। वह हंसी। अपनी लम्बी लटों को उसने वक्ष पर चमर की तरह फैला दिया था। अच्छा तो उसकी सुध लूं। वह किसी तरह शीशे के आगे से हटी जो कामुक पुरुष को भी रूप की प्रशंसा में पीछे छोड़ देता है। कोई तरुणी हो, कैसी भी हो, उसकी दृष्टि में पड़े तो रूप बखान करने लगता है। तब कैसे हटे वह रूपप्रिया। रेवती तो सचमुच रूपसी है। शीशे ने उतनी ही तारीफ की। वह विकल होती गई तारीफ सुन-सुनकर। बड़ी मुश्किल से हटी शीशे के सामने से। कपड़े पहने। खुले बालों से ही जयन्त के कमरे की ओर चल दी।

उसने खिड़की से झांककर देखा। अरे, उसका विरही तो सो रहा है। छाती पर कुछ रखा है। शायद कागज़। हां, कागज़ ही। पत्र होगा। प्रियतमा का पत्र, पर नहीं। कागज़ दूसरा है? तो क्या? आत्महत्या के पूर्व लिखा पत्र तो नहीं? यह बावला तो बारबार मरने की बात करता है। कहीं सचमुच ही ···· वह दौड़ी-दौड़ी अन्दर आई। देखा, सांस चल रही है। रुक गई। कदम धीमे कर लिए, पास पहुंची। धीरे से छाती पर से पत्र को खींचा। वह बेसुध था, नींद में। पत्र चोरी चला गया। पता भी नहीं चला। वहां से वह अपने कमरे में आई, पत्र पढ़ा, कई बार पढ़ा। प्रसन्नता मुस्कान में झलकने लगी। मुस्कान हास में मुखर हो उठी। हास मुख की कांति में खो गया। रेवती ने दर्प भरी दृष्टि से खुद को देखा, पलंग को देखा, सिंगारदान को देखा, फर्श और छत को देखा। फिर विजय के संतोष के साथ आंखें बन्द कर लीं। जाने कितनी देर तक वैसे ही पड़ी रही। फिर उसने पत्र को मोड़ा और चोली में रख लिया। होंठों ही होंठों में कहा—जयन्त पुरुष बन सकता है। जयन्त का पुरुष चैतन्य हो रहा है। मैं उसे अपना अनुपम पुरुष बनाकर ही दम लूंगी!

नागफनी की वाड़ी की रेवती की आंखों में लखनऊ की रूपगर्विता रेवती चमक

उठी। अपनी इस विडम्बना में भी उसका मन किया कि उसपर हंस पड़े, उसके दावे और आत्मविश्वास पर हंस उठे। क्या हुआ उसके उस प्रिय पुरुष का : भाग गया; धोखा देकर भाग गया; सच भी न कह सका। जो स्त्री उसके सहारे इस विदेश में आई उससे छल कर गया। वंचिता रेवती गर्विता रेवती पर दया करने लगी।

कोई दोपहर में जयन्त उठा। वह यह तक भूल गया था कि उसने अपनी 'रे' को कोई पत्र भी लिखा है। पहले तो देर तक सोए रहने पर अचरज करता रहा। फिर सोचने लगा कि कैसे इतनी देर तक सोया रहा। ध्यान आया। रात को जागा था। फिर···फिर उसने अपने 'रे' को प···उसके हाथ छाती पर गए। पत्र क्या हुआ, कहां गया। वह तो उसे लिख चुका था। पढ़ते-पढ़ते सो गया था। फिर··· फिर किसने हथिया लिया। हाय 'रे' तुम मुझ तक न पहुंच सकी। मेरा पत्र तुम तक न पहुंच सका। सचमुच ही जासूस लगे हैं हमारे पीछे। उफ, अब तो गज़ब हो जाएगा। उस पत्र को पाकर तो तुम्हारे ऊपर जो कहर न ढाया जाए। कैसे बचाऊं तुम्हें अत्याचारों से। मेरी रेवा, रे, री आओ भाग चलें। भाग चलें 'रे'।

जयन्त को दिन भर अपनी 'रे' की झलक तक नहीं मिली। रेवती ने अपने कमरे में ही खाना मंगाकर खाया। चन्द्रकांत आज दोपहर में घर आए ही नहीं। जयन्त को सूनी मेज़ पर खाना परस दिया गया। उसने दो-चार कौर खाए और पानी पीकर उठ गया। किसीने कुछ और खाने का आग्रह तक नहीं किया। था भी कौन, जो करता। मोटी मिसरानी रोटी बना लेती है, यही बहुत। थाली में भी उठ-उठकर झाँके तो मुटापा कै दिन टिके। परसने वाला मंगतू नाम के प्रताप के अनुसार देने में विश्वास नहीं रखता। रात का खाका तो कभी-कभी साथ खाया जाता था। चन्द्रकान्त काफी देर से लौटते थे। अतः हर कोई अपनी सुविधानुसार खा लिया करता।

रात आई। मुसीबत आई। जैसे आराम से चलते-चलते यात्री की राह में पहाड़ पड़ गया हो। जयन्त को ठीक ऐसा ही लगा, कैसे कटेगी यह रात जिसमें नींद भी न हो, उसकी 'रे' भी न हो। वह बेचैन हो उठा। बिस्तर के पास जाने की हिम्मत न हो रही थी। लगता जैसे करवटें लेते-लेते ही थक जाएगा। मन में आया कि छत पर जाकर टहले। आसमान से, तारों से, हवा से, सुनसान से ही, अंधि-

थारे से ही कुछ बातें करे। शायद उसकी 'रे' ही मिल जाए। कल न आ पा कर आज ही उसकी प्रतीक्षा कर रही हो। पर वह छत पर न जा सका। 'रे' के आने की कल्पना कर सकता था, पर विश्वास नहीं।

उसने पढ़ने की कोशिश की; व्यर्थ गई। अक्षर अजनबी लगे। किताब बंद कर दी। क्या करे। बस, बत्ती बुझा दी। कभी कमरे में घूमता कभी खिड़की की सिल पर कोहनियां टेककर बाहर की दुनिया देखता। कभी बिस्तर पर लेटकर तकिए को मसोसता हुआ उठ बैठता। उसने उसका नाम ले-लेकर नींद को बुलाने की कोशिश की—रे, री, रेवा। पर नींद ने तो कसम खा रखी है कि बुलाए से कहीं नहीं जाएगी। जयन्त को समय बीतता न लग रहा था। फिर भी समय बीत रहा था। चाहे मन बेचैन रहे। नींद न आए। क्षण पहाड़ हो जाए। पर समय तो बीतता ही है। वह तो किसीके मोह में भी नहीं बंधता। पंखों वाले घोड़े पर बैठा, बाट-कुबाट सब पर उड़ा चला जाता है। कालपंखी घोड़ा उड़ता चला गया, कहीं का कहीं जा पहुंचा। पर जयन्त उसी परिधि में था—रे, री रेवा। उस परिधि से बाहर ही नहीं निकल पा रहा था। वह पलंग पर लेट गया और तकिया सिर के ऊपर रखकर नींद को झांसा देने लगा।

तभी मीठी सी आवाज कान में पड़ी—म आ गई। लो, मैं नींद बनकर तुम्हें सुला दूंगी।

उसकी 'रे' है। पर विश्वास नहीं हुआ। हां, उसीकी 'री' है। पर मन न माना। उसने सिर पर से तकिया उठाया ही नहीं। कहीं भ्रम मिट न जाए, सपना टूट न जाए। हाय टूट ही गया। वह मीठी आवाज़ खो ही गई।

पर यह क्या ? कौन जादू की छड़ियों से उसके बालों को छेड़ रहा है। यह तो चिरकाम्य स्पर्श है। हां उसीका, 'रे' का। रोमांच हो आया। पर तकिया हटाकर देखने की हिम्मत तब भी न हुई। कहीं 'स्वर' की तरह 'स्पर्श' भी गायब न हो जाए।

'रूठ गए', किसीने कहा। साथ ही उसके लहरीले बालों को अंगुली के फंदे में डालकर प्यार से खींचा। वही है, वही है। स्पर्श भी वही। स्वर भी वही। दोनों साथ-साथ। वह तकिया फेंककर उठ खड़ा हुआ। खिड़की से आते हुए बाहरी

प्रकाश में उसने देखा—उसकी 'रे'। मोहिनी 'रे'। विश्वमोहिनी 'रे'। वह उससे लिपट गया! मोहिनी! विश्वमोहिनी! प्रथम आलिंगन। प्रथम ज्वार। पहली बार तट का स्पर्श। अद्भुत, अपूर्व! हिमालय की हंसी के पांखों में मेघ-शिशु लिपट गया। उसने सब कुछ भूलकर अपने तपते हुए सिर को उसके वक्ष में छिपा लिया। भूख। गोवत्स वाख से चिपट गया। 'रे', मेरी 'रे'। कहां चली जाती हो माया-विनी? कहां से चली आती हो मायाविनी? हाय मुझे जीतने के लिए इतनी तैयारी! इतना रूप! उफ, प्राण ले लोगी। ले लो। तुम्हीं प्राण हो। तुम में 'तुम' लय हो जाए। समा लो। समा लो।

रेवती ने दोनों कनपटियों से उसका सिर पकड़कर उठाया। उसके मुख को अपनी गरम-गरम सांसों से अकुलाती हुई बोली—जादूगर, तुम हो। तुमने मुझे पथभ्रष्ट कर दिया! तुमने मुझे मेरे पति से छीन लिया! हाय, पापी, तुम क्यों आए थे। आए थे तो मेरे मन का बंधन क्यों बन गए!

जयन्त जाने किस लोक में जा पहुंचा। वे शब्द नहीं, मन की गति से उड़ने वाले विमान थे। वह ऐसे सुख के लोक में जा पहुंचा जिसका द्वारपाल स्वर्ग है। जिसका दौवारिक वैकुंठ है। जहां मोक्ष बंधनों को ढूंढ़ता है। रेवती उसे रूप की किरणों की अंगना लगी।

बोला—ओ मेरी 'रे'। तुम मुझे मृत्यु दे दो। जिससे मेरा यह क्षण अन्तहीन हो उठे।

उत्तर मिला तो उठो। मेरे साथ-साथ अपने पंखों को भी तोलो। मैं तुम्हें भी तुम्हारे इस क्षण के साथ-साथ अंतहीन कर दूं।

जयन्त ने आंखें फाड़कर देखा—प्रकृति। विराट् प्रकृति। धरती-अंबर के बीच में केवल एक वही। वह वायु बनकर उससे लिपटा हुआ।

सुधी के बंधनों को तोड़ता हुआ बोला—तुम्हें मैंने बंदिनी समझा था। तुम मुक्त हो। तुम बंदी हृदयों की मुक्ति हो। मुक्तों का बंधन हो। मेरे बंदी मन की मुक्ति हो। मेरे मुक्त मन का बंधन। विराट्-रूपिणी तुम्हें नमस्कार। तुम कहां नहीं स्थापित हो। कामरूपिणी, तुमसे कौन मुक्त: या देवी सर्वभूतेषु कामरूपेण संस्थिता। ओ मेरी स्थिति आओ; काल की असिधारा बनकर आओ, जिससे सब

कुछ क्षीण होता चले। पर दृष्टिगत कुछ न हो। देवि, मैंने तुम्हारे रहस्य को जान लिया है। अपनी माया को समेट लो। अपने 'विराटत्व' को सूक्ष्म कर लो। मुझे अपने उदार दान से कृतकृत्य कर दो।

उत्तर मिला—कैसे पुरुष हो। प्रकृति तुमपर निछावर हो रही है। फिर भी मांगते हो। मैं तुम्हारी ही तो हूं, अंगीकार करो। ग्रहण करने का उपाय करो।

—मैं पुरुष—उसकी छाती फूल उठी—तुम प्रकृति। हम दो, पर एक। आओ प्रिये! पुरुष को चंचल करने वाली रागमयी, आओ।

प्रकृति बोली—मैं स्थावर हूं। मैं कैसे बढ़ूं।

पुरुष ने कहा—अपने पटों को उघाड़कर तुम चैतन्य-स्वरूप हो जाओ।

प्रकृति ने कहा—उन पटों में तो मेरी वास्तविकता है। मुझे स्वयं से छीन रहे हो। छलिया, यही अभीष्ट है तो मुक्त कर दो इन पटों से। हर लो इस चीर को।

जयन्त उद्धत पौरुष से भर उठा। वह वास्तविकता भूल गया। सामने खड़ी रेवती के ब्लाउज़ को उसने गले पर से कसकर पकड़ा और जोर का झटका दिया। मलमल का ब्लाउज़ अंगिया सहित अंग छोड़कर अलग हो गया। उसके नेत्रों में स्वर्णकमल खिल उठे। उन्हें देखने बाहर का प्रकाश खिड़की से भीतर घुसकर घनीभूत हो गया। जयन्त की आंखें चौंधिया गईं। उफ, यह रूप; पुंजीभूत रूप! उसने आंखों पर हाथ रख लिए। रेवती खिलखिलाकर हंस पड़ी। जैसे मदिरा का सोत फूट पड़ा हो। जयन्त के अंग-अंग में मदन-दहन होने लगा।

वह कामुक स्वर में बोला—मेरी 'रे'। अब तुम्हें न जाने दूंगा। अब तुम्हारी छाया को भी किसीके अधिकार में न होने दूंगा।

रेवती ने वक्ष पर आंचल ढकते हुए कहा—बालकों की सी बातें न करो। जयन्त। मैं तुम्हारी कहां? इस घर की छत के नीचे तुम्हारी कैसे? मेरे पति हैं; स्वामी हैं। मैं उनके अधीन हूं।

वह उत्तप्त स्वर में बोला—तो चलो, हम भाग चलें। इस छत से दूर भाग चलें जहां यह बंधन न हो। भाग चलें।

रेवती ने कहा—पर मैं स्त्री हूं। कैसे···

जयन्त बोला—हठ न करो 'रे'। मैं पुरुष हूं। तुम वैसे न चलोगी तो मैं

तुम्हारा हरण करूंगा।

रेवती की आंखें चमक उठीं--तुम हरण करोगे ? सच प्यारे ! एक बार फिर कहो कि तुम हरण करोगे। मैं निहाल हो जाऊंगी, अगर तुम मुझे हरके ले जाओ। मैं ऐसे ही पुरुष की खोज में थी। मेरी खोज पूरी हुई। तुम तैयार रहो। मैं आई। अभी आई।

रेवती कमरे में लौट आई। चन्द्रकान्त सोया पड़ा था। उसने चट से कपड़े बदले। अपने आभूषणों की छोटी पेटी को चमड़े के बक्स में रखा। उसमें पहले से ही कुछ वस्त्र और उसकी सारी जमा पूंजी रखी थी। अटैची उठाई, और चल दी। चन्द्रकान्त की ओर देखा तक नहीं। वह कहां, किसके साथ जा रही है, सोचा तक नहीं। उसकी ठोकर से कमरे के बीचों-बीच रखी कामदार पीतल की मेज़ खन्न से गिर पड़ी। उसपर रखा फूलदान लुढ़क गया। पर जैसे कुछ हुआ ही नहीं। वह बाहर आई। जयन्त तैयार खड़ा था। उसके हाथ में भी कपड़ों का एक अटैची था। उसने पुकारा—'रे' तुम आ गई !

—हां जय,--रेवती ने उत्तर दिया। दोनों चल दिए। किसीने यहां तक नहीं देखा कि करुणा भरी चन्द्रकांत की आंखें उन दोनों को आशीर्वाद दे रही हैं।

रेवती अकुला उठी। लालटेन अपने-आप बुझ गई थी। शायद तेल चुक गया था। बाहर प्रकाश की कली चटखने लगी थी। खिड़की-किवाड़ के संधों से उसकी महक अन्दर झांक रही थी। पर रेवती ने माथे पर दुहत्थड़ दे मारी। उसका काम्य पुरुष कापुरुष निकला। एक रात भी वह पुरुष न बना रह सका। वहां से चलकर सीधे बम्बई आए। जयन्त ने रास्ते भर खिड़की से बाहर झांका तक नहीं। किसी सहयात्री के सामने मुंह तक नहीं खोला। रेवती से बोलते हुए भी उसकी जीभ लड़खड़ाती। वह बार-बार कहता—पुलिस हमारा पीछा कर रही होगी। अब तक सब जगह तार खड़क चुके होंगे।

रेवती उसे कैसे समझाती ? बंबई आए। होटल में जयन्त नहीं ठहरेगा। धर्मशाला में शरण ली। रेवती ने रुपया-ज़ेवर बैंक में जमा किया। फिर तीन दिन धर्मशाला में ही गुज़ारा दिए। और उस दिन मनुभाई मिल गए। वह यहां आ

गई। सोचा था इस खोली से उसके नए घर का समारम्भ हो गया। पर घर बनने से पहले ही विघटित हो गया; जयन्त भाग गया। पुरुष कापुरुष निकला। पीड़िता रेवती उसके लिए रो भी तो नहीं सकती। उसने अपने माथे को ठोका। शायद इसी तरह रोना आ जाए, पर न आया। वह हल्की हो ही न सकी। छिपकली कहीं किसी खपरैल से चिपटी सो चुकी थी। खटमल थककर बिस्तर की परतों में छिपकर सो गए थे। मच्छरों ने कोनों में शरण ले ली थी। पर रेवती कहां ले शरण। उसे अपनी मां याद आई: मां! आह! वे सुनेंगी तो। उसे चन्द्र-कांत भी याद आया: कैसा निरीह! दया का पात्र। उसे रोना आने लगा। जयन्त के लिए न रो सकी। पर चन्द्रकान्त के लिए रो पड़ेगी। हाय, कैसी दीन आकृति! हट जाओ चन्द्र, मेरी आंखों के आगे से। मत रुलाओ मुझे पापी, मत सताओ मुझे निर्दय। अपने पास जलाते रहे। अब भी जला रहे हो। मां, चन्द्र की इन आंखों से मुझे बचा ले। मां···मां···।

रेवती रो पड़ी। बिस्तर पर औंधी होकर गिर पड़ी। रोती रही। स्नायु-जाल का तनाव धीरे-धीरे कम होने लगा। वे आंसू कब नींद बन गए, उसे पता भी न चला।

ना
ग
फ
नी

# उत्तर खण्ड : आगत

जब रेवती सोकर उठी तो तीसरा पहर हो चला था। वह तन-मन दोनों से ही खुद को बड़ा हल्का महसूस कर रही थी। जैसे सूरज के बानों से पीड़ित ऊमस भरी बदली बरसकर हंसिनी की पंख सी हो गई हो। उसने उठते ही खोली के दोनों किवाड़ और दोनों खिड़कियां खोल डालीं। जैसे रुके हुए जीवन को नए रास्ते दिखाने का संकल्प कर चुकी हो। खिड़की-किवाड़ खुलते ही समुद्री हवा अपने नमकीन और बोझिल स्पर्श से उसके बदन में फुरहरी सी कर गई। पिछले दरवाज़े से नागफनी की बाड़ और नीम की कबंध सी भुजा दिखाई दे रही थी। कुएं की परली तरफ की मन भी थोड़ी-थोड़ी दिखाई दे रही थी। पर उसे नागफनी में विशेष आकर्षण लगा। जीवन-रस से परिपूर्ण! साथ ही आत्मरक्षा में समर्थ। बलुई ज़मीन में भी अपने दलों के रस से जीवित रह सके! बाहरी आक्रमण को अपने कांटों से परास्त कर सके। सुई से कांटे! विषधर की जीभ से कांटे। लोग इसे सत्यानासी कहते हैं। जहां यह उगती है वहां फिर और कुछ जो नहीं उग पाता। नहीं, बात उल्टी है। जहां कुछ न उगे वहां भी यह उग आती है। राजस्थान में एक बार अपने छुटपने में गई थी। वहां उसकी बहुतायत थी। उसे रेतीली भूमि में उगी नागफनी जौहर को खेल समझने वाली राजस्थान की पद्मिनी सी लग रही थी। पद्मिनी, नारियों में पद्मिनी। सदा बाड़ बनकर अपने आश्रितों की रक्षा करती रही है राजस्थान की नार। वह उसे सचमुच ही सहेली सी लगी। उसमें उसे एक नया संदेश मिल रहा था। उसने मन ही मन कहा : तेरी बात मैंने गांठ बांध ली प्यारी। तेरी सिखावन कभी न भूलूंगी! कभी नहीं।

कितनी ही देर तक वहां खड़ी रहने के बाद वह सामने के दरवाज़े की चौखट पर आकर खड़ी हो गई। पारसी के ऊपरी खन के उस कमरे की खिड़की अब बंद थी। सामने कतार बांधे कई खोलियां थीं। पर वह उनमें रहने वालों में से किसीको

भी तो न जानती थी। उसने उन्हें देखकर अपनी दृष्टि ऐसे समेट ली जैसे व्यर्थ की उड़ान के बाद कोई पंछी अपने पर समेटकर कहीं किसी डाल या मुंडेर पर बैठ जाए।

तभी स्नेह भरा स्वर सुनाई दिया—आज तुम बाहर निकल आई बेटी।

रेवती ने देखा। मनुभाई थे। तीन दिन से उसने किसी दूसरे की आवाज़ सुनी तक नहीं थी। बड़ी मीठी लगी आवाज़। बड़ी अच्छी लगी आकृति। देखकर ममता उमड़ आई। अचानक ही कह बैठी—आओ, दो मिनट भीतर न बैठो बापू।

'बापू', मनुभाई का रोम-रोम खिल उठा। 'सेठ' नाम से संबोधित होने की आदत पड़ गई थी। पर कितना अखरता था वह संबोधन! कोई मनुभाई कहने वाला मिल जाता तो वे अपने आपे में आ जाते। पर यह तो उन्हें ऐसे बुला रही है जैसे लक्ष्मी आंगन के पीपल तले से बुलाया करे थी। मनुभाई की आंखें ओस में डूबी पंखुड़ी सी हो गईं। बिन कुछ बोले अंदर चले आए। एक कोने में स्टोव और जूठे बर्तन थे, दूसरे में बक्से। एक तरफ सलवटों से भरा बिस्तरा। जैसे अभी किसी-ने उसे छोड़ा हो।

वे खोली का निरीक्षण कर रहे थे कि रेवती की आवाज़ सुनाई दी। या कि लक्ष्मी ही हठीले स्वर में बोली—बैठो न बापू।

बापू बैठ गए। भारी सफेद मूंछें भी होंठों पर खिल उठीं। प्रसन्नता को छिपा न सकी थीं। वे वहीं ज़मीन पर बैठने लगे। रेवती उलाहने के स्वर में कह बैठी—ज़मीन अच्छी लगती है बापू।

बिल्कुल लक्ष्मी। हर काम अपने मन के मुताबिक करने-कराने वाली लक्ष्मी। बिना कुछ कहे बिस्तर पर जा बैठे। रेवती सामने धरती पर ही बैठ गई। मनुभाई ने अपनेपन से भरकर प्रश्न किया—रात भर जागी थी बिटिया।

रेवती चुप रही। उस चुप्पी में 'हां' थी। मनुभाई कहते गए—अकेले डर जगा होगा! नई जगह है न! भैया कहां गए?

क्या जवाब दे रेवती। जवाब होंठों तक आकर लौट गया। आंखों ने थोड़ी सी उतावली दिखाई। कुछ कह ही बैठती कि उसने उन्हें ज़मीन में गड़ा दिया। मनु-भाई फिर भी समझ गए। कह भी दिया—बड़े गैर-ज़िम्मेदार लगते हैं भैया।

रेवती ने बात अनसुनी कर दी। बोली—चाय बनाऊं बापू।

मनुभाई वत्सलता से मुस्कराकर बोले—चाय से भर जाएगा तेरा पेट बिटिया!

रेवती को लगा कि वह रो देगी। कल रात से रोनी हो गई है। अब उसे रोना जो आने लगा है। पर आंसू संभाल और बात पलटकर बोली—तो रोटी बनाऊं! तुम्हें भूख लगी है बापू!

मनुभाई बोले—मेरी भूख तो तेरे बोलों से मिट गई बिटिया। पर तेरी भूख के लिए मुझे कुछ करना चाहिए।

इतना कहकर मनुभाई उठ खड़े हुए। रेवती उन्हें रोकती हुई बोली—यह कहां चल दिए बापू।

—कहीं नहीं! ज़रा खोली तक! अभी आया। हां तू इतने स्टोव पर चाय का पानी रख दे। बाकी काम मैं कर लूंगा। आज तुझे दालचीनी की चाय बनाकर पिलाऊंगा—मनुभाई ने ऐसे कहा जैसे उसे बचपन से गोद में खिलाते आए हों।

रेवती कुछ न कह सकी।

पांच मिनट में ही मनुभाई लौट आए। हाथ में तश्तरी थी जिसमें चौलाई के चार बड़े-बड़े लड्डू थे। भड़-भड़ करता हुआ स्टोव जल रहा था। और उसपर रखा पानी अभी निमासा ही हुआ था। वे बोले—चाय में तो अभी वखत लगेगा। ले इतने में लड्डू खा।

—इतने सारे!—उसने अचरज ज़ाहिर किया।

—नहीं! इनमें एक मेरा है—मनुभाई मूंछों को फरकाते हुए बोले।

—नहीं, मैं सिर्फ एक खाऊंगी! देखो न, कितने बड़े-बड़े हैं बापू—रेवती ने कहा।

—अरी बावली, वजन में तो ये पानी के बताशे हैं—मनुभाई उससे ऐसे बोलने लगे थे जैसे अपनी लक्ष्मी से बोला करते थे।

पर इतने नहीं खा पाऊंगी बापू—रेवती हठीली लक्ष्मी सी कहती गई।

'अच्छा तो दो तेरे और दो मेरे'—मनुभाई ने कहा। दोनों में समझौता हो गया।

मनुभाई ने लड्डुओं की तश्तरी उसकी तरफ बढ़ाई। उसने एक लड्डू उठा

लिया। मनुभाई ने भी एक ले लिया। दोनों ने खाना शुरू किया। पर रेवती लड्डू के मुंह में जाते ही बोल उठी——हाय बापू, मैंने तो अभी कुल्ला भी नहीं किया।

बापू के मुंह में लड्डू भरा था। अंगुली से इशारा किया——पहले खा लो, तब बात करना।

रेवती ने किसी तरह मुंह का लड्डू निकाला और बोली——सच बापू, मैंने मुंह तक नहीं धोया अभी!

बापू का मुंह भी खाली हो चुका था——बच्चों को ऐसे ही खाना चाहिए।

रेवती हंस पड़ी——मैं अभी बच्चा ही हूं बापू!

यह क्या लक्ष्मी का अवतार है। ठीक ऐसे ही बोलती थी वह। ऐसे ही उसकी आँखें चमका करती थीं। कितने दिनों बाद मिली उन्हें अपनी लक्ष्मी। और जैसे कभी उससे कहा था, वैसे ही बोले——नहीं, बच्चा तो मैं हूं! तू तो बुढ़िया हो गई है।

जाने आवाज़ कैसी हो गई थी। डांट से अधिक दर्द था। रेवती चुपचाप खाने लगी। उस डांट के खिलाफ सिर उठाने की ताकत उसमें न थी। इतने में स्टोव पर रखा पानी सूं-सूं की सी आवाज़ करने लगा। मुंह के लड्डू को निगलते हुए बोले——लो पानी बुला रहा है, मैं चाय बनाऊं इतने।

——तुम बनाओगे तो मैं नहीं पीऊंगी बापू!——रेवती ने विरोध किया।

बिल्कुल लक्ष्मी। बिना विरोध के कोई बात नहीं। बोले——तो तू ही बना। पर कसम इस चाय की ही जो मैं ज़िन्दगी में फिर कभी पीऊं।

मनुभाई ने कुछ ऐसे ढंग से कहा कि रेवती को हंसी आ गई। अचानक कह उठे——अरी, तू तो हंसती भी उसीकी तरह है!

——किसकी तरह बापू——रेवती ने कुतूहल से पूछा।

उस लड़की की तरह जिसे मेरी बनाई दालचीनी की चाय बेहद पसंद थी, पर फिर भी कहती थी हर बार कि तुम बनाओगे तो मैं नहीं पीऊंगी!——मनुभाई ने कहा।

रेवती नहीं समझी कि बापू बात छिपा गए। उसे लगा कि उसीकी मज़ाक उड़ा रहे हैं। वह और ज़ोरों से हंसने लगी। वह हंसी मनुभाई को कायल करती रही।

रेवती कैसे जानती कि वह सादृश्य बापू के लिए कितना प्रिय पर कितना पीड़क है !

—पर चाय का सामान ?—रेवती ने हंसी के सम पर आने पर पूछा।

—चिन्ता मत कर ! यह थैली है न जो कमर से बंधी है। इसमें खैनी नहीं, चाय और उसका मसाला रखता हूं। समझी !—मनुभाई ने ऐसे कहा जैसे किसी बच्चे को बड़े भारी अचरज की बात बता रहे हों।

रेवती अचरज में पड़ ही गई ! पूछा—यह थैली बराबर कमर से बांधे रखते हो बापू !

—और क्या !—मुस्कराकर बोले—तभी तो लोग सेठ कहते हैं। जिसके कमर में थैली बंधी हो वही सेठ। देखने वाले को क्या पता कि अंदर दालचीनी और चाय निकलेगी।

पर तुम भी गज़ब करते हो बापू ! भला इसे बराबर लादने से फायदा !—उसने ऐसे अधिकार से कहा जो मनुभाई की लक्ष्मी को ही हासिल था।

मनुभाई ने चाय की व्यवस्था करते हुए कहा—अरी तो हर वक्त इसमें चाय और दालचीनी थोड़े ही रहती है। आजकल की पढ़ी-लिखी औरतें जैसे बटवा रखती हैं न, वैसे ही मैं भी यह रखता हूं। मुझे उनका कोई फैशन पसंद नहीं, पर यह खूब पसंद है। हजार काम की चीज़। मेरी यह थैली ही लो न ! चौलाई के लड्डू से लेकर चिउड़ा तक इसमें रख लेता हूं।

बहुत दिनों का छुटा-छुटा मन प्यार की इन सीधी-सादी बातों में खुल रहा था। रेवती अपने हिस्से के दोनों लड्डू खा चुकी थी। भूख लगी थी ! अनायास ही तीसरा भी शुरू कर दिया। ध्यान ही नहीं आया कि बांट के खिलाफ है। खाते-खाते बोली—मुझे तो फैशन पसंद है। मैं फैशन करूंगी तो तुम्हें नहीं भाएगा बापू।

उसने सोचा कि बापू चक्कर में पड़ जाएंगे इस सवाल से। पर बापू ने झट जवाब दिया—मेरी बिटिया, तेरी बात और है। और बच्चों का फैशन किसे बुरा लगे है।

बिटिया ने तर्क किया—और वे दूसरी औरतें भी तो किसीकी बिटिया हैं।

बापू ऐसे चौंके जैसे कोई भेद की बात पता लगी हो—अरी हां, कैसा हूं मैं।

यह तो कभी मैंने सोचा ही नहीं। अब मैं किसीके फैशन को बुरा नहीं कहूंगा।

चाय तैयार हो गई। सिर्फ दूध और चीनी बाकी थी। मनुभाई स्टोव को बुझाते हुए बोले—हां, जरा सी चीनी और थोड़ा सा दूध दो बिटिया।

रेवती बोली—चीनी तो उस डिब्बे में रक्खी है बापू, पर दूध···

वह चुप हो गई। बापू उसके घर में चाय बना रहे हैं और वह दूध भी नहीं दे सकती। बापू ने उसका मुंह देखा। पलक मारते ही उदासी भांप ली। खुद से गिला भी हुई। भला, यह बेचारी दूध कहां से लाती! पर इसके पहले कि वे सचमुच ही दुखी हो उठे, चट से बोल उठे···सच पूछो तो मुझे चाय में दूध पसंद ही नहीं! चाय का असली मज़ा लेना हो तो···

—बिना दूध की चाय पी जाए—रेवती ने वाक्य पूरा करते हुए कहा—तुम भी बड़े चालाक हो बापू! बिटिया का मन रखने को सब कुछ कह लेते और मान लेते हो!

मनुभाई बोले—बिटिया एक वही तो चीज़ है दुनिया में रखने लायक। लोग अपना मान रखते हैं। दुनिया भी कहती है, बड़ा मानी है! पर मैं तो कहता हूं यह तो तुमने अपना मन रखा! दूसरे का मन रखो तो बात!

रेवती ने बनावटी नाराज़गी के साथ कहा—तो मैं दूसरी हूं बापू! तुम्हारी बिटिया नहीं। इसीसे मन रखते हो!

मनुभाई हंस पड़े—तू तो बड़ी पक्की वकील है री! ले, मैंने हार मान ली! अच्छा ला मेरा लड्डू कहां है। उसीके साथ चाय पीऊं।

पर लड्डू गायब था। रेवती अचरज में पड़कर बोली—हाय बापू, लड्डू क्या हुआ?

—मुझे लगता है दूध लेने चला गया—बापू ने अनतोल खुशी के साथ कहा। वह समझ गया था कि बिटिया को भूख लगी थी। बातों ही बातों में खा गई; पता ही नहीं चला। रेवती भी बापू के विनोद पर हंसती-हंसती बेहाल हो गई। हंसते ही हंसते बोली—और मत हंसाओ बापू! सारे लड्डू पेट से बाहर निकल पड़ेंगे।—और कहकर भी वह हंसती रही।

लड्डू तो पेट से नहीं निकले पर मौसी अपनी खोली से जरूर निकल आई।

दिखाई कुछ नहीं देता था। सिर्फ हंसी सुनाई दे रही थी। रेवती की हंसी। मन ही मन सोचती गई—बिल्कुल हीरोइन सी हंसी। जरूर हीरोइन के काबिल होगी। कम से कम इस हंसी पर कुर्बान होने वाले हीरो तो बहुत से मिल जाएंगे।

तभी सिंधी की बड़ी लड़की इंद्रा ने भी यूं ही बरामदे में आकर देखा। रेवती की हंसी तो वह न सुन पाई, पर मौसी को अवश्य देख लिया। बासी हरी मिर्च सी मौसी, पर मिर्च तो है ही। इन्द्रा मौसी की बड़ी कायल है। मौसी की भली-बुरी हर योजना में उसका अमित विश्वास है। उसने मौसी की अक्ल से अपनी तकदीर का पल्ला बांध रखा है। मौसी मेहरबान रही तो जरूर एक दिन उसका निस्तार हो जाएगा।

पर मौसी उसके बारे में जो राय रखती है यह वह जानती नहीं। शायद जान भी नहीं पाएगी। एक बार गाडगिल ने मौसी से कहा था—लो मौसी, छींका टूट पड़ा। सिंधी की छोकरियों पर जवानी चढ़ने लगी।

मौसी गाडगिल के अधूरे मुहावरे के व्यंग्य को समझ ही नहीं पाई। छींका तो बिल्ली के भागों टूटता है और वहां कौन सी ऐसी बिल्ली है जिसका संबंध सिंधी की छोकरियों की जवानी से है। उसने बड़ी पारखी की तरह कहा था—चार साल से देख रही हूं इन्हें। जो राय मेरी तब थी, वही अब है। बस जवानी के सहारे ही कटेगी इनकी जिन्दगी। और जवानी भी कहे दूं, पांच साल से ज्यादा नहीं रहेगी।

उस हिसाब से इन्द्रा जवानी के पहले साल में थी। उसकी छोटी बहन गुलाब उससे सिर्फ एक साल छोटी थी। पर उठान ऐसी कि एक साल बड़ी ही लगती थी। गाडगिल को वह पसंद थी। तत्काल बोल उठा था—तुम्हारा मतलब इन्द्रा से है न मौसी।

मौसी गाडगिल को बनाए रखना चाहती थी। झट कह दिया—और क्या? कहे दूं हूं। वह जो गुलाब है न छोटी, बुढ़िया हो के भी जवान लगेगी।

मौसी अपनी उस तुरंत की सूझ पर बड़ी खुश हुई थी। गाडगिल भी अपने कांइयापन पर खुश था। मौसी ने लपेटा तो दोनों को था, पर गुलाब को बचा गई। जानती है, गाडगिल की चहेती है।

पर इन्द्रा तो मौसी को अपने रूप के सब से बड़े प्रशंसक के रूप में ही जानती थी! मौसी को बाहर खड़े देखा तो झट से उसके पास पहुंच गई। मौसी ने देखा; बोली—तू तो मेरी सिखावन पर पानी फेर देगी इन्द्रा। अरी, जवानी भी तेज़ी से चलकर काट दी तो बुढ़ापा आने पर हाथ मलेगी। कितना कहा कि जवान लड़की अगर कामयाब होना चाहे तो ज़रा चाल को धीमा रखे। तुझे मैंने वह कहानी नहीं सुनाई क्या!

इन्द्रा ने मौसी के प्रति आदर दिखाते हुए पूछा—कौनसी मौसी?

मौसी बोली—अरी केसर और कस्तूरी की।

—ना मौसी—इन्द्रा अज्ञ बनी रही।

मौसी ने कहा—

तो सुन लो। दो बहनें थीं। एक केसर और दूसरी कस्तूरी। एक से एक बढ़ी-चढ़ी। किसे कम कहें, किसे ज़्यादा! पर कस्तूरी थी कि हिरनी सी दौड़ी फिरे थी, कुलांचे मारती हुई; कभी यहां तो कभी वहां। और केसर चलती हुई भी थमे हुए पानी सी लगे थी। थीं तो गरीब की बेटियां, पर सुंदरता की शोहरत राजमहलों में पहुंच गई। राजकुमार ने सुना। जिस रूप की चर्चा इतनी प्यारी, वह भला अपने-आप में कैसा होगा! बस निकल पड़ा तलाश में। भाभियों ने ताने मारे, 'कहां चले कुंवर जी! केसर-कस्तूरी को वरने?' पर राजकुमार क्यों रुके। निकल पड़ा ढूंढ़ने! पूछते-पूछते केसर-कस्तूरी के गांव आ पहुंचा। कोसों घोड़े पर चला आ रहा था। वह राज-कुमार नहीं लग रहा था। कपड़े-बाल सभी कुछ धूल से भरे थे। भूखा-प्यासा, थका मांदा। चेहरा कुछ का कुछ हो गया था। तभी उसके पास से कस्तूरी निकली। उसने राजकुमार की तरफ देखा ही नहीं। बस हिरनी सी बढ़ी चली। राजकुमार की नाक में उसके पसीने की गंध पहुंची। बिल्कुल कस्तूरी सी! समझ गया, यही कस्तूरी है। रूप ऐसा कि आंखें न टिकें। पर जब तक वह उसके बारे में तय करे वह कहीं की कहीं जा चुकी थी। कुमार ने सोचा, घोड़े पर चढ़कर पीछा करे। पर अब तो

उसकी गंध भी गायब हो गई थी ! कैसे ढूढ़े ? निरास हो गया। मन किया कि गले में फांसी लगा ले। क्या कहेगा भाभियों को। कस्तूरी मिली भी, पर मिली भी नहीं।

राजकुमार घोड़े की रास का फंदा गले में डाल ही रहा था कि उसे हवा में बड़ी प्यारी महक सुंघाई पड़ने लगी। उसने फंदा गले से निकाल लिया। महक धीरे-धीरे बढ़ रही थी। उसे लगा जैसे केसर की क्यारी हवा पर तिरती आ रही हो। तब तो जरूर होगी कस्तूरी की छोटी बहन केसर। राजकुमार वहीं आस लगाए रुका रहा। महक बढ़ती गई। उसके दिल की उमंगें भी बढ़ती गई। और तभी उसने देखा जैसे उसके पास से गंध का सोता बहता चला जा रहा हो, धीमे-धीमे ! उसने दौड़कर आंचल पकड़ लिया। घुटने टेककर प्यार प्रकट किया। केसर को किसी साधु ने बताया था कि देख तुझे बरने आएगा राजकुमार। मुख पर भिखारियों सी दीनता होगी, पर आंखों में चक्रवर्तियों सी चमक ! केसर को दोनों ही लक्षण दिखाई दिए उसमें। वह उसकी हो गई। राजकुमार केसर को लेकर महलों में लौटा तो भाभियां बासी फूल की महक सी छिप गई।

इतना कहकर मौसी ने बौराई सी इन्द्रा को गौर से देखकर पूछा--कुछ समझी ?

--बड़ी प्यारी कहानी है मौसी--इन्द्रा ने कहा।

मौसी थोड़ी खीज के साथ बोली--अरी कहानी पर मत जा। उसके मरम पर जा। बता, कहीं कस्तूरी राजकुमार को देखकर ठहर गई होती तो वह उसीसे ब्याह न कर लेता ?

--हां मौसी--इन्द्रा ने मौसी की बुद्धि का लोहा मानकर कहा।

मौसी कहती गई--तभी तो कहूं हूं ! जवानी के दिन चार ! कस्तूरी सी उड़ती रही तो क्वारी ही रह जाएगी। केसर सी चलाकर। जिससे देखने वालों की आंखें पीछे न छूट जाएं।

--मैंने गांठ बांध ली तुम्हारी बात, मौसी।--इन्द्रा ने कहा--अब कैसे चलती हूं देखना।

मौसी बोली—मेरी सिखावन मान ले तो बंबई की हीरोइनें तेरे आगे पानी भरें। अरी मोहने को खाली रूप ही नहीं, कुछ और भी चाहिए।...हां, तूने सुनी थी अभी वह हंसी ?

—किसकी हंसी मौसी ?—इन्द्रा ने पूछा।

मौसी ज़रा असहिष्णु स्वर में बोली—नागफनी की बाड़ की।

—नहीं मौसी ! बताओ भी—इन्द्रा ने अपनी गुरवानी को आत्मसमर्पण करते हुए आग्रह किया।

गुरवानी बोली—गांठ बांध ले। चारों तरफ की देख-सुनकर सीखा कर। तूने वह कहानी नहीं सुनी ?

—कौन सी कहानी मौसी ?—इन्द्रा का कुतूहल बढ़ा।

मौसी बोली—हवा और धूप की।

—सुनाओ न मौसी।—इन्द्रा ने हठ किया।

—फिर सुनना कभी।—मौसी ने कुतूहल बढ़ाने की टेकनिक का प्रयोग किया।

—नहीं मौसी !—इन्द्रा ने बारबार हठ की।

—अच्छा तो सुन !—मौसी ने बखान किया :

एक था राजा ! उसके थीं दो बेटियां। दोनों रूप वाली ! गुन वाली ! किसको सराहे किसको न सराहे। राजा के कोई बेटा न था। मंत्रियों ने कहा—महाराज एक शादी और कर लें ! कुल बढ़ाने और राज करने के लिए बेटा चाहिए ही। महाराज न माने, कहा—मेरा कुल मेरी बेटियों से बढ़ेगा। और राज भी करेगी बेटी। मंत्री चुप हो गए। कौन राजा से ज़िद करे ! गुस्सा आ जाए तो कुल का कुल कोल्हू में पिरवा दे। इसी तरह राजा का अंत समय आ गया। अब उन्हें चिन्ता हुई, राज किसको सौंपे। दोनों बेटियां प्यारी। पर राजा तो एक ही को सौंप सके था। मन में ठानी, परीक्षा ले। जो ज़्यादा गुणवती निकले उसीको राज-पाट देकर सरग सिधारे। राजा ने दोनों लाड़ली बेटियों को बुलवाया।

राजा के एक बाग था। दुनिया भर के फूल-पौधे, उसमें तरह-तरह की गंध वाले। उन्होंने दोनों बेटियों को प्यार की नजर से देखकर कहा—'तुम दोनों मेरे

इस बाग को तो ज़रा देखकर आओ। फिर मैं जो पूछूं बताओ। राजकुमारियों की समझ में रहस्य न आया। दोनों चलीं, खूबसूरत राजकुमारियां; उनसे भी मनोहर बाग। राजा ने कहा था जब घड़ियाल बोले तो लौट आना। राजा नें सोचा: गए काफी वक्त हुआ। हुकुम दिया कि घड़ियाल बजाओ। टन टन टन, घड़ियाल हहरा उठा। राजकुमारियों ने सुना। दौड़ी-दौड़ी आई पिता के पास। राजा ने बड़ी बेटी धूप को पास बुलाया। प्यार से सिर पर हाथ फेरा। पूछा—'देख आई बाग ?' 'हां महाराज।'—राजकुमारी ने कहा। राजा ने देखा उसमें पहले से कोई फर्क न लगा। पूछा—'कैसा लगा बाग ?' 'बड़ा प्यारा। ऐसा जैसा धरती पर कहीं नहीं होगा,' कुमारी ने कहा। राजा को अच्छा लगा, पर राजकुमारी तो बाग का कोई भी गुन सीखकर न आई थी। उन्होंने छोटी को बुलाया; हवा को। वह खिले फूल सी बगल में आकर खड़ी हो गई। उसके अंग-अंग से एक से एक बढ़कर महक आ रही थी। गुलाब की, चंपा की, केसर की, इलायची की, सोनजुही और मौलसिरी की। और भी जाने क्या-क्या। राजा मुग्ध हो गया। जब गई थी तो उसकी सांस में ऐसी महक कहां थी। पूछा—'बाग देख आई बेटी ?' 'हां पिताजी।'—छोटी ने कहा। 'कैसा लगा ?'—राजा ने फिर पूछा। राजकुमारी बोली—'मुझे सूंघकर पता नहीं चला पिताजी ?'

राजा निहाल हो गया। बोला—पता चल गया बेटी ! तू तो बाग के सारे गुन ले आई। तू जहां भी जाएगी वहां की सारी खूबियां बटोर लेगी। मैं खुश हुआ। मेरे बाद तू ही मेरी गद्दी पर बैठना।

...और हवा को राज मिल गया—मौसी ने कहा और पूछा—क्या समझी इन्द्रा ?

—यही कि हवा को राज मिल गया—इन्द्रा ने कहा।

मौसी चेली की मोटी अक्ल पर तरस खाकर बोली—अरी बावली, इसका मरम तो गहरा है। तुझे बताऊं हूं। धूप सी ना पसरी रहा कर। हवा से गुन सीख। आसपास जो गुन की बात हो उसे पकड़ ले।

इन्द्रा ने चमत्कृत होकर कहा—मौसी, तुमने तो सभी किताबें पढ़ रखीं हैं न।

मौसी हंसी। उसकी इस बात का जवाब न देकर बोली—हां तो हंसी थी वह जो इस खोली में आई है—नौ नंबर वाली में। भला कहीं नागफनी भी कभी हंसी? सच कहूं हूं ऐसी हंसी मैंने किसी भी फिल्म में किसी भी हीरोइन से नहीं सुनी। तू उससे ऐसी हंसी सीख ले तो प्रोडयूसर तेरे घर के चक्कर काटें।

—सच मौसी?—और इन्द्रा बड़े भद्दे ढंग से हंस पड़ी। मौसी के कान में जैसे नागफनी के कांटे गड़ गए। उन्हें मान लेना पड़ा कि नागफनी भी हंस सकती है।

इन्द्रा देखती रही और मौसी के मन में यह बात बैठती रही कि उसपर उसकी सारी मेहनत बेकार जाएगी। यह जो नई आई है अगर अपनी हंसी सी ही खूबसूरत और जवान हो तो क्यों न उसीको अपनी चेली बनाया जाए।

इन्द्रा मौसी से उस दिन का सबक लेकर लौट गई। उसे घर में भी लोग कम-अक्ल मानते हैं। पर उसे ऐसा मानने वालों की अक्ल पर ही शक रहा। मौसी उसे गुण की बात बताती रहे तो वह क्या नहीं कर सकती। यह गुलाब अपनी खूबसूरती के ही गुमान में रहती है। बहन हुई तो क्या! मुझसे खुद को हर बात में ज्यादा लगाती है। वह भी जान लेगी, जब न तो राजकुमार उसे मिलेगा और न राज।····

यह सोचती हुई वह जैसे ही खोली में घुसी तो दीवाल पर टंगे छोटे से शीशे के सामने खड़ी गुलाब ने पूछा—दीदी, मेरे बाल तो ठीक बने हैं न!

दीदी ने अपने महत्त्व को समझते हुए प्रश्न किया—किसके देखकर बनाए री ऐसे बाल

गुलाब ने कहा—किसीके नहीं दीदी। मन में आया कि ऐसे बनाऊं। बताओ तो कैसे लगे?

इन्द्रा के दिमाग पर तो मौसी की नसीहत हावी थी। बोली—तब क्या खाक अच्छे होंगे। आसपास की औरतों के बाल देखकर कुछ उनसे ही सीखा कर।

गुलाब उदास हो गई। उसकी समझ में दीदी की बात की तुक ही नहीं आई। पर कुछ और न पूछना ही उसने ठीक समझा।

इतने में मनुभाई भी रेवती की खोली से निकल आए। उन्होंने मौसी को देखा ही नहीं। बुढ़ापे में बहुत दिनों की बिछुड़ी बेटी को पाने की खुशी से जो भरे थे। मौसी को इसमें अपनी उपेक्षा लगी। इससे पहले तो वे उसके सामने से बिना बात

किए बड़े ही नहीं थे। पर इस उपेक्षा में भी वह बिना टोके न रह सकी। बोली—सेठ, पुराने किराएदारों को तो, लगता है, भूल ही गए !

मनुभाई आवाज सुनकर ठिठके । फिर झेंप के साथ हंसते हुए बोले—कहो मौसी, कैसी हो !

मौसी तो वैसे ही खाक हुई बैठी थी। तपाक से बोली—देखो सेठ, तुम मुझे मौसी मत कहा करो। अभी तो मैं····

······जवान हूं !—अचानक किसीने कहा। मौसीने घूमकर देखा। गाडगिल था । मौसी का क्षोभ छिपा न रह सका । गाडगिल उसकी बौखलाहट पर खीसें निपोरता रहा। मौसी उबलने जा रही थी कि उसकी सहज बुद्धि ने साथ दिया। बनावटी स्वर में बोली—यह तो मेरा देवर ही समझो। बिना मज़ाक के बात ही नहीं करता।

गाडगिल ने फिर रद्दा जमाया—वाह, मौसी ! मेरी भाभी तो अभी सचमुच जवान है।

मौसी को अब कोई जवाब न सूझा। मनुभाई, चुपचाप वहां से खिसक गए। गाडगिल की नज़र गुलाब पर पड़ गई। उसने भी मौसी का पिंड छोड़ा।

रेवती को जीवन का एक नया आधार मिल गया—मनुभाई, वाड़ी भर के सेठ, पर उसके बापू ! लखनऊ का घर याद आता । चन्द्रकांत याद आते। मोटी मिसरानी याद आती। मां-बाप याद आते। भग्गू जयंत की याद आती। पहले ही जैसा अब भी याद आता । खीज भी आती। तपन भी होती ! वैसा ही लक्ष्य-हीन सा जीवन। किसलिए जिए ! मरे भी तो क्यों मरे ! उसके एक दिन में दूसरे दिन से क्या अन्तर ! उसकी समझ में कुछ नहीं आता ! फिर भी बापू का स्नेह बहुत कुछ अर्थ रखता। बापू ने एक बार भी तो नहीं पूछा कि बाबू क्यों चले गए ! तुम ही क्यों भटक रही हो ! क्या रहस्य है ! शायद वे सभी कुछ जानते हैं—रेवती को

लगता । मनुभाई की बूढी आखे उसे देखकर कुछ ऐसी पसीज सी उठती है कि कोई भी उन्हें देखकर कह देता कि ये आखें अजान नही ! उसका सारा दुःख-सुख जानती हैं जिसे देखकर गलने लगती है ।

उन्ही बापू के सहारे वह अपने मन के कोने से बाहर आने लगी । उसकी खोली के किवाड ताजी हवा के लिए खुले रहने लगे । पडोसियो को उसकी आवाज सुनाई पड़ने लगी, सूरत दीखने लगी । पर सब को वह अपने से इतनी अलग-अलग जान पड़ती कि उसकी ओर खिचकर भी लोग पास आते सहमते ।

एक दिन इसी तरह उसपर न्हाना भाई की नजर पड गई । उसे वह पूर्व परिचित-सी लगी । पर कहा देखा है, ध्यान न आया । दफ्तर से थका-मांदा लौटा था । दिमाग साथ ही नही दे रहा था । खोली मे आकर कपडे उतारे । चबूतरे पर बैठ-कर सुस्ताया । बदन को अगुलियों से रगड-रगडकर मैल की बत्तियां बनाता रहा । तीन रोज की बिन बनी दाढी के एकाध बाल को नोचा । कभी नाक को खुजाया, कभी कान को । पर मन एक रेवती मे ही पडा था । उसने बार-बार उसे उधर से हटाना चाहा । शक भी तो हो सकता है कही देखे का । वह क्यो सोचे उसके बारे में ! नही, सोचना पड़ेगा ही । वह सचमुच खूबसूरत है । इतनी खूबसूरत कि कोई उसके बारे मे सोचे बिना नही रह सकता ।

न्हाना भाई के अहंकार को चोट लगी । वह, और एक औरत के बारे में सोचे । पर वह सुन्दर है । भूलने वाला रूप उसने पाया ही नहीं । न्हाना मन ही मन झल्लाया · चलो सुन्दर ही सही । ऐसी ही सुन्दर सही कि देखने वाला खुद को भुला दे, पर उसे न भूल पाए । पर मुझे इस सब कुछ से क्या ! मैं उसे क्यों याद रखूं ! मुझे उसकी आवश्यकता ! 'वह तुम्हारी आखो को भी तो अच्छी लगती है ।' ···जाने कौन उसके मन मे बैठा यह सब शरारत कर रहा था । वह उठा । खोली मे लगे नल के पास गया, उसके नीचे बैठकर टूटी खोल दी ! चिपचिपे बदन पर निमासा सा पानी पडा । उसे अच्छा लगा, पानी पड़ता रहा । वह बदन मलता रहा । कितनी ही देर हो गई । इतनी देर तक तो वह कभी नल के नीचे बैठा ही नहीं । जुकाम का हमेशा डर लगा रहता । पर आज···। अचानक उसके मुह से निकला 'याद आ गया ।' यह कहते ही वह नल से उठा । खड़े होते ही टूटी सिर में लगी ।

सिर भन्ना गया। पर उसने उसकी परवाह नही की। टूटी से पानी गिरता रहा। वह तौलिए से बदन रगड़ता रहा। उसकी आखो मे चमक थी। 'हा वही! जरूर वही! बैंक वाली।' उसे खोए हुए धन के मिल जाने सी खुशी हो रही थी। उसी खुशी मे उसने बदन पोंछकर कपड़े भी पहन लिए। फिर बाहर चबूतरे पर आया। कुछ देर वही बैठा, फिर उठा, कुए की मन पर चला आया। मन पर उसने हाथ टेककर कुए मे झाका; नीम की लंबी भुजा को देखा; नागफनी की बाड़ को घूरा; आसमान में नजर डाली। सभी कुछ अच्छा लग रहा था। वह उसे जानता है। बस उससे मिलेगा और कहेगा : हा हा, मै आपसे पहले भी मिल चुका हू, बैंक मे। आप रुपया जमा कराने आई थी न। और उसके बाद एक बार निकालने भी। पर आप मुझे नहीं पहचानेंगी। मै तब ऊची कुर्सी पर बैठा था। बैंक की कुर्सी की टागें आदमी की टागों से भी लबी होती हैं। फिर आप ही बताइए कि लबी टांगो का क्या महत्त्व! आदमी क्यों अपनी लबाई पर इतराए। कुर्सी भी तो इतरा सकती है। या शुतुर्मुर्ग ही अपने को निराला समझे और यह बात ऊट भी जान जाए तो? जाने आदमी के दिमाग मे यह मामूली सी बात क्यों नही आती कि लंबा तो बांस भी होता है।····

···और वह जवाब देगी कि···न्हाना की चिंताधारा टूट गई। वह क्या कहेगी! वह क्यों कुछ कहने लगी। वह···उसे तभी ध्यान आया कि नल की टूटी उसके सिर में लगी थी। चट् से हाथ चोट पर गया। गुम्मड़ पड़ गया था। छूते ही दुख उठा। वह धीरे-धीरे उसे सहलाने लगा। हा, वह कुछ कहे ही क्यों! और मै ही क्यों उसके कहे पर ध्यान दू। वह सुन्दरता के अभिमान मे होगी। पर कै दिन की सुन्दरता! जरा बीमारी हो जाए, चेचक हो जाए, चोट लग जाए, कोई नाक दांत से ही काट ले, फिर कैसी लगे!

न्हाना का मन पुलकित होने लगा. बेकार की सुन्दरता बिगड़ते देर नही! फिर···न भी बिगडे तो हर कोई घूरे, हर कोई बुरी निगाह से देखे, हर कोई मन मे पाप रखकर बात करे, हर कोई बुरे ढग से सोचे। उफ, सुन्दरता या पाप! सड़क पर चलना दुश्वार! जाने कैसी-कैसी निगाहें पीछे पड़ी रहें।

उसने फिर कुएं की मन पर अपने छोटे-छोटे हाथ टेककर झांका। क्या दीखता

उस अंधेरे मे । एकाध तारे का प्रतिबिंब जरूर दिखाई दे गया । काश, उसका अपना मुह उसमें दिखाई दे जाता । और साथ मे उसका भी मुह--दोनो मुह साथ-साथ ।

'दोनों मुंह साथ-साथ ! '—मन के भीतर से कोई हंसा । उसे देखकर मुह बनाया । व्यग्य करता हुआ बोला : 'दोनों मुंह साथ-साथ ।' कोई उसे आत्महीनता से भरे डाल रहा था । कौन है वहां ! शायद वह खुद अपने-आप । उस सुन्दर मुंह के बारे मे सोचने वाला वह खुद । भद्दा मुह, भौंडा मुह । फिर भी चाहता है कि दोनों मुख साथ-साथ हों । 'साथ-साथ'—उसने बड़ी कटुता से खुद कहा । पर वह मुह उसकी आखो के आगे से नहीं हटा । वह तिलमिला उठा । उसके दोनो हाथ उठे और अपने ही गालो पर चपत बनकर पड गए । चपत जोर से पडी । मुह सुन्न हो गया । पर इससे उसकी हीनता उसकी अपनी ही आखो मे और बड़ी हो उठी । उसे लगा जैसे बाडी भर के लोग उसे देख रहे हैं । गाडगिल हंस रहा है । हंसते-हंसते कह रहा है, दो और। दो मेरी तरफ से । बड़े दिनो में तुम्हे ख्याल आया कि तुम इसी काबिल हो । मानते ही न थे । हा तो फिर लगाओ दो और । जरा कसके ।

'गाडगिल'—न्हाना ने चिल्लाना चाहा । वह हमेशा उसके बौनेपन पर हसता है । वह हमेशा उसके पास खड़ा होकर अपनी लंबाई पर गर्व करता है । पर न्हाना चिल्ला तक न सका । किसपर चिल्लाए । कोई हो तो, कोई हो तो । गाडगिल कहा । यह तो वही औरत है, वही मुह, वही मुस्कराहट, आखों मे वही जादू । पर मेरा पीछा क्यों नहीं छोड़ती ? क्यों मै सोचू उसके बारे में ? यह मन बडा पाजी है। इसे सजा मिलनी ही चाहिए । दो और । हा दो और । उसने गाडगिल को फिर-फिर कहते सुना : हां, न्हाना सेठ, जरा कसके । मेरी तरफ से । हां ऐसे । एक और । बिल्कुल ठीक, शाबास !

न्हाना ने अपने मुह को पीट लिया था । अचानक उसने सुना, वह चेहरा जो उसके मन को छोटा बना रहा था, बोल रहा था : न्हाना भाई ! क्यों सजा दे रहे हो अपने-आपको ? इस बेचारे मुह ने क्या बिगाडा तुम्हारा ?

न्हाना के मन में आया कि कहने वाले के मुंह पर चपतो की वर्षा कर दे, पर कैसे । उसके मुह तक तो उसके हाथ पहुच ही नहीं सकते । आत्महीनता ने उसे बींधकर रख दिया । उसे पहली बार अपने बौनेपन पर इस तरह ग्लानि हुई । वह

उस चेहरे पर एक चपत तक नहीं मार सकता। तो थूक ही दे। पर वह थूक वापिस आकर गिरेगा कहा! आसमान का थूका अपने मुह पर।

उसने फिर वही स्वर सुना—क्यों न्हाना भाई। इतने परेशान क्यों हो?

यह मन की आवाज न थी। न्हाना ने आखें फाड-फाडकर देखा। सचमुच ही वह थी। वही। उसने कुर्सी के सामने खुद को पीटा था। मन किया कि कुएं मे कूद पड़े। पर फिर उसीके सामने। कैसी पराजय। नही,नही। उसका दंभ सर्प सा फुफकारा। उसकी रीढ की हड्डी तनी। आंखों में कठोरता झलकी। आवाज खुश्क हुई। बोला—तुम कौन हो! मुझे कैसे जानती हो! मेरा नाम किसने बताया!

न्हाना ने यह व्यक्त करके कि वह उसे नही जानता। पर वह उसे जानती है अपने गर्व को पोसा। रेवती मुस्कराई। पर उसकी मुस्कान अंधियारे के झीने पर्दे को भी फाड न सकी। न्हाना देख ही न पाया होठो के विस्फार और मोतिया दातो की चमक को।

*रेवती बोली—तुम्हारा नाम बापू ने बताया। बापू ''ओह, तुम नही समझे,* वाडी के सेठ ने। पर तुम्हें मैं जानती तो उससे पहले से भी हूं।

न्हाना ने रूक्षता से कहा—पर मैं तो तुम्हे नही जानता। मैंने तो तुम्हे पहले कभी नही देखा?

रेवती उसी जादुई ढग से बोली—देखा है। बरबस भुलाना न चाहोगे तो शायद याद आ ही जाऊंगी खैर, मैंने तो तुम्हे बैंक मे देखा है, बैंक की उसी ऊची कुर्सी पर बैठे हुए देखा है।

बैंक की ऊंची कुर्सी। फिर भी इसने पहचान लिया। न्हाना को लगा कि वह रो पड़ेगा। वह इस औरत के आ रो पड़ेगा। जो इतनी खूबसूरत है और जिसकी तेज आखों से उसका बौनापन तब भी नहीं छिपा जबकि वह ऊंची टागों वाली कुर्सी पर बैठा था। क्या हर किसीको मैं वैसा ही दिखता हूं? मेरा बौनापन एक क्षण को भी नही छिपता! और इससे तो यह भी नही छिपा कि मैं अपने हाथों से *अपना मुह आप पीट रहा था।*

वह नही रो पाया, फिर कठोर हो चला, सामने खडी स्त्री के प्रति घृणा से भर उठा: यह मेरी कमजोरी को जानती है। मैं भी तो जानता हू। यह क्यों इतना

रुपया बैंक में होने पर भी यहां ठहरी है। इसमे जरूर रहस्य है, खोट है। यह ऊपर से, बाहर से भले ही सुन्दर हो···। पर भीतर से · मै इससे जरूर बदला लूंगा। मैं इसे बता दूंगा कि न्हाना कितना भयानक है। मुझे वह उपेक्षणीय नही मान सकती। वह जल्दी ही महसूस करेगी कि न्हाना का अपमान कितना महंगा है। मैं···मैं· ·

—क्या सोच रहे हो न्हाना भाई ?—रेवती ने कोमल मिठास के साथ पूछा।

न्हाना चुप ही रहा। वह फिर बोली—लो मैं बताऊं मै कौन हू ?

न्हाना फिर भी चुप रहा। उसीने कहा—बापू कहते थे कि तुम बडे अच्छे आदमी हो ! मैं तुमसे मिलना चाहती ही थी कि आज अचानक भेंट हो गई ! पर ताज्जुब कि तुम्हे मेरी याद अभी तक नहीं आई। मै तुमसे बैंक मे मिली थी। कुछ याद आया ?

न्हाना ने झूठ कहा—बैंक में देखी हुई शक्ल को याद रखना बडा मुश्किल है। जाने कितने लोग आते है रोज !

वह फिर भी सरलता से बोली—मैंने सोचा शायद औरतें कम ही आती होंगी। इसीसे तुम्हें याद हो आए। उस दिन तुम्हें ही तो मैंने अपना चेक भुनाने को दिया था।

न्हाना सख्त होता गया। अब वह नमने को तैयार न था। नम गया तो टूट जाएगा। उसके बौनेपन पर यह औरत फिर हंसेगी। उसने उसी रूक्षता से कहा—बड़ा मुश्किल है इस तरह पहचानना। हम लोग बैंक में शक्लें नहीं, चेक देखते है। फिर वहां आने वाले शक्लें दिखाने आते भी नही।

शायद यही बात कोई और कहता तो रेवती को चोट लगती। चन्द्रकांत, जयन्त कोई भी कहता तो वह विस्फोट कर बैठती। गाडगिल ही कह देता तो शायद चपत मार बैठती। पर यह तो न्हाना भाई कह रहा था। जिसकी ऊंचाई सात-आठ साल के बच्चे की सी है। जो हमेशा इतना ही बड़ा रहेगा। जिसमे इतना साहस कहा ही नहीं जा सकता कि रूपवती स्त्री का अपमान कर सके। जिसकी अनुचित बात बच्चे की सरलता या मूर्खता मे कही बात के अलावा कुछ नही। रेवती ने उसी कोमलता के साथ पूछा—सच, तुम चेहरा नही, चेक देखते हो ?

'हा'—उसने कहना चाहा। पर यह एक अक्षरी उत्तर उस तरह के प्रश्न के लिए बेहद कठिन था। वह चुप ही रहा।

रेवती ने फिर कहा। इस बार उसके स्वर में शरारत थी। न्हाना भाई कितने रुपए का चेक काटू कि तुम मेरा मुह देखना पसन्द करो ?

न्हाना पर अचरज का पहाड टूटा। अजीब औरत है, कितना आत्मविश्वास है। शायद रूप और धन का गर्व है। फिर भी उसकी विस्फारित आखे रेवती के चेहरे पर गड गई। रेवती तभी ठठाकर हस पडी—लो, तुमने मेरा चेहरा देख ही लिया। चेक की भी जरूरत नही पडी। अच्छा तो सुनो मेरा नाम रेवती है। याद रखना।

इतना कहकर वह चली गई। न्हाना भाई कितनी ही देर तक जहा का तहा खडा रहा। जैसे किसी बिजली के तार से चिपक गया हो।

रेवती···रेवती···रेवती·· न्हाना उस नाम को याद नही रखना चाहता था। इस नाम से जिस स्त्री का बोध होता था वह रूपगर्विता थी। रूप भी ऐसा कि न्हाना उपेक्षा न कर सके, खाली बैठे तो ध्यान आ ही जाए, नफरत करना चाहे तो लालच से भर उठे। रेवती···न्हाना उसकी तुलना मे छोटा साबित हुआ था। उसके मन के अहंकार मे कही दरार पड़ गई थी। जिस दरार से उसकी अपनी भी आखे उसकी हीनता को देख पाती। इस सब की जिम्मेदार थी रेवती। वह बदला लेगा उससे। बदला! पर कैसे ?···

उसने वह रात बड़ी परेशानी मे काटी। अगले दिन बेक मे भी हिसाब में बार-बार गलतिया की। जोड मिलाने के लिए उसे पाच के बाद भी रुकना पडा। पर उसकी समझ में नही आया कि कैसे बदला ले। जब देर शाम को बेंक से लौटा और बाडी में घुसा तो उसने तै किया कि रेवती की खोली की तरफ देखेगा तक नहीं। खोली ठीक रास्ते मे पडती है! पडा करे। रास्ते के सभी मकानों को तो वह नहीं

देखता फिरता। बाड़ी को पहुंचने वाली गली में वह घुसा। अपने निश्चय को फिर से दुहराया! आगे बढ़ा! नागफनी की बाड़ दिखाई दी। उसे देखते-देखते ही बांस के फाटक पर पहुंच गया। वहां से अन्दर घुसते ही कोई पचीस कदम पर बाएं हाथ खोली नम्बर नौ थी। उसके दिमाग में उसकी स्थिति उभर आई। उसने मन को आगाह किया। आंखों पर काबू रखने का आदेश दिया। बस बढ़ चला। बिना इधर-उधर देखे। पांच कदम, दस कदम, पन्द्रह कदम, बीस कदम, और'''कुछ कदम! पर अचानक आंखें बाएं को घूम ही गईं। जाके सीधी रेवती से टकराईं। खोली में लालटेन जल रही थी। बाहर चबूतरे पर खम्भे के सहारे खड़ी थी रेवती, अकेली। अंधेरे के कारण उसे ठीक से उसका मुख दिखाई भी नहीं दिया। फिर भी उसे लगा कि उसे देखकर वह मुस्कराई। उसकी वह मुस्कान उसके कलेजे में हीरे की कणी सी गड़ गई। उसने चट् से मुह घुमाया और कदम तेज किए! अब वह नही देखेगा। अचानक आवाज ने पावों को रोका—न्हाना भाई! बड़ी देर से लौटे आज।

उसे रुक जाना पड़ा। घूमकर उसकी तरफ देखना पड़ा। जबाब में कुछ कहना भी पड़ा—हां। काम में ईमानदारी बरतने वाले को देर-अबेर का ख्याल छोड़ना पड़ता ही है।

उसकी आवाज में रुखाई थी। अहं का दबा हुआ विस्फोट भी था। रेवती ने सुना। वह मुस्कराई। खम्भा छोड़कर जरा आगे बढ़ आई। दरवाजे से झांकती हुई लालटेन की रोशनी उसके मुह पर पड़ने लगी थी। उसीमें न्हाना ने देखा होंठों पर दमक बिखेरते हुए उसके दांतों को। वह मुस्कान से शब्दों को खिलाती हुई कह उठी—तब तो बड़ा तंग करते होंगे श्रीमती को। बेचारी जब भी यहां होती होगी। तो तुम्हारी ईमानदारी इन्तजार कराया करती होगी।

न्हाना अचानक ही दो-एक कदम बढ़ आया था। गम्भीर स्वर में बोला—यह मूर्खता मैंने की ही नहीं! ईमानदारी और औरत साथ-साथ नहीं रह सकती। इसी-लिए मैंने शादी की ही नहीं।

यह कहकर उसने समझा कि रेवती उसके इस प्रहार को संभाल ही नहीं पाएगी। पर उसे अचरज हुआ जब वह हंस पड़ी, जैसे घुंघरू बज उठे। कह उठी—सच कहा तुमने भाई। पुरुष पत्नी से ईमानदारी बरतकर जीए कैसे! उसे

अपने किए पर परदा डालने के लिए झूठ का आश्रय लेना पड़ता ही है।

न्हाना ने शह दी थी जो उल्टी उसपर पड गई। कोई जवाब सूझा ही नही। रेवती उसे राहत देती हुई बोली——थक गए होगे।

न्हाना ने कह दिया——'हां' और उससे छुट्टी पाने का मौका पाकर चल दिया।

खोली का ताला खोला। किवाड खोले। अन्दर आकर खिड़की खोली। धीरे-धीरे कपडे उतारे। पसीने की वदबू से भरी बनयाइन को उतारते वक्त उसने सास ही रोक ली। फिर एक तरफ को पडी कुर्सी पर बैठ गया, थका सा। पर थके क्यों? अभी तो उसे नहा-धोकर खाने की भी व्यवस्था करनी है। कभी बाहर खा लेता है। कभी स्टोव पर खुद ही कुछ बना लेता है। यह भी एक ही मुसीबत है। सहसा वह सोचने लगा काश जब वह दफ्तर से लौटता तो उसे खुद ताला न खोलना पडता। कोई उससे जूते-कपडे उतारने का अनुरोध करता। फिर नहाने को कहता। फिर खाने की जिद करता। बिस्तर तैयार मिलता। दफ्तर से लौटने पर उसे आराम करने के अलावा कुछ करने को रह ही न जाता। सब कुछ 'कोई' कर लिया करता।

'कोई'——रेवती की मूरत सामने आ खडी हुई। जैसे खम्भे के सहारे खडी उसीकी प्रतीक्षा कर रही है। देर से आने पर शिकायत कर रही है। ज्यादा मेहनत पड़ने पर बिगड़ रही है, और वह सब कुछ उसे अच्छा लग रहा है।

पर क्यो? उसे सुख की कामना हो ही क्यो? उफ, यह रेवती है या शैतान की चालबाजी। उसके मन के छिद्रो को बडा कर उसकी दृढ़ता की नीव को गिरा ही डालना चाहती है। उसे अपने सुख और आराम के लिए क्यों किसी दूसरे की आवश्यकता हो? क्यों वह अपने-आपको अधूरा समझे? अधूरी रेवती है जो खम्भे के सहारे चबूतरे पर खडी जाने किसकी प्रतीक्षा करती है।

तभी अहंकार ने सुझाया : उंह, किसकी प्रतीक्षा करेगी, प्रतीक्षा करने को है कौन? तभी न आते-जाते को छेडती है। कैसी औरत है! सब है, जवानी है, पैसा है——पर पडी है ऐसे खोली मे——अकेली। आई थी तो कोई साथ भी था; अब वह भी नहीं। ज़रूर कोई रहस्य है, या इसीमे खोट है।

इस विचार से न्हाना को बड़ी राहत मिली : हां खोट है। न्हाना स्वयं को उससे

हीन क्यों समझे। वह इज्जतदार है। कोई उसकी ओर अंगुली नहीं उठा सकता। पर यह रेवती'''हर कोई शक करेगा, हर कोई कुछ का कुछ सोचेगा।

यह सब कुछ सोचता हुआ वह टूटी खोलकर नहाने बैठ गया। शुरू में गरम-गरम पानी निकला। पर वह भी उसे अच्छा लगा। उसे एक ऐसा आधार मिल गया था जिससे रेवती बडी हीन साबित होती थी। उसकी थकान मिट गई। बदन पोंछकर उसने पाजामा पहना। गले में कुछ भी नहीं डाला। बाहर चबूतरे पर आया। इधर-उधर देखने लगा। वह चाहता था कि कोई दिखाई दे जिससे वह रेवती सम्बन्धी अपने निष्कर्षों को उद्घाटित करे। तभी उसने देखा सुन्दरम् अपनी खोली से बाहर निकला, तहमत पहने और नाक में सुघनी चढ़ाता हुआ। वह चट से उसकी तरफ बढा। पास जाकर बोला—कैसे हो सुन्दरम् !

—ठीक !—सुन्दरम् ने छोटा सा जवाब दिया।

—क्या बना रहे हो आजकल ?—उसने पूछा।

—कुछ खास नहीं।—उत्तर दिया।

न्हाना ने सुझाव दिया—फिल्म-कम्पनियों के पोस्टर क्यों नहीं बनाते, जो कुछ कमाई भी हो।

सुन्दरम् चबूतरे से उतर आया था। बोला—न्हाना भाई, आर्ट से कमाई कैसी ?

न्हाना बोला—सुनता हूं विलायत में तो एक-एक तस्वीर पर सैकडों-सैकडों पौंड मिल जाते हैं। वहां आर्टिस्ट खूब कमाता है।

सुन्दरम् ने बताया—बात सच भी है और नहीं भी। वहां आर्ट का एप्रीसिएशन है। इसीसे एक तस्वीर के सैकड़ों पौंड मिल जाते हैं। पर कोई आर्टिस्ट उन पौंडों के लिए नहीं बनाता तस्वीर। यही फर्क है। जब वह पौंडों के लिए बनाएगा, आर्ट बाजारू हो जाएगा, मिट जाएगा।

न्हाना को उसकी बात जमी नहीं। कह दिया—तुम तो फिलास्फी बोलते हो सुन्दरम्।

सुन्दरम् निरीह सी हंसी हंसा—कुछ भी कह लो। लोग जिस बात को समझते नहीं उसे फिलास्फी कहते हैं। पर मैं तो हर आइडिया में फिलास्फी मानता हूं। आर्ट की

भी एक फिलास्फी ! इसी तरह जिन्दगी की भी एक फिलास्फी होती है। न जानते हुए भी हर आदमी की अपनी अलग ही एक फिलास्फी होती है।

न्हाना ने यहां विषय को मोड़ दिया। बोला---ठीक कहते हो ! हर आदमी की फिलास्फी अलग ही होती है। कभी वह समझ मे ही नहीं आती। मेरी समझ मे इस रेवती की फिलास्फी नहीं आती।

---रेवती कौन ?---सुन्दरम् समझ तो गया था, फिर भी पूछा।

---अरे वही, नौ नम्बर वाली नई किरायेदार।---न्हाना बड़प्पन के साथ बोला।

—हू।---सुन्दरम् के मुह से धीरे से निकला।

न्हाना अपने मन्तव्य पर आया---जाने कहां से आई है, खूबसूरत है। जवान है, पैसा भी है। फिर भी अकेली, और रहने को ली यह खोली ! भला इतनी खूबसूरत औरत को किसी बात की कमी हो सकती है ! फिर भी जाने क्यो मनुभाई की वाडी पसन्द आई।

सुन्दरम् का कुतूहल कुछ-कुछ जागा---सुन्दर, जवान और साथ ही अकेली स्त्री की चर्चा हो तो क्यो न युवा मन उसमे रस ले। बोला---तुम क्या जानो कि पैसा है।

न्हाना ने बडे विश्वास के साथ कहा—मैं नहीं जानूगा तो कौन जानेगा। मेरे बैंक में भी तो जमा है, एक लॉकर भी ले रखा है। मुझे तो कुछ दाल में काला नजर आता है। कहे देता हू सुन्दरम् कि किसी दिन मनुभाई की वाड़ी अखबारो मे हेड लाइन बनकर छपेगी।

सुन्दरम् ने दलील दी---नही न्हाना भाई, ऐसी बात नही हो सकती। स्त्री के बारे में पुरुष जरूरत से ज्यादा खामखयाली रखते है। पता नही क्यो ? कोई जवान धनवान् पुरुष अकेला कही रहे तो किसीको कुछ गड़बड नजर नही आती, मगर स्त्री हो तो· · · · ·

न्हाना परास्त न हुआ। जिरह की---और अगर वही पैसे वाला युवक किसी ऐसी खोली में रहे तो ?

सुन्दरम् को लगा कि जरूर अजीब लगेगा। पर कहा कुछ नही। उसका

कलाकार एक सुन्दरी में कोई दोष देखने को तैयार न था। स्त्री कला की बड़ी भारी प्रेरणा है। कला कितनी भी यथार्थवादी हो जाए, सुन्दर स्त्री के महत्त्व का निषेध नही कर सकेगी। रूप को चित्रित करने वाली रेखाए कितनी भी बदल जाए पर रूप की व्यजना नही बदलेगी। वह सोचने लगा चित्र के लिए विषय अच्छा है। सुन्दर है, युवती है। बाह्य सौन्दर्य की शर्त पूरी हो गई। पर पैसा भी होने पर अकेली है। जवान होने पर भी अकेली है। सुन्दर होने पर भी अकेली है। इससे उस सौन्दर्य मे एक अनूठे भाव की व्यञ्जना आएगी।

न्हाना ने टोका—क्या सोचने लगे ?

——कुछ नही !——सुन्दरम् ने रूक्ष-सा उत्तर दे दिया।

न्हाना मुस्कराकर चलने लगा। चलते-चलते बोला— सोचो, पर चित्र बनाने की न सोचना।

पर वहा से हटते ही न्हाना को निराशा हुई। वह सुन्दरम् से जैसी प्रतिक्रिया की आशा करता था नही मिली। उसने अपने-आपको समझाया भी——बेवकूफ है। जरा ब्रुश चलाना आगया तो खुद को बड़ा निराला समझने लगा।

पर बुद्धि को भरमाने वाला मन कैसे इस तरह बहकावे मे आ जाए। न्हाना का मन असन्तोष से ही भरा रहा। न्हाना धीरे-धीरे चलता हुआ मौसी की खोली के पास पहुच गया। मौसी अन्दर थी, पर आवाज सुनाई दे रही थी। किसीसे बात कर रही थी। दूसरी आवाज ने भी कुछ कहा। वह इन्द्रा थी। न्हाना भाई रुक गया। मौसी उसकी योजना को सफल बनाएगी। यह इन्द्रा भी सहायक होगी। उसने आवाज दी—मौसी, अन्दर हो ?

—कौन, न्हाना भाई ? आओ !——मौसी ने ही पुकारा।

न्हाना चट अन्दर दाखिल हो गया। मौसी बोली——बैठो, कैसे भूल पडे। मौसी की किस काम मे जरूरत पड आई।

मौसी बोल रही थी और इन्द्रा उसे देखकर हस रही थी। न्हाना भीतर-भीतर ही सिकुडता जा रहा था। पर रेवती से बदला लेने की भावना कुछ ऐसी प्रबल थी कि उसने इन्द्रा की हसी की भी उपेक्षा कर दी। बोला—कुछ नही मौसी। आज मन नही लग रहा था। सोचा दो मिनट मौसी से ही बाते कर आऊ !

मौसी मुस्कराई--मौसी के पास हर किसीका मन लगाने की दवा है। बोल, तेरे लिए भी कुछ करूं ?

न्हाना उत्तर दे भी नही पाया था कि मौसी के बात के संकेत पर इन्द्रा हंस पड़ी। न्हाना खीझ उठा। फिर भी ऊपर से मुस्कराया। उसने कहा--तुम तो जानती हो मौसी कि वह सब कुछ मुझे पसन्द ही नही।

मौसी बोली--आज तक यह किसीने नही कहा कि मुझे पसन्द है। हां तो बता कुछ करूं ? अगर यह सोचता हो कि तेरी जोड़ी मौसी नहीं बिठा सकती तो वैसा कह। सच कहू हूं। इतनी फिल्म कम्पनियो को हीरोइने दी है तो क्या तुझे एक दुलहिन भी नही दे सकती।

इन्द्रा ने मजाक किया—मौसी, अपनी वह नई किरायेदारिन है न। क्या नाम, रेवती। उससे रचा दो ब्याह। वह अकेली से दुकेली हो जाएगी और न्हाना भाई को सुन्दर सी दुलहिन मिल जाएगी।

इस बार न्हाना को इन्द्रा का मजाक अच्छा लगा। इससे उसे मन की बात कहने का अवसर मिल गया। अन्यथा आते ही बातो का रुख कुछ ऐसा हो गया था कि उसे भागने की नौबत आ गई थी। बोला--मौसी अपनी उस सुन्दरी को सोने से तोल के भी दो तो न लू। न्हाना गरीब है तो क्या, इज्जत है। पर वह औरत बैंक मे हजारो रुपया रखने पर भी क्या इज्जतदार कहलाएगी !

मौसी चौकी--क्या कहे है न्हाना। बैंक मे हजारों है उसका।

—हां मौसी !--न्हाना ने जोर देकर कहा--मेरे ही बैंक में। और लॉकर भी है।

--लॉकर क्या रे--मौसी ने पूछा !

—उसमे उसके जेवर है, जेवर। बैंक मे रखती है जेवर—न्हाना ने कहा।

मौसी को तो यकीन नहीं हो रहा था। बोली—मजाक तो नहीं करे हो।

—तुम्हारी कसम मौसी !--न्हाना बोला--मजाक और वह भी मौसी से। बस जान लो मौसी कि बाड़ी में कोई गुल खिलने वाला है।

—गुल !--मौसी ने धीमे से दुहराया।

—अच्छा चलो मौसी !—न्हागा ने कहा और मौसी के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही चला गया। उसने मौसी के दिमाग में गुल ही खिला दिया था।

बापू आते और रेवती बच्ची बन जाती। तरह-तरह की बातें करती, खुश हो लेती। उसका मन बदल जाता। उनके चले जाने के कुछ देर बाद तक बहली रहती, फिर सूनी हो उठती। जीवन मे जो दो घड़ी भी मिला उसकी भी याद आने लगती। भग्गू जयन्त, जिसने उसे परदेश मे छोड़ा उसकी भी याद आती। चन्द्रकान्त, जिसने उसके जीवन से एक बहुत बड़े सुख और स्वाभिमान को निकाल लिया उसे भी नही भूल पाती। और आज तो उसकी याद आने का विशेष कारण है। अचानक ही उसे अटैची की जेब में से पचीस हजार रुपये का एक चैक मिल गया। चैक उसीके नाम था। और काटने वाला था चन्द्रकान्त। साथ मे एक पत्र भी था। उसने पढ़ा—

"मुझे जाने क्यो लगता है कि तुम मुझे छोड ही जाओगी। इस विचार से दुःख जरूर होता है, पर बुरा नही मानता। कारण कि अगर तुम मुझे छोडोगी तो मेरे ही अपराध के कारण। ईश्वर ने मुझपर इतनी दया तो की है कि अपने अपराध को समझ सकता हू। मैं यह भी देख रहा हू कि जयन्त का संपर्क तुम्हें सुख देता है। मैं चाहता हू कि तुम्हारा सुख बढ़े। जयन्त, मुझे अच्छा लगता है। तुम दोनों साथ रहो तो मुझे कोई गिला नहीं। पर लगता है कि मुझे तुम दोनो ही छोड़ जाओगे। मैंने उस दिन कुछ कहने की हिम्मत की थी। पर तुमने सत्य को स्वीकारना अपना अपमान समझा। बिगड उठी थी। शायद कहीं ठीक था। जो हो, मैंने २५ हजार का एक चैक रख दिया है। तुम्हे कभी जरूरत पड़ सकती है। इसे काम मे ले लेना। इसके अलावा भी जरूरत पड़े तो मुझे लिखने में संकोच न करना। मुझसे कभी कुछ मागोगी तो उसे मै अपना सौभाग्य समझूंगा। और कुछ नहीं तो इसी तरह काम आ सकू तो बहुत। देखो, इस चैक को अस्वीकार न करना।"

रेवती ने पत्र पढ़ा। पढ़कर मध्याह्न के बालू सी तप उठी। उसे लगा कि उसके दुर्भाग्य का मूल्य आंका जा रहा है। उसे पैसे से मिटाने का प्रयत्न करके उसका उपहास किया जा रहा है। यदि धन से सभी कुछ खरीदा जा सकता, सभी कुछ मिल सकता तो वह घर छोड़कर क्यों भागती ?

वह चैक उसे दया का दान सा लगा। दया भी उस व्यक्ति की जो उसके जीवन में धूमकेतु बनकर आया, जो उसकी उमंगों पर पाला बनकर पड़ गया। नहीं चाहिए उसे उसकी दया। उससे उसे नफरत है नफरत ! उसने चैक को मुट्ठी में मसोस लिया, फिर फाड़ने जा ही रही थी कि किसीका दीन स्वर सुनाई पड़ा : देखो इस चैक को अस्वीकार न करना।

अरे इसमें तो अनुरोध है, प्रार्थना है, विनय है ! वह जानता है कि मैं शायद इसे स्वीकार न करूं। उफ चन्द्र, तुम इतने दीन बनकर मत आया करो मेरे सामने। मैं तुम्हारी इन आंखों के आर्तनाद को नहीं सह पाती। तुम थोड़े से कठोर बन जाते तो मैं तुम्हारे मुँह पर थूककर आती। पर...उफ, मत सताओ। मैं जानती हूं तुम भी तो दई-मारे हो। ईश्वर ने तुम्हारे समस्त सुखों को एक छोटी सी असमर्थता देकर जैसे सील ही दिया। पर यह तो बताओ कि क्या धन से अपना वह अभाव भर पाए। नहीं न ! तो मुझे धन देकर क्यों बहलाते हो ?

रेवती करुणा-विगलित हो उठी। पर अन्तर में दहन इतना प्रबल था कि आंसू भाप बनकर उठते रहे। आंखों के रोए तक भीगने न पाए।

उसने चेक और पत्र को यथास्थान रख दिया था। उसके जीवन में दो पुरुष आए, दोनों कैसे ! एक तो हां, पुरुष ही नहीं था, दूसरा पौरुषहीन। पर एक मेरे साथ तब भी खड़ा होने को तैयार है जब मैं उसे छोड़कर चली आई हूं। और दूसरा, उफ, नल सा भाग गया। मेरे जीवन के आवरण को चीरकर भाग गया। जयन्त... तुमने यह क्या किया ? मैं तुम्हें दुनिया का सब से सुखी पुरुष बनाने का स्वप्न देख रही थी पर तूने तो मुझे दुनिया की सब से दुखियारी औरत बनाकर छोड़ दिया।......

रेवती ने चाहा कि उस कायर जयन्त पर रोष करे, पर नहीं कर पाई। जो आंसू चन्द्र की दीनता पर नहीं छलकते थे वे उसकी बेवफाई पर टूट पड़ना चाहते

थे—ग्राह, देखो न, मै रो रही हू। जयन्त, तुम्हारे लिए ही रो रही हू। तुम्हें भागना ही था तो मेरे जीवन में क्यो ग्राए ? उफ जयन्त।···जयन्त·· प्या···

नही कह पाई पूरा शब्द। रो पडी। घुटनो मे मुंह छिपाए रोती रही।

तभी बापू ने बाहर से ग्रावाज़ दी—ग्राराम कर रही हो बिटिया ?

रेवती ने चट् से ग्रासू पोंछे। स्वर को साफ किया। बोली—ग्राग्रो बापू।

पर स्वर रुदन से पसीना जो हो चला था तो पूरी तरह साफ भी नही हुग्रा। मनुभाई से छिपा ही नही कि ग्रावाज देने के पूर्व वह क्या कर रही थी। मनुभाई उसके पास ग्राकर बैठ गए ग्रौर ममता से भरकर बोले—ग्ररी, तुझे भी रोना ग्रा जाता है !

—कहां बापू !—रेवती ने कहा।

वे विदग्ध सी हसी हसे—ग्रभी छिपाने मे कच्ची है। भीतर के हाहाकार की ग्राग पर तब तक राख नही छाती, जब तक कि वह जीवन को ही छार नही कर देता। ग्रभी नही छिपेंगे ये ग्रांसू ! कभी-कभी मनुभाई को ही ये दगा दे जाते है। इस उम्र मे भी हार जाता हू।

रेवती ने चकित होकर पूछा—तुम भी रोते हो बापू ?

—धत् पगली !—मनुभाई सफेद मूंछों को फरकाते हुए बोले—ग्रब रोने को क्या बाकी है री !

—कभी तो रहा होगा बापू !—रेवती न मानी।

बापू ने कहा—तब रो लेता हूंगा। पर ग्रब तो याद नहीं।

रेवती लाडली बेटी सी बोली—झूठ बोलते हो बापू ! भला कही ग्रासू भी भुलाए जा सकते है !

—क्यों नहीं। जरूर भुलाए जा सकते है। उन यादगारो को बेहोश करने के लिए सुख का क्लोरोफार्म चाहिए—बापू ने कहा।

रेवती ने प्रश्न किया—ग्राप सुख को क्लोरोफार्म समझते है बापू !

मनुभाई एक क्षण चुप रहे। फिर गम्भीर स्वर मे बोले—पता नही क्या मानता हूं ग्रौर क्या नही मानता। पर सुख में एक नशा जरूर है। बेहोशी का ग्रसर जरूर रखता है। वह खुद को ग्रौर ग्रपने बनाने वाले तक को भूल जाता है। तभी शायद

ज्ञानी लोग कहते है कि दुखी परमात्मा के अधिक करीब होता है ।

रेवती को विवाह के बाद के अपने जीवन के सभी दिन याद आए। वह सुखी कहा थी, पर परमात्मा को ही उसने अपने करीब कहां पाया ! वह तो ऐसे सदा क्रूर और विपरीत लगा। उसने तर्क किया—उस भगवान् का प्यारा बनने की जरूरत ही क्या बापू, जो सुख को सह नही सकता।

मनुभाई करुणा से भरकर बोले—नहीं समझेगी बिटिया। कभी नही समझेगी। तर्क की चीज नहीं, समझने की बात है। अनुभूति की बात है। आप समझेगी जब भगवान् की दी हुई पीडाओं मे उनकी करुणा देखेगी, सुखी आदमी तो सोए हुए की तरह है। मैंने एक संन्यासी से सुना था—जागरित का सुख चाहो। 'जागरित' उन्होंने समझाया भी था। कुछ जरूरी बातें बताई थीं। मुझे सब याद नही। मैंने तो बस इतना जान लिया था कि जागते हुए का सुख चाहो। तुझे समझा नही पाऊंगा बिटिया। पर महसूस करता हू कि सोते हुए के सुख और जागते हुए के सुख मे बडा अन्तर है। सोए हुए का सुख जागने पर मिट जाएगा। जागते हुए का सुख सोने पर भी बना रहेगा।

—मेरी समझ मे नही आता बापू !—रेवती ने फिर-फिर यही कहा।

बापू बोले—मत समझने की कोशिश करो अभी। हर चीज का एक वक्त होता है। तब आप सब कुछ समझ मे आ जाता है। जिसने दिन देखा ही नही वह कैसे समझेगा। कितना ही समझाओ कि दिन ऐसा होता है, ऐसा होता है, वह उसे पकड़ नही पाएगा। उल्टे अविश्वास करेगा कि इतना सारा अधेरा कहा गायब हो जाता है।

इतना कहकर बापू चुप हो गए। रेवती भी चुप रही। मौन छा गया। समय बीतते हुए क्षणो के साथ दीर्घ होने लगा। रेवती जमीन मे आंखे गडाए थी। बहुत सारी चींटिया किसी मरे हुए मकोड़े को खींचे लिए जा रही थी। मनुभाई की टक-टकी दीवालो की संधि पर लगी थी। वहां एक कोने मे कोई मकडी अपना जाला बुनने मे व्यस्त थी। पर दोनों मे से कोई बोला कुछ नहीं।

फिर मनुभाई ने ही मौन तोडा—हां सुनो, मै एक बात कहने आया था। यह न्हाना है न। बडा पाजी है। मै नही जानता था कि इसमें इतना जहर है। तुम्हारे

बारे में न जाने क्या-क्या बकता फिर रहा है।

—न्हाना ?—रेवती के होंठों की मुस्कान खिल उठी। न्हाना, भला वह भी कोई डरने की चीज़। न्हाना, उसका मन करता है कि वह उससे छेडकानी ही करती रहे। सोचते-सोचते मुस्कान हंसी बन गई। वह खिलखिला उठी।

—क्यों, हंसी क्यों !—मनुभाई ने पूछा।

वह उसी तरह हंसती हुई बोली—मुझे वह अच्छा लगता है। क्या कहता है भला मेरे बारे में !

मनुभाई बोले—यही कि तुम्हारा हज़ारों रुपया बैंक में है। जेवर भी जमा है। बडी पैसे वाली हो। वाडी भर के लोगों को कहता फिर रहा है।

—सच तो कहता है !—रेवती ने कुछ गम्भीरता से कहा।

मनुभाई को यकीन नहीं आया—मुझसे तो मजाक न करो। लगता है तुमने ही उसे बरगला रखा है !

—नहीं बापू !—मैंने कुछ नहीं बताया। इत्तफाक से उसीके बैंक में रुपया जमा है, इसीलिए वह जानता भी है।—रेवती बोली।

मनुभाई कुछ देर मौन रहे। उनकी आखें उसके हाथ की हीरे की अंगूठी पर जा जमी। सोने की चूड़ियां अभी भी कलाई से लिपटी थी। उन्होंने भी मान लिया कि न्हाना का प्रचार झूठा नहीं। फिर रेवती भी तो इन्कार नहीं करती। पर रेवती बच्ची है। नहीं समझती। बोले—ठीक है, ईश्वर ने दिया है तो क्यों न हो। पर तुम्हें फिर भी ऐसे प्रचार का विरोध करना चाहिए।

—क्यों !—रेवती फिर मुस्करा उठी थी।

मनुभाई बोले—इसलिए कि लोगों को दस तरह की भली-बुरी बातें कहने और सोचने का मौका मिलता है।

—जैसे !—रेवती अब भी मुस्करा रही थी।

—यही कि इतना पैसा होने पर भी तुम ऐसी जगह में रहती हो तो जरूर कोई राज है—मनुभाई ने कोने के जाले की तरफ देखते हुए कहा।

रेवती की मुस्कान खो गई। स्वर गम्भीर हो गया। बोली—तुम भी यही मानते हो बापू !

कहते न कहते स्वर की गम्भीरता पर दर्द की पुट चढ गई। मनुभाई सिहर उठे। पर उसकी तरफ देखने का साहस न कर सके। जाले पर से निगाह छत की खपरैल पर जा डटी—मैं, मैं क्यो वैसा मानता बिटिया ! दूसरो से तेरी खुशहाली सही नही जाएगी। मैं तो उसकी मनौती मानता हू।

रेवती ने फिर कहा—पर बापू, तुम्हारे मन मे मेरे बारे मे कभी कोई कुतूहल नहीं होता ? कुछ और जानने की इच्छा नहीं होती ?

बापू की दृष्टि नीचे उतर आई। रेवती की डबडबाई आंखो मे डूब गई। जैसे किसी बडी गहराई से बोले—अपनों को ऐसा कभी नही होता बिटिया। जहा परायापन है वही यह कुतूहल है। मेरे बारे मे भी तो लोग अटकल लगाया करते हैं। और शक किया करते है कि इतना पैसा होने पर भी इस तरह क्यों रहता हू। पर तुमने तो कभी नही कुछ जानना चाहा।...

मनुभाई बोलते-बोलते थमे। रेवती की आखें निर्मल होने लगी थी। उनमें उन्हे अपनी बात का स्पष्ट स्वीकार मिला और दृढ़ता से बोले—नही जानना चाहा, पर क्यो ? क्योंकि परायापन हम लोगों के बीच में आया ही नही।

बापू !—रेवती के रोम-रोम ने पुकारना चाहा। पर जीभ न हिली।

मनुभाई उठ खड़े हुए—अच्छा तो चलू। हा, इस पाजी न्हाना को ज्यादा मुंह न लगाना।

रेवती फिर मुस्करा उठी—मुझे उसपर दया आती है।

—क्यो ?—मनुभाई प्रश्न कर बैठे।

वह बोली—ईश्वर ने उसके साथ कंजूसी की है। वह तो दईमारा है।

—दईमारा !—मनुभाई अनायास ही दोहरा गए।

उसकी गूज रेवती के मन में घुमड उठी। दईमारा : चन्द्रकान्त सामने आ खड़ा हुआ। पर दोनो में अन्तर है। चन्द्रकान्त मे प्रतिक्रिया की भावना नही; वह बहते हुए जल की तरह है।

मनुभाई पूछ रहे थे—पर उसे तुमसे चिढ क्यो है ? तुमने आखिर बिगाड़ा क्या उसका ?

रेवती ने मनुभाई को सूचित करते हुए कहा—हा, याद आया। एक बार वन

अकेले में अपने मुह पर चपत लगा रहा था। मैं वहा जाने कैसे पहुच गई थी। शायद वह इसीसे मुझे माफ नही कर पाता।

——वाह! पर क्यों!—मनुभाई ने जैसे अपने-आपसे ही मुखर प्रश्न किया। रेवती चुप रही।

सुबह ही था कि इन्द्रा की मा आ धमकी। रेवती उसे जानती तक न थी, पर इससे क्या! उसने बताया कि मैं आपकी पड़ोसिन ही हू, एक गरीब दुखियारी। सिंध मे सब कुछ था : पक्का मकान, कारबार, पैसा। यहा कुछ भी नही।

रेवती ने आदर से बैठाया। बंटवारे से लोगों को क्या-क्या मुसीबतें भोगनी पड़ी हैं वह भी जानती थी। उन मुसीबतो को बढा-चढाकर नही कहा जा सकता, यह भी वह मानती थी। पर जाने क्यो इन्द्रा की मा से उसे सहानुभूति नही हुई। बैठने को कहकर भी वह चुप ही रही। इन्द्रा की मां ने ही कहा——दो-दो जवान बेटिया हैं, इन्द्रा और गुलाब। एक बेटा, नवाब। हा, नवाब ही समझो। बचपन मे प्यार से कहते थे, बडा हुआ तो वैसी ही आदतें बन गई; आजकल बेकार है, छोटे काम को हाथ नही लगाता और बड़े को बड़ा नही समझता। फिर काम भी रखा कहा। और उसके बाप, उन्हें क्या कहूं! जाने क्या करते हैं! क्या नहीं करते है! दिन भर धक्के खाते फिरते है। कहीं से कुछ ले आते हैं, उसीसे गुजर हो जाती है।

रेवती को कुछ कहना ही पड़ा : बडी मुसीबत मे है आप!

इन्द्रा की मा बोली—आपकी दया हो जाए तो मुसीबत, मुसीबत न रहे।

रेवती चौंकी——मेरी दया।

इन्द्रा की मां ने अनुनय से कहा—मैं आपकी रोटिया बना दिया करूंगी। इन्द्रा-गुलाब जो आप कहेंगी, कर दिया करेंगी। बाहर का काम इन्द्रा का बाप कर लाया करेगा। आपको आराम हो जाएगा; हमे काम मिल जाएगा।

रेवती मुस्कराई—मुझ अकेली के पास घर भर के लिए काम कहां, फिर

भी तुम्हारे जैसी ही मुसीबत की मारी हूं।

पर इन्द्रा की मा न मानी—आप तो रानियो का सा रूप और वैसा ही भाग्य लेकर आई है! हम अभागो मे क्यो अपनी बराबरी करके खुद को छोटा करती हैं!

रेवती कुछ गभीर हुई। फिर थोडी सी कोमल होकर बोली—अभी जरूरत नही। होगी तो मै बता दूगी। मुझे अभी माफ करो।

इन्द्रा की मा ने उस समय ज्यादा बात बढाना ठीक नही समझा। वह चली गई। पर थोडी ही देर मे इन्द्रा आ गई। आते ही बोली—मै इन्द्रा हू। मुझे मा ने भेजा है, कोई काम तो नहीं।

—बैठो!—रेवती बोली—बडी अच्छी है तुम्हारी मा। तुम आई तो मुझे खुशी हुई। सुना था बड़े शहर के पडोसी किसीके मरे-जिए की भी परवाह नही करते।

इन्द्रा को इसके बाद बात करने को कुछ नही सूझा। थोड़ी देर तक इधर-उधर ताकती रही। फिर रेवती को ही घूर-घूरकर देखने लगी। रेवती सकुचा गई। वह बेवकूफ की तरह कह बैठी—आप बड़ी सुन्दर है बीबीजी!

रेवती की कपोलपाली लाल हो गई। अपने से कई बरस छोटी एक लड़की कुछ कह रही थी। वह लाज के भवर से उबरी भी न थी कि वह कुछ और कह बैठी—मौसी से कहो न। वह तुम्हे फिल्म मे काम दिला देगी।

इसपर रेवती हंस पडी। हसी थमी तो पूछा—कौन सी है वे मौसी।

—अरे आप नही जानतीं?—उसे अचरज हुआ—आप मौसी तक को नही जानती? उन्हे सारी फिल्म कपनियो के मालिक जानते है।

रेवती ने मुस्कराकर कहा—पर मै तो किसी फिल्म कपनी की मालकिन नहीं।

—आपके दात बडे अच्छे है—इन्द्रा ने रेवती की मुस्कराहट मे झाककर कहा—आप जल्दी ही हीरोइन हो जाएगी।

रेवती ने पूछा—हीरोइन बन जाऊगी तो क्या होगा?

वह बोली—तब आपपर बहुत लोग मरा करेगे!

रेवती ने फिर कहा--पर मुझे उससे क्या फायदा होगा ?

—आप मजे करना !--इन्द्रा ने बड़े ही भद्दे ढंग से कहा।

रेवती जुगुप्सा से भर उठी।

कुछ देर तक इन्द्रा बातें करती रही। रेवती ने फिर उसकी बातों में योग नहीं दिया। हां-हूं करके अरुचि दिखाती रही। बस वह चली गई। रेवती ने राहत की सांस ली। उसके जाते ही उसने भीतर से दरवाजा बंद कर दिया। डर था उसके बाद कहीं गुलाब और गुलाब के बाद उसका भाई और फिर बाप न हालचाल पूछने आए। पर किवाड़ बंद किए ज्यादा देर न हुई थी कि किसीने बाहर से सांकल खड़खड़ाई। रेवती ने कान ही नहीं दिया। साकल और खड़की। साथ ही प्रौढ स्त्री-स्वर में किसीने पुकारा--रानी, अंदर हो तुम ?

'रानी' कुछ नया ही संबोधन था। साकल खड़क ही रही थी। रेवती को तंग आकर किवाड़ खोलने ही पड़े। सामने एक प्रौढ़ा थी : आंखों में काजल, मिस्सी से काले मसूड़े, होंठों पर कुटिलता। बोली—मैं मौसी हूं रानी।

रेवती बेहद झल्लाई हुई थी। कह दिया--मेरी मौसी तो कभी की मर चुकी।

कहकर रेवती खुद ही सन्न सी रह गई। मौसी सकपका गई थी; भंवें तनीं, माथे में बल पड़े, होंठ कठोर हुए, आंखों ने लपट सी छोड़ी। पर दूसरे ही, क्षण सब कुछ शांत था। आंखों में चमक थी। होंठ हंस रहे थे। मौसी कह रही थी—मैं तो जगत् मौसी हूं। मैं नहीं जल्दी से मरने वाली।

रेवती को उत्तर अच्छा लगा। स्वागत के स्वर में बोली--माफ करना मौसी, मैं समझी ही नहीं थी। आओ, बैठो।

मौसी बैठ गई। बोली—अच्छी तो हो।

—कृपा है, तुम्हारी मौसी।—रेवती ने कहा।

मौसी ने बात बढ़ाई--कृपा भगवान् की चाहिए। आज तुम्हारे पास इन्द्रा आई होगी। लौट के मेरे पास पहुंची। पहुंचते ही तुम्हारी तारीफों के पुल बांध दिए। रूप का बखान करने लगी। मैंने टोका। अरी, नजर न लगा दियो। पर वह क्यों माने। कहती ही गई कि हीरोइन बनने लायक है। मौसी हीरोइन बनवा दो न।

मैंने कहा, अरी रूप है तो हीरोइन बनना क्या बड़ी बात है। और मौसी की मदद की भी क्या जरूरत ! रूप की चांदनी तो आप ही फैले है। उसे भला तेल की बत्ती की थोड़े जरूरत। मौसी की जरूरत तो तुझे जिसे हजार बार सिखाने पर भी मुस्कराना तक नहीं आया।

मौसी का विषय भी इन्द्रा ही वाला था। पर कहने का ढंग कुछ और ही। रेवती को बुरा न लगा। मौसी की सूरत अच्छी न लगने पर भी बातें कुछ-कुछ मन को भाई थीं। बोली––मौसी, तुमसे मिलके बड़ी खुशी हुई।

मौसी ने कहा––तुम्हारी अपनी अच्छाई है रानी। सच कहूं हूं। मेरी तो आने की हिम्मत ही न हो रही थी। किसीने कहा कि पैसे वाली है नो नंबर वाली। मैंने कहा तब मौसी की नहीं पटेगी उससे। बाद में इन्द्रा ने बताया कि मौसी रानी को तो अभिमान छू भी नहीं गया। हंसे तो फूल खिलें। चलें तो अशर्फियां बनें। पर राम का नाम लो जो अपने को कुछ भी लगावे। बस सच मानो, फिर मुझसे रुका नहीं गया। सोचा काम था आराम से होओगी। फिर चलूं किसी वक्त। पर यह निगोड़ा मन न माना। इन्द्रा ने जैसा बताया था उससे बढ़कर ही पाया।

रेवती सकुचाकर बोली : तुम तो मौसी, लगता है किसीमें बुराई देखती ही नहीं।

मौसी बोली––ऐसी बात नहीं। बुराई भी देखूं हूं। बुराई मुझसे छिपती ही नहीं। अपनी एक-एक बुराई को जानूं हूं।

––तब तो मौसी, तुम बेहद अच्छी हो।––उस क्षण रेवती को उसके मिस्सी से काले मसूड़े भी अच्छे लगे।

––अच्छा तो मैं चली। मुझे उठाना हो तो बस मेरी झूठी तारीफ कर दो। अच्छा रानी, फिर आऊंगी। और हां, यह मत सोचियो कि इतनी बड़ी बंबई में अकेली हो। मौसी है तुम्हारे साथ। समझी ! ––मौसी ने कहा और रेवती के रोकने पर भी चल दी।

मौसी चली गई। रेवती कितनी ही देर बाद तक खुश रही। खुशी-खुशी बनाया, खाया और फिर लेटने चली गई। मौसी जैसे पास ही बैठी थी। पर ज्यों-ज्यों देर हुई, मौसी की बातों की गूंज धीमी पड़-पड़कर मिटती गई। रह गई मिस्सी और

काजल लगाने वाली प्रौढा। उसकी वह आकृति कुछ-कुछ वैसी ही व्यञ्जना करने लगी, जैसी इन्द्रा की बाते करती थी। रेवती की समझ मे नही आया कि मौसी का कौन सा रूप असली है। सोचते-सोचते मौसी से विरक्त हो चली। उसका ध्यान भी असह्य सा हो उठा। जब वह आग को खोली के किवाड खोलकर चबूतरे पर खंभे के सहारे जाकर खड़ी हुई तो वह मौसी के प्रति तिरस्कार से भर उठी थी।

वह खडी ही थी कि एक पुरुष की आवाज ने चौंका दिया—नमस्ते।

गाडगिल था। पर वह तो उसे नही जानती थी। वह कह रहा था—जी मैं गाडगिल हूं। फिल्मों मे काम करता हूं। इससे पहले हाजिर होने का मौका ही नहीं मिला। फिल्म का धधा ही ऐसा है: दिन, दिन नहीं; रात, रात नही। नही तो कभी का हाज़िर हो गया होता। खास तौर से जब कि मैं किसी फार्मेलिटी का कायल नही हूं।

रेवती असमजस में थी। सभ्यता के नाते पूछा—आप कहा रहते हैं ?

—ओह, आपको यह भी पता नहीं—गाडगिल को अचरज हुआ—किसीने आपसे मेरा जिक्र भी नहीं किया। खास तौर से जब कि हर कोई शूटिंग देखने के लिए मेरी खुशामद करता है। अजी, यह फिल्मी दुनिया ही ऐसी है। मैं इसके अन्दर हूं। मैं इसकी असलियत जानता हूं। आप बाहर से देखती हैं। सोचती होगी कि जाने कौन सी जन्नत है।

रेवती ने कहना चाहा कि उसने ऐसा कभी सपने मे भी नहीं सोचा। पर वह बोल ही नही पाई। उधर गाडगिल चुप रहना नहीं चाहता था—अजी, सब लस्ट है, लस्ट। फिल्म में भी वैसे ही आदमी काम करते हैं जैसे उसके बाहर हैं। शायद बाहर की दुनिया में उनसे ज्यादा अच्छे और खूबसूरत मिलेंगे। माफ करें तो कहूं कि आप···मेरा मतलब है कि आप जरा अपनी ओर थोडी सी तवज्जह करें तो आप किस हीरोइन से कम लगें ?

रेवती भीतर ही भीतर सख्त पडने लगी। गाडगिल ने भापा। बोला—मिसाल नहीं देना चाहता था, पर दे बैठा। सच कहूं तो आपमें उनके मुकाबिले की कोई बात नही। आप बस यह जान लीजिए कि रुपया होना चाहिए। बस फिर जिस हीरो हीरोइन को कहें नचवा दूं। कई फाईनेन्सर हैं। कहते हैं रुपया हम लगाएंगे। आप

नई फिल्म बनाइए, पर मैं तैयार नहीं। अपने तजुर्बे से दूसरे के रुपये को क्यों फायदा पहुंचाऊं ? जब मेरा अपना रुपया होगा तो मैं वह भी कर लूंगा। डायरेक्शन जानता हूं, स्टोरी, सीनेरियो और डायलाग लिख सकता हूं। एडिटिंग में भी उतना ही माहिर समझा जाता हूं। फिर कान्टैक्ट्स है। सब से बड़ी बात कान्टैक्ट्स है। बड़ी से बड़ी हीरोइन मामूली दामों पर मेरी फिल्म में काम करने को तैयार है। वह समझते हैं कि रुपए के साथ अच्छा काम करने का मौका न मिला तो मार्केट में जमेंगे कैसे ?

रेवती से अब नहीं रहा गया। कह बैठी—आप यह सब मुझे सुना-सुनाकर अपना वक्त खराब कर रहे हैं। मैं आपकी किसी भी बात का यकीन नहीं कर पा रही हूं।

गाडगिल के मुंह पर जैसे थप्पड़ लगा। तिलमिला उठा। पर फौरन खुद को संभाल ले गया—माफ करें। अगर एक यह बुरी आदत न हो तो जाने क्या का क्या हो जाता। बस जरा ज्यादा बोलने का मर्ज है। फिल्म में कम्बख्त काम ही बोलने का जो ठहरा ! मैंने सचमुच आपका बहुत वक्त लिया। अच्छा, फिर कभी।

रेवती उसके जाने से पहले ही भीतर चली गई। उसे लगा जैसे वह गिद्धों की बस्ती में चली आई है जो उसे चारों तरफ से नोचने-खरोचने में लगे हैं।

गाडगिल भी जला-भुना सा बढ़ चला। उसके होंठों पर मन की कुटिलता झलक आई थी, जैसे कह रहा हो : बहुत बनती है। पर कतर डालूंगा। फिर देखूंगा कि यह कितने पानी में है। रूप और पैसे का गुमान है। गाडगिल गुरु का एक बार भी पड़ गया तो होश में आ जाएगी।

वह शाम उसकी बड़ी बुरी कटी और रात उससे भी बुरी। उसने खाना तक नहीं बनाया। नींद भी जब आई तो बड़ी देर से। फिर बीच-बीच में उचट जाती तो घंटों न आती। उसे घर याद आता, चन्द्र और जयन्त दोनों ही याद आते। आखिर वह किस सुख के लोभ में वहां से भाग आई, वह यहां क्या पा रही है, क्या उसे इसी तरह जीना होगा, इसी तरह, इसी खोली में, ऐसे ही लोगों के बीच में ! वह कांप उठी। नहीं, नहीं, नहीं। इस जिंदगी से मौत अच्छी। चन्द्र की बगल के पलंग पर पड़े-पड़े मैं होली सी जलती रही, पर अभिमान को कभी ठेस नहीं पहुंची। पर यहां

सभी, हां सभी,'''तभी मनुभाई आंखों के आगे आ गए : नहीं। एक देवता है। एक देवता यहां भी है। बाकी सब तो'''

तेज सांसों ने उसे परेशान कर दिया।

उसे न्हाना पर भी गुस्सा आया, इसी पाजी ने सब को सनकाया है। जहर का बुझा है। जाने किन पापों से इस जनम में बौना हुआ है। आगे चलकर अपनी ऐसी ही करनी से जाने क्या होगा।

'पाप' यह शब्द पहली बार बडा सा होकर उसकी चेतना को लपेटने लगा। 'पाप', क्या है यह पाप। क्या मैंने ही पाप नही किया। पाप · उफ नहीं, नहीं, नहीं। कुछ नहीं है पाप। न्हाना ने कोई पाप नहीं किया। न्हाना भी दर्द का मारा है। मेरी ही तरह दर्दमारा !

इसी तरह उसके मन में न्हाना के प्रति कितनी ही बार आक्रोश उमडा तो कितनी ही बार दया। फिर इसी उलझन मे थककर सो ही गई। सुबह उठी तो उसे सब से पहले न्हाना का ख्याल ही आया--वह समझता है कि मैं उसके इस प्रचार से दहल जाऊंगी। मै बौने को विराट् मानने लगूंगी। नहीं, वह बौना ही रहेगा। वह कभी मेरे कंधे को भी छू नहीं पाएगा।

उठकर उसने कुछ भी तो नहीं किया। चन्द्रकांत का पचीस हजार का चेक निकाला। बैंक में चैक जमा करने वाली किताब निकाली। उसे भरा। चैक की पीठ पर कुछ लिखकर दस्तखत किये और न्हाना की खोली की ओर चल दी।

रेवती चल तो दी थी पर उसे न्हाना की खोली का ठीक-ठीक पता ही नहीं था। सिर्फ उस तरफ आते-जाते देखा था उसे। पर उसे यह सूझा ही नहीं कि वह किसी गलत खोली में भी घुस सकती है। वह सीधे बढकर जरा बाएं को हुई। वहां से कुएं की मन, नीम का पेड़ और एकसाथ कई खोलियां दिखाई दी। वह कोने

वाली बापू की है यह वह जानती थी। बाकी दो मे से कौनसी न्हाना की है उसने सोचा तक नहीं। जो खोली सामने पडी उसीमे घुस गई। बाहर से आवाज तक देने की कोशिश न की। खोली के आगे के चबूतरे पर चढ़ी और खुले किवाडो से अंदर घुस गई। घुसते ही उसने आवाज दी---न्हाना भाई।

किसीने मुह घुमाया। वह तो न्हाना न था। उसे तो वह जानती भी न थी। बडा प्रभावहीन सा मुख, लुगी लपेटे, शेष बदन नगा। पर उसके सामने जो चित्र-फलक रखा था उसपर बछडे को दूध पिलाती गाय का चित्र बना था। उसे ध्यान आया : सुदरम् होगा। बापू ने बताया था, उस बगल वाली खोली मे एक चितेरा है, चितेरा सुदरम्। सुंदरम् अपना सकोची स्वभाव और सज्जनोचित मर्यादा भूल, रेवती को एकटक निहार रहा था। रेवती उसकी अनुपस्थिति से अनभिज्ञ चित्र को देख रही थी।

उसे उस चित्र से जैसे कोई संदेश मिल रहा था। गाय के बाख में दूध के सर-बर भरे थे। थन फटे पड़ रहे थे। नवजात गोवत्स उनसे जूझ रहा था। बीच-बीच मे हुंदडी मारकर कठोर थनों को कोमल करने की जैसे चेष्टा कर चुका हो। गाय के थनों मे दूध और आंखों में स्नेह का जल है। गोवत्स तृप्त होने पर भी स्तनपान से जैसे हट ही नही रहा।

रेवती देखती रही, अपलक देखती रही। धीरे-धीरे उसके नेत्रों मे मन की भूख का प्रतिबिम्ब उमड आया। गाय उसे सुख, तृप्ति, ममता, स्नेह और धीरज की साक्षात् प्रतिमा लग रही थी। गोवत्स उसकी आकाक्षा सा उसीके रक्त से बने दूध को पी रहा था। जैसे वह अपने प्राणो को उसीमें उड़ेल रही हो। रेवती के प्राणो मे दाह होने लगा। वह तो अपने प्राण किसीमे उंडेल पाई ही न थी। उंड़ेलने का प्रश्न ही कहा था उसने तो चाहा ही भर था। चन्द्रकांत से चाहा। पर वह देने मे समर्थ ही न था। जयन्त से चाहा। यह देने की विधि से ही अपरिचित था। वह क्षण तो आया ही नहीं उसके जीवन में जो उसमे स्वय को उड़ेल देने की उत्कंठा पैदा करता।

और सुंदरम् ने जाने उसमें क्या देखा। एकाध झलक उसने उसकी पाई थी जब वह आई ही थी। उसने सुंघनी सूघने के छल से उसे देख लिया था। जैसे चोरी करने का इरादा हो। जाने कैसी लगी थी तब, केवल कुतूहल के स्मित सी। पर

आज तो जैसे उसकी छत फाडकर चादनी बरस रही थी––गोपुरम् सा ऊर्ध्वगामी रूप, कृष्णवेणी सा अपनेपन से भरा रूप, समुद्री बालू पर खेलती हुई चादनी सा रूप, ज्वार की तरंगों पर लुटती चाद की सुधा सा रूप, मीनाक्षी के मन्दिर की उस प्रमदा सा रूप; बृहदीश्वर के मन्दिर के सामने के नदी सा हठीला रूप, कन्या कुमारी के अभिषेक के बाद की चन्दनचर्चित प्रतिमा सा रूप ! उसकी कल्पना के पख थक गए, रूप के उपमान चुक गए। उफ, यह कौन आ गई ! क्या साक्षात् कला आ गई, या उसकी कला का अंतिम उत्कर्ष ही मूर्ति हो गया !···वह मुग्ध था।

रेवती ने चित्र से दृष्टि हटाए बिना ही पूछा––यह चित्र आपने बनाया है ?

सुदरम् ने बिना प्रश्न को समझे, बिना उसके मुख पर से दृष्टि हटाए कहा–– आपको यह चित्र चाहिए ?

इस सवाद के बाद दोनो की दृष्टि हठात् मिल गई। रेवती सहज भाव से मुस्करा रही थी। सुंदरम् चकित सा उस मुस्कान के अर्थ लगा रहा था। रेवती ने कहा––मुझे यह चित्र सचमुच दे दोगे ?

सुदरम् ने पूछा––पसन्द है आपको ?

रेवती ने फिर कहा––तुमने पूछा न था कि चित्र चाहिए ! मेरा उत्तर है 'हा'।

पर सुदरम् को जैसे प्रत्यय हो ही नही रहा था। फिर पूछा––आपको सचमुच पसन्द है ?

रेवती हंसी––तुम्हे विश्वास नहीं हो रहा भाई ! मुझे बेहद सुदर लगा है।

सुदरम् अचानक कह गया––पर आप तो इससे कही सुदर हैं !

शायद यही सुदरम् के सन्देह का कारण था। सौंदर्य को स्वय किसी अन्य सौंदर्य की कामना, अपने से हीन सौंदर्य की कामना !

रेवती बोली––तुमने इसे बनाया, फिर इसके सौंदर्य को नही जानते !

वह प्रसन्न हो उठा था––आप ही स्वयं को कहा जान पाईं।

रेवती के चेहरे पर वेदना की लहर उमड़ी और तिरोहित हो गई। जैसे नीले अंबर में बदली का आंचल उड़ता हुआ गायब हो गया हो। वह बोली––मैं तुम्हे क्या

सचमुच ही इस चित्र से अधिक सुंदर लगती हूं ? भला क्यों ?

सुंदरम् कुछ देर चुप रहा। फिर बोला—इस चित्र में मेरे मन के विश्वकर्मा की एक ही कला है। आपमें तो ब्रह्मा की सभी कलाएं हैं।

रेवती की हंसी घुंघरुओं सी बज उठी। सुंदरम् को लगा। तारों में संगीत बरसा। फिर मौन छा गया। जब टूटा तो रेवती कह रही थी—तुम अविवाहित हो ?

सुन्दरम् की मूक लज्जा ने उत्तर दे दिया। रेवती समझ गई कि कल्पनाओं के इस भोगी को प्रत्यक्ष कितना दिव्य हो उठा। वह खुद ही बोली—तुम सृष्टि करते हो। फिर भी न तो अपने भाव को जानते हो और न अभाव को। मैं एक मामूली सी औरत हूं। भाव मेरे पास नहीं; अभाव मुझे बेहद खलते हैं। पर तुम्हारे इस चित्र ने मेरे मन में एक भाव जगाकर मेरे किसी अभाव को बडा प्रखर कर दिया है। मुझे यह चित्र दे दो सुन्दरम्।

सुन्दरम् ने कृतकृत्य होकर कहा—मेरी कला को पुरस्कार मिल गया ! इसे पूरा करके मैं खुद ही पहुंचा दूंगा। इसमें कुछ टचेज बाकी हैं।

रेवती बोली—उन्हें बाकी रहने दो। मुझे यह इसी रूप में प्यारा लग रहा है। इसमें जो टच तुम दे गए हो उसे तुम्हारा कोई दूसरा टच छीन न ले।

सुन्दरम् ने मौन स्वीकृति दे दी। रेवती ने पूछा—और मूल्य ?

सुन्दरम् को चोट लगी—आप भी मूल्य देंगी !

रेवती ने कहा—तुम बेचते हो न !

—मजबूरी में।—उसने कहा—नहीं तो अपने सभी चित्र इकट्ठे कर मैं एक बेजोड़ प्रदर्शनी करना चाहता हूं।

पर प्रदर्शनी ही क्यों ?—रेवती ने गूढ़ता से पूछा।

—अपने लिए।—उसने कहा।

—मैं समझी नहीं।—रेवती ने शंका की।

वह बोला—यह मैं जो रंगों की लीला करता हूं वह भी तो मेरी किसी भाव या भावों की प्रदर्शनी ही है। आप अभिव्यक्ति कह लें। बात एक ही है।

रेवती समझ गई। उसे बचपन की बात याद आई। मां कहा करती थीं—

जंगल में मोर नाचा तो किसने देखा। फिर भी उसने कहा--तो तुम्हारी यह अभिव्यक्ति अपने लिए नहीं ?

--अपने लिए है, इसीलिए तो मैं अपनी रचना को सिर्फ दो नहीं, दो हजार, दो लाख, दो करोड़ आखों से देखना चाहता हूं और उतने ही मुखों से उसके बारे में सुनना चाहता हू।--सुन्दरम् कलाकार के दर्प से बोला।

रेवती ने मीठे व्यंग्य से कहा--तो मेरी प्रशसा अपर्याप्त ही रहेगी।

सुन्दरम् को उत्तर नहीं सूझा। पर रेवती को उत्तर मिल गया। जिसके हृदय में सौंदर्य के अंबार लगे हो, जिसकी कल्पना इतनी उर्वर हो, उसकी मूक प्रशसा रूप के शत-शत स्तोत्रगान से भी अधिक। चित्र ने उसे जो हूक दी थी चित्रकार ने उसे सहने की शक्ति दे दी। वह बोली--तो चित्र मेरा हुआ, पर बिना मूल्य कैसे ले लूं ?

—तो आप मूल्य देंगी ही ! --सुन्दरम् ने विशेष आग्रह से पूछा।

रेवती को लगा वह ले लेगा। उसे यह भी लगा कि उसके हाथ का चेक भी थोड़ा। उसने सिर्फ कहा--हां।

सुन्दरम् मोह के किसी गह्वर से बोला--तो मुझे बदले में अपना चित्र बनाने दो। वह मेरे इस चित्र का पुरस्कार होगा।

रेवती सकुचा सी गई। उसे लगा जैसे चित्रकार की आंखें उसके अंग-प्रत्यग पर दौड़ रही हैं। उसकी तूलिका उसके रंग की लुनाई, अगो के उभार और नयनों के माधुर्य को छू-छूकर उभार रही है। हाय, जब वह कूची से आवर्त से बना-बनाकर जाने कैसे-कैसे उभार देगा तब उसे कैसा लगेगा ! नहीं; वह तैयार नहीं। उसके अंगों में गुदगुदी होने लगी थी। इतनी तीखी निकटता वह सह नहीं पाएगी। उसने कहना चाहा, नहीं। पर कह नहीं पाई। यदि कह भी देती तो उसका अर्थ 'नहीं' थोड़े होता। वह तो संकोच की गांठ भर होता। चित्रकार का जरा सा प्रयास उसे खोल देता। बस वह चुप ही रह गई।

सुन्दरम् उसके असमंजस को ताड़कर बोला--आपको चित्र बनाते समय मेरे सामने नहीं रहना होगा। सिर्फ एक बार, दिन में एक बार देख लेना काफी होगा। पर उन्हीं वस्त्रों में, उन्ही आभूषणों में, उसी विन्यास में।

रेवती ना कर ही न सकी।

वह खोई-खोई सी बाहर आ गई। बाडी के लोगों की बातों को भूल चुकी थी; हाथ के चेक को भूल चुकी थी; न्हाना की चोट को भूल चुकी थी। उसे याद सिर्फ चित्र और सुन्दरम् का मांगा मूल्य रह गया था।

पर कुछ कदम ही चल पाई होगी कि न्हाना दिखाई दे गया। उसे देखते ही हाथ का चेक याद आ गया। न्हाना उसकी उपेक्षा करके बढ़ने लगा। रेवती को हंसी आई। जैसे घास का तिनका चटखती हुई कली को ललकारे। उसने कोमल स्वर में आवाज दी—न्हाना भाई!

न्हाना रुक गया। मुंह पर कठोरता थी। बोला कुछ नहीं। रेवती ही बोली—मेरा एक काम कर दोगे भाई।

न्हान मूर्ख की तरह बोला—मुझे दफ्तर जाना है। फुर्सत होगी तो…

—दफ्तर का ही काम है।—रेवती बोली।

—कुछ रुपया लाना है?—उसके स्वर में व्यंग्य था।

वह उसे परास्त करती हुई बोली—अभी निकालने की जरूरत नहीं आई।

—तो? —वह रूक्ष ही था।

रेवती मृदु ही रही—यह चेक जमा करा देना मेरे खाते में।

रेवती ने चेक बढा दिया। न्हाना को हाथ बढाना ही पडा। न चाहते हुए भी चेक की रकम पर उसकी नजर पड गई…पचीस हजार। उसके चेहरे का रंग बदलने लगा। कहां से आता है इसके पास इतना रुपया? वह सोचने लगा।

रेवती उसके विवश अचरज को समझ गई थी। उसे फुसलाती हुई सी बोली—कर दोगे न मेरा यह काम? जानती हूं, औरों के चेकों से ही तुम्हें फुर्सत नहीं मिलती। पर क्या करूं, यहां विश्वास करूं भी तो किसका? मनु भाई हैं एक। पर उनसे किसी काम को कहते बनता भी नहीं। और मैं कहां-कहां जाऊं। फिर दूसरे तो जाने क्या-क्या सोचते हैं मेरे बारे में। एक तुम हो जो न गलत सोचोगे, न गलत कहोगे।

न्हाना को अपना कद बढ़ता सा लगा। वह 'अच्छा' कहकर बढ चला। उसे लगा कि अपने उन कदमों से वह वामन की तरह त्रिभुवन नाप सकता है।

चेक उसने मोड़-तोडकर जेब मे रख लिया। थोडी देर में जेब को टटोलकर चेक की हिफाजत का इतमीनान किया। और आगे बढा। मन न माना। क्रास चेक है तो क्या। रकम तो थोडी नही। उसने बाहर की जेब से निकाल अन्दर की जेब में रख लिया। फिर विले पार्ले स्टेशन की तरफ बढ़ चला। कभी मन कहता कि वाड़ी लौट चले और चेक खोलकर गाडगिल को दिखाए। गुलाब उसे देखकर हस पडती है तो जाने अपने को क्या समझती है! क्या है गुलाब रेवती के सामने! — पैरो का धोवन भी नही! वह मुझे अपना समझती है। तभी न ऐसे बडे-बडे काम भी सौंपती है। क्यो नहीं कहा गाडगिल से ही करने को! वह भली है और भले की परख भी जानती है।

इन्हीं विचारों में वह स्टेशन पहुच गया। और बिजली से चलने वाली गाडी में बैठ गया। गाड़ी चर्च गेट की तरफ दौड रही थी, पर उसका मन रेवती की ओर। वह मन ही मन सोचने लगा : अगर मेरा कद जरा और होता तो मै रेवती जैसी सुन्दरी को भी जीत लेता। मुझमें और कमी है भी क्या! एक सिर्फ ··

वह 'कद' कहने जा ही रहा था कि उसे गाडी भर के लोग हंसते से सुनाई पडे, जैसे कह रहे हो : बौना चांद को पकड़ने जा रहा है! बौना। हे हे हे। चांद। हे हे हे। बौना चांद। चांद बौना।

न्हाना तिलमिला उठा : रेवती चांद। वह औरत, बाजारू औरत। जिसके नाम के चेक रोज आते है, वह रूप की हाट! न्हाना ने खुद को कभी गिराया नहीं, कभी खुद को बेचा नही।

न्हाना ही सोच रहा था कि बीच के स्टेशन पर गाड़ी रुकी। भीड बढी। उसमें वह पिच गया। किसीने उसका मुह न देखकर कहा——अरे बचाओ बच्चे को! बच्चा है बच्चा। पिच जाएगा!

कहने वाला गुजराती में बोल रहा था। जिन लोगों को उसकी बात के साथ-साथ न्हाना का मुह भी दिखाई दिया वे खिलखिलाकर हस पडे। न्हाना के कानों को उनकी हसी ऐसी लगी जैसे दुर्गन्ध वाली गधक के पटाखे फट रहे हो। किसीने मराठी में कह भी दिया—मूछों वाला है बच्चा, मूछों वाला!

दूसरा बबइया हिंदी मे बोला——खाता पीता क्या बोलता है ! नकली मोछ है नकली ।

इसपर फिर ठहाका उठा । रेल का ठहाका, गाडी का ठहाका । न्हाना का सिर घूमने लगा । पर किसी तरह स्वय को सम्हाला । ये ऊट मे आदमी जाने खुद को क्या समझते हैं ! उसके मन मे सदा की तरह आया कि उनपर थूक दे । पर आसमान का थूका··· उसे रेवती से अपनी प्रथम भेट याद आ गई । तब भी, तब भी तो···। उफ रेवती, वह भी हंसती है । वह सुदर डायन भी हसती है । तभी इंजन ने सीटी दी, जैसे डायन ने ही किलकारी मारी । पहियों की गडगडाहट बढी, जैसे डायन ही दौडी आई । न्हाना के माथे पर पसीना चुहचुहा आया । परेशानी बढी, वह कैसे रेवती को भुला दे; उसे अपना बौनापन क्यों अखरता है; वह क्यो इसमे बेहूदी कामनाएं जगाती है ? वह जादूगरनी है, जरूर ही जादूगरनी है; कही उसका चेक भी तो जादू का नहीं ।

उसने छाती की जेब को टटोला । कागज का चेक यथास्थान मौजूद था । जादू-वादू कुछ नही । वही कमजोर हो गया है, वह अपनी ताकत भूल गया है ।

चर्च गेट आ गया था । गाडी रुकी । रेल के डिब्बे खाली होने लगे । दफ्तर जाने वाले बाबुओं की कतार चींटियो की लाइन सी बढ चली । न्हाना भी बढा । उस तरल से जन-प्रवाह मे वह फिर अपने बौनेपन को भूलने लगा था ।

रेवती खोली मे लौट आई । बडी हल्की सी । उसे लगा जैसे उसने आज कुछ उपलब्ध किया हो । मन उसका गुनगुनाने को कर रहा था । पर थोडी ही देर मे खालीपन डसने लगा । क्या करे ? कैसे समय की इस दरार को भरे ? कैसे खुद को भुला दे ? आखिर वह जिए ही क्यो ? कुछ तो हो जीने का प्रयोजन ! सुंदरम् का चित्र याद आया, बछडे वाली गाय । उसकी भी सार्थकता है । दूध भी, पूत भी । बडी बूढ़ियों का आशीर्वाद याद आया, 'दूधों नहाओ, पूतों फलो ।' दूध-पूत दोनो ही । वह तो बजर है । न दूध, न पूत ।

इतने में सुंदरम् चित्र लेकर आ गया। उसने बाहर से आहट की। रेवती ने देखा, अंदर बुलाया। जाने क्यों अब चित्र के आने से खुशी न हो रही थी। यह तो उसके बाँझपन की याद दिलाएगा। सुंदरम् ने पूछा—कहां रखूं ?

रेवती ने इधर-उधर देखा। कहीं भी तो उपयुक्त स्थान न था। क्या जवाब देती। चुप ही रही। सुंदरम् ही बोला—तो मैं अपना स्टैंड ले आऊं।

—नहीं।—रेवती ने जल्दी से रोका। वह चल ही दिया था लेने—नहीं। तुम चित्र फिर कैसे बनाओगे ?

—स्टैंड में नहीं बनाता—वह मुस्कराया।

—नहीं, फिर भी नहीं।—रेवती ने कहा।

तो अभी इधर रख देता हूं। यहां इसपर पूरी-पूरी रोशनी पड़ेगी। उसने खिड़की की सामने वाली दीवाल के सहारे खड़ा कर दिया। साथ ही बोला—मैं बाद में कुछ और इन्तजाम कर दूंगा।

रेवती उसे बड़ी ही निरीह दृष्टि से देख रही थी। सोच रही थी कि आखिर यह सब क्यों कर रहा है वह ! अगर कोई और उससे इस चित्र को मांगता तो क्या तब भी दे देता ? तो मुझीमें कुछ है। पर क्या ? रूप। यौवन। पर मैं तो इसका सुख जान ही नहीं पाई। मुझे तो यह पीड़ा ही देता रहा है, निरी पीड़ा।

उधर सुंदरम् पूछ रहा था—आप किस रूप में चित्र बनवाना पसन्द करेंगी ? मैं कब आऊं दर्शन करने ?

तो तुम चित्र बनाओगे ही भाई—रेवती ने पीड़ा से कहा।

सुंदरम् उसकी पीड़ा को समझे बिना ही बोला—यह तो मेरे चित्र का मूल्य है, भला इसे कैसे छोड़ दूंगा।

वह मुस्करा उठा। रेवती और दीन हो गई। बोली—बंजर धरती का चित्र बनाने में तुम्हें क्या आनंद आएगा !

—बंजर धरती !—सुन्दरम् अचरज के साथ बोला—बंजर धरती से आपका मतलब ?

वह बोली—तुम दुधारू गाय की कल्पना करने वाले चितेरे हो। मैं···मैं···

उसका स्वर कांपने लगा था। वह रुक गई। सुन्दरम् व्यथित होकर बोला—

तो आपको पसद नही ?

निराशा से उसका सिर झुक गया। रेवती ने स्वय को सभालकर कहा—तुम्हें अच्छा लगेगा ?

सुन्दरम् की आंखों ने चमककर उत्तर दे दिया। रेवती ने विरोध छोड दिया। बोली——तो ऐसे ही क्यों, इन कपडो में ठीक नही लगूंगी ?

सुन्दरम् ने देखा ' मुखर सौंदर्य। कैसे कहे कि हर रूप मनोहर है, हर अदा प्यारी है। किसी तरह झिझक के साथ कह दिया——आपको सुदर बनने की जरूरत थोडे ही है, आप तो सुदर हे ही।

तो फिर ऐसे ही बनाओ न ! रेवती ने मुस्कराकर कह दिया। रूप-यौवन ही तो उसका धन था। उसकी तारीफ सुनकर गर्वित हो लेती; फिर निरुद्देश्यता से पीड़ित भी। हर धन की तरह उसका धन भी चचल है, यह अनुभूति असह्य हो उठती।

सुन्दरम् कृतार्थ होकर बोला—तो आप मुझे इसी रूप मे नित्य दर्शन देगी : ऐसे ही रूखे बाल, माथे पर झूमती हुई यह लट, पीठ पर डोलती हुई वेणी; ऐसे ही वस्त्र, अनायास पहने से। गले पर से कुछ अधिक खुला ब्लाउज। कधे पर से सरकता हुआ आचल, और यह मुस्कान। ठीक यही मुस्कान।

——और मुस्कान हसी बन जाए तो?——रेवती सचमुच हस पडी थी।

—तो चित्रकार हार मान लेगा !——उसने सरल भाव से कहा।

रेवती गर्वित हुई। उसके पास कुछ ऐसा भी है जो उसकी तूली से नही खिच सकता। उद्ग्रीव हसिनी सी बोली——नही कलाकार। तुम नही हारोगे। तुम्हें नही हारने दूगी। मै रोज इसी मुस्कान के साथ इसी समय तुम्हारी प्रतीक्षा किया करूंगी। जब तक तुम अपना चित्र न बना लोगे, ये बाल रूखे ही रहेंगे, यह लट असयत ही रहेगी।

भावावेश में रेवती बोलती गई। सुन्दरम् का कलाकार उस उद्दीप्त रूप को देखकर हार मानता गया : नहीं, उसके रंगों में वह दीप्ति कहां ! वह कांति कहा ! वह कैसे अंकित करेगा उस छवि को।'''बिना कुछ कहे ही वह चला गया। चलते वक्त उसने जो छवि देखी थी वह उसकी महत्त्वाकाक्षा की मूर्त छवि थी जिसे अंकित

करना कठिन था, असम्भव था !

रेवती फिर अकेली रह गई। नही, वैसी अकेली भी नही। सुन्दरम् की आंखे जो उसे देख रही हैं। पर सुन्दरम् कहा ! यह तो चित्रगत गाय की आंखे है। इनमे कैसी पूर्णता है। इसका वाख है कि दूध का सरोवर ! पर मेरा वक्ष : यह कठोर वक्ष। केवल रक्त मास-मज्जा ही तो, इससे दूध की गगा कभी न बहेगी। इसके लिए दूधिया दात कभी नही किलकेगे। हाय, कितनी निरर्थक है वह ! उसने अपने दोनों हाथो को अपनी छाती पर जकड लिया। कितनी निरर्थक है वह ! वह अपना वक्ष भीचती गई। कितनी व्यर्थ है वह ! उसने अपना सिर दीवाल से दे मारा, खट।

फिर खट।

यह सिर पटकने की आवाज न थी। मनुभाई किवाड पर अगुली से खट कर रहे थे। इसमे पहले कि वह कुछ कहे उसे सुनाई पडा—बिटिया, अन्दर हो ?

'आओ बापू !' उसने कहना चाहा, पर कह न पाई।

मनुभाई फिर भी अन्दर चले आए। सब से पहले चित्र पर दृष्टि गई। बोले—बड़ा सुन्दर है ! इस सुन्दरम् से मे अपना भी चित्र बनवाऊगा। मशीनी फोटो मुझे पसन्द नहीं।

दूसरे ही क्षण रेवती पर दृष्टि गई। वह दर्दमारी सी दीवाल से चिपटी बैठी थी—तुम रो रही हो बेटी ?

रेवती की आंखों में एक भी आंसू न था। फिर भी मनुभाई कह रहे थे—रो रही हो बेटी ! रेवती ने विरोध नहीं किया। कहीं उस प्यार को जवाब देने के प्रयास मे सचमुच ही रो न पडे। बैठने का इशारा कर दिया। मनुभाई बैठ गए।

उनके बैठते ही रेवती हंस पडी। जोरो से हंस पड़ी—तुम भी बापू कैसे हो ! मुझे रोनी ही समझ रखा है !

मनुभाई से वह बनावटी हसी छिपी नहीं—तू मुझे धोखा देती है बिटिया ?

रेवती फिर भी हंसती रही। हंसते-हसते आंसू छलक आए—कहां बापू। कहां बापू।—और फिर सचमुच ही रो पड़ी। पर तब भी कहती गई—कहां बापू। कहां बापू।

और दूसरे ही क्षण उसने रोते-रोते घुटनों में मुंह छिपा लिया।

मनुभाई का हाथ कांपता हुआ उठा और उसके सिर को सहलाने लगा——क्यों री, बालों के नाम को तेल भी नहीं रहा क्या ?

रेवती चुप ही रही !

——कैसा सिर हो रहा है। बड़ा भारी लग रहा है न !

रेवती बहरी बनी रही।

——तो मैं दाब दूं ?

रेवती तब भी न बोली।

——तू बड़ी गमखोर है। अब मैं नहीं मानने का। तुझसे पूछकर ही रहूंगा।

रेवती हिली तक नहीं।

——मैंने आज बाबू को देखा था। बाड़ी के चक्कर लगा रहे थे। पर जैसे ही मुझ पर नजर पड़ी तो भाग गए।

रेवती सिहरी।

——कैसा बावला है ! शक्ल से तो बड़ा सीधा प्यारा लगता है !

रेवती का सिर कुछ-कुछ उठा।

——पर जाने क्यों भागा फिरता है। क्यों तुझसे मान कर रहा है।

रेवती का सिर उठ गया। बापू को ऐसे देखा जैसे कहना चाहती हो : मान तो मैं कर सकती हूं। मान तो मुझे करना चाहिए।

बापू ने पूछा——वह तुम्हारा कौन है।

——वह मेरा कोई नहीं, वह मेरा कोई नहीं···।——रेवती ने दहकती हुई भट्टी की तरह गरम सांसें छोड़ते हुए कहा।

——मुझे भी नहीं बताओगी बेटी ?——मनुभाई ने अपने स्नेह का जैसे अधिकार मांगा।

उत्तर में रेवती ने उनकी गोद में अपना मुंह छिपा लिया। सुबकियों-हिचकियों में बदन बार-बार हिल उठता। मनुभाई का गला भर आया——अच्छा मत बता, मत बता। मैं नहीं पूछूंगा, मैं नहीं पूछूंगा।

इसपर रेवती गोद में मुंह छिपाए-छिपाए बोल उठी——बापू मैं बेहद बुरी हूं,

बेहद बुरी। तुम जान लोगे तो मुझसे नफरत करोगे। बिटिया तक कहना पसंद न करोगे।

मनुभाई हल्के से मुस्कराए। प्यार से उसके सिर को सहलाते हुए बोले——तब तो तू मेरी ही बेटी है, बिल्कुल मेरी बेटी। मैं भी बहुत बुरा हूं, बेहद बुरा। पर तुझे देखकर अच्छा बनने को मन करता है। भला जिसके घर में तेरे जैसी बेटी हो, उसे बुराई से वास्ता रखना चाहिए ?

रेवती हिचकियों में टूटते स्वर में बोली——ऐसा मत कहो बापू। तुम बुरे हो ही नहीं सकते। दुनिया बुरी हो जाए, तुम नहीं हो सकते।

मनुभाई को रोमांच हो आया। भीगे स्वर में बोले—पर बिटिया, अगर मैं सचमुच बुरा आदमी साबित होऊं ?

रेवती ने उनकी गोद से सिर उठा लिया। मनुभाई की सफेद मूछों पर टपके हुए आंसू को देखा। बोली——तुम तो मेरे लिए तब भी अच्छे ही रहोगे बापू। मैं तुम्हारी चिटिया हू न। बाप भी किसी बेटी का कभी बुरा हुआ ?

मनुभाई की मूछें फरकीं——तब मैं जरूर अच्छा आदमी बन जाऊंगा। तू शायद मुझे सुधारने ही आई है। तभी तो तुझसे मोह हो चला है। पर वह बुराई इतनी गहरी जड़ें जमा चुकी है कि मैं एकदम से उखाड़ नहीं फेंक पाता। कभी-कभी मुझे दूसरे भी मजबूर कर देते हैं। उनकी आदतें मैंने खराब की हैं। फिर वे अगर अपनी जरूरतों के लिए मुझे मजबूर करें ही तो उनका क्या क़सूर !

ये शब्द जैसे मनुभाई की आत्मा से निकल रहे थे। पर रेवती को विश्वास नहीं हो रहा था। उसके आंसू थम चुके थे, हिचकियां रुक चुकी थीं। वह अपनी प्रकृति में लौट आई थी। आंखों के डेले चमकने लगे थे। होठों पर मुस्कान झाईं मारने लगी थी। बोली——बड़े बुरे हो बापू। कैसी बुरी-बुरी बातें करते हो। लो अब मैं नहीं कहूंगी कि मैं बुरी हूं। तुम नफरत करने लगोगे।

मनुभाई चुप हो गए। प्यार से रेवती को देखते रहे। फिर बोले——बिटिया, सत्य बोलने के लिए बड़ा साहस चाहिए न।

——नहीं बापू। तुम्हें तो झूठ बोलने के लिए साहस की जरूरत पड़ेगी——रेवती बोली।

—तो तुम्हे मेरी बात का यकीन कभी नही आएगा—उन्होंने कहना शुरू किया—पर मैं भी तो कहने का साहस नही कर पाऊंगा। कितनी भूमिका बांधी। कितना बखान किया। पर सत्य को छिपाता ही रहा।

रेवती बच्ची सी ठिनकती बोली—अब बस भी करो बापू। मुझे ऐसी बातें अच्छी नही लगती।

मनुभाई ने सामने की सूनी दीवाल पर आंखें गड़ा दीं। रेवती को देखने का जैसे साहस ही नही कर पा रहे थे।

रेवती ने मुस्कराकर पूछा—दीवाल पर कुछ लिखा है बापू।

मनुभाई ने गंभीर स्वर में कहा—हां।

—हम भी सुने—रेवती लाडली बेटी के अन्दाज से बोली।

मनुभाई अपने मन की किसी गहराई में उतर गए। आंखें उनकी दीवाल पर ही टगी थी, पर बोले तो लगा आवाज किसी कुए से आ रही है—तकदीर का लिखा हर कोई नहीं पढ़ सकता।

रेवती की चपलता तिरोहित हो गई—मैं नही समझी बापू। क्या कह रहे हो तुम ?

मनुभाई उसी स्वर में बोले—दीवाल पर जो लिखा है उसी को पढ़ रहा हू।

रेवती घबड़ा सी गई। मनुभाई को कंधे पर से हिलाती हुई बोली—कुछ और बातें करो बापू।

मनुभाई चेते। चेहरे पर मुस्कान लाने की कोशिश की। पर मूछें तक नही फरका पाए। बोले—तू तो सहम सी गई। कभी-कभी मन अजीब हो जाता है। सोचने लगता हू कि कल जो होने वाला है वह आज ही क्यो नही पता चल जाता ? क्यों बिटिया, यह संभव होता तो कैसा लगता।

रेवती ने बड़ी गंभीरता से कहा—तब तो न मेरी शादी होती और न मैं बम्बई आती।

उसने इस एक वाक्य मे जैसे अपनी कहानी और उसकी ट्रेजडी दोनों ही बता दीं। पर मनुभाई उसके वक्तव्य से सहमत नही हुए। बोले—नही बिटिया। होनी भला कहीं टलती है ! इतना तो सब जानते हैं कि मौत ध्रुव है, आनी ही है। फिर

भी ऐसी मनमानी करते हैं जैसे अमरपट्टा लिखवाकर आए हो। अंत को जानकर भी नेक रास्ते पर नहीं चलते।

---वह नेकी क्या है बापू ?—रेवती ने जिज्ञासा की। जैसे नचिकेता यम से पूछ रहा हो : और मृत्यु के बाद।

मनुभाई कुछ सोचने से लगे। जैसे मन की बात को ठीक-ठीक से कहने के लिए शब्द ढूंढ़ रहे हों। फिर लडखडाती सी जीभ से बोले---नेकी। मुश्किल है बताना। एक बिच्छू नदी मे बहा जा रहा था। एक दयालु ने देखा। उसे उबारने के लिए हाथ से पकड लिया। जो बिच्छू मौत के मुह मे जा रहा था उसने अपने जीवन-रक्षक के हाथ मे डक मारा। जहर की लहर दौड़ गई। पर दयालु ने फिर भी नहीं छोडा। बिच्छू ने फिर डंक मारा। किसी देखने वाले समझदार ने कहा, 'किस पापी को बचा रहे हो ! छोड दो न। तुम्हें ही डक मार रहा है।' दयालु मुस्कराए। बोले, 'पापी क्यों कहते हो बेचारे को ! अपना स्वभाव ही तो नहीं छोड़ पा रहा है।' इसपर उस समझदार ने कहा, 'पर तुम तो अपना विचार करो।' दयालु बोला, 'तुम्हारा मतलब है कि मैं अपना स्वभाव छोड़ दूं। तब तो मैं मनुष्य होकर भी इस बिच्छू तक से गया बीता।' समझदार को लगा कि यह आदमी नासमझ है। उधर नतीजा यह हुआ कि बिच्छू के डंकों से दयालु का शरीर नीला पड गया और नदी से बाहर आते ही वह धरती पर गिर पडा। इसपर एक और भले आदमी ने कहा, 'अजीब आदमी निकला। एक समझदार ने नेक सलाह दी तो वह भी नहीं मानी।' अब बताओ बिटिया नेकी क्या हुई ? बिच्छू को बचाना या बचाने वाले को नेक सलाह देना ?

मनुभाई चुप हो गए। रेवती क्या कहे। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। कह दिया---मेरी समझ में कुछ नहीं आता बापू।

मनुभाई बोले---मेरी भी समझ मे नहीं आता बिटिया। इसीलिए वह सभी कुछ करता आ रहा हू जिसे बहुत से नेक आदमी बुरा कहेगे।

मनुभाई के माथे मे किसी गहरी चिन्ता की लकीरें पड गई। जैसे कोई नागिन अपने निशान छोड गई हो। रेवती ने देखा। ममता से भरकर बोली---तुम बड़े नेक हो बापू। तुम कभी बुराई नहीं करोगे।

मनुभाई हंस पड़े। हंसी में व्यंग्य था। पता नहीं रेवती की श्रद्धा पर या स्वयं अपने भाग्य पर।

रेवती गोधूलि सी दीखने लगी। वह सिर में तेल क्यों नहीं लगाती। वह उन्हीं ''एक से कपड़ों में क्यों हरदम बनी रहती है। कैसी उदासी है उसमें। कौन सा गम खा रहा है उसे। पर रूप तब भी फीका नहीं पड़ा। फूले हुए पलाश सी नार। उफ आग! क्या हो रहा है इसे। क्यों हो रहा है यह सब इसे। हर कोई सोचता। जो भी देखता सोचे बिना नहीं रहता।

गाडगिल ने एकांत पाकर गुलाब को चूमते हुए कहा—देखा, वहां भी आग लगा दी!

—कहां?—चुंबन को सिर्फ खिलवाड़ मानने वाली गुलाब ने पूछा।

गाडगिल हंसा। दुबले-पतले चेहरे में भी हंसने से आंखें मिच गई। बोला—अरी वही जो अपने को बिजली समझती है।

—क्या मौसी?—गुलाब ने कल्पना के पंख तोले।

गाडगिल उसकी कमअक्ली पर झल्ला उठा—अरी, वहां क्या आग लगाने को धरा है! अब तो वह दूसरों के घरों में आग लगाती फिरती है। मेरा मतलब है नई किराएदारिन से।

—हाय, उसे क्या हुआ—गुलाब ने लटके से पूछा।

गाडगिल ने फिर चूम लिया गुलाब को—कहती है, मेरे होंठ जल रहे हैं। इन्हें अपने होंठों से छूकर ठंडा कर दो।

—भूठा!—गुलाब न मानी।

—हां वे होंठ जूठे ही हैं!—गाडगिल गुलाब के गलत उच्चारण का लाभ उठाकर बोला—मैंने कह दिया—गाडगिल दिल पर मरता है, रूप पर नहीं।

—मैंने कहा, भूठे!—उसने अब सभालकर उच्चारण किया—बिल्कुल भूठे!

—कौन ? — उसने शरारत से पूछा।

—तुम ! —उसने जोर देकर कहा।—दिल तुम्हें दिखाई भी देता है ?

ब्लाउज के बटन खोलो तो बताऊं।—गाडगिल रसिकता का परिचय देने लगा। आखें घिनौनी हो उठीं।

—तब भी नहीं देख पाग्रोगे !—गुलाब जिद्दी बालक की तरह बोली।

गाडगिल ने वाक्चातुर्य दिखाया—हार मान ली जालिम। तेरे दिल तक निगाह तो तब भी नहीं पहुंचेगी। वह तो छाती पर पड़ते ही टूट जाएगी।

—बेशर्म !—गुलाब ने रस लेते हुए कहा।

—एक बार फिर कहो न !—गाडगिल कामुक की तरह बोला।

गुलाब नहीं बोल पाई। तभी इन्द्रा आ धमकी। बड़ी बहन के अधिकार से बोली—क्या कर रहे हो तुम दोनों यहां।

गाडगिल दुष्टता से बोला—क्यों जलती हो बेरहम।

इन्द्रा को अच्छा लगा उसका कहना। गुलाब की उपस्थिति भूल मूर्ख की तरह बोली—मैं तुम्हें सचमुच ही बेरहम लगती हूं ?

—यह भी बताने की बात है ? खुद ही सोच लो न !—गाडगिल ने चतुर नायक की तरह कहा। इन्द्रा के बिन-नहाए बदन से खुशी की महक आने लगी। गुलाब का साबुन से धोया हुआ मोटा मुंह भी धूमिल पड़ गया।

इन्द्रा ने फिर पूछा—तो बताओ न, क्या बात है ?

गाडगिल कहानी गढ़ता हुआ बोला—अब तो गनुभाई की बाड़ी छोड़ ही देनी होगी।

—क्यों ?—इन्द्रा ने बेताबी से पूछा।

—क्या बताऊं, अपने पीछे एक और मुसीबत पड़ गई है। वह नवर नौ वाली !—गाडगिल परेशानी के साथ कहता गया—देखा नहीं, क्या शक्ल बना रखी है, बालों में तेल नहीं; आंखों में काजल नहीं; बदन पर मल भरे कपड़े; हर वक्त उदास; गमखोर आंखों से बाट देखती हुई।

—किसकी ?—इन्द्रा की अक्ल ध्वनि नहीं पकड़ती थी।

गाडगिल ने माथा ठोका—अरी, यह भी बताना पड़ेगा !

गुलाब हंसी। हंसी में कुटिलता थी। बड़ी बहन के फूहड़पन पर खुश थी। बोली--तो मैं चलूं। तुम लोग बात करो।

साथ ही उसने गाडगिल को कुछ इशारा भी किया।

इन्द्रा ने कहा--अच्छा चल, मैं अभी आई।

गाडगिल को बुरा लगा। उसे इन्द्रा गवारा नहीं थी। कम से कम गुलाब के विकल्प के रूप में तो कतई नहीं। बोला--तो तुम भी जल्दी में हो इन्द्रा। अच्छा तो चलो। क्यों खामख्वाह देर करती हो?

गुलाब सुनने की सीमा से बाहर जा चुकी थी। उसका फायदा उठाकर इन्द्रा बोली--यह मैंने कब कहा! वह तो उसे टालने का बहाना था। इतना भी नहीं समझते। कितने दिन बाद तुम अकेले में मिले। उस रात के बाद आज ही। कई बार कोशिश की। पर रात में किवाड़ कुछ ऐसे बोलते हैं कि घर भर में जाग मच जाती है। मेरा दर्द तुम क्या जानो। फिल्म की हीरोइन ही समझ सकती है उस दर्द को, जिसे हीरो की बेवफाई सहनी पड़ी हो।

--अरे तूने तो मेरी जान बचा ली इन्द्रा।--गाडगिल व्यस्त भाव से बोला--आज की शूटिंग तो याद ही नहीं रही थी। तूने फिल्म की बात की तो याद हो आई।

गुलाब बाड़ी से बाहर जाकर बाड़ की ओर से इशारा कर रही थी। गाडगिल ने देख लिया और आंख मारकर सिगनल दोहराया।

--पर बात तो पूरी बता दो--इन्द्रा ने उसकी उतावली देखकर पूछा।

--बात! कैसी बात!...ओह, याद आया। उस रेवती की न। क्या कहूं, मुझपर डोरे डाल रही है। जब उधर से गुजरता हूं तो ऐसे देखती है, ऐसे देखती है कि...--गाडगिल ने जानकर ही वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

इन्द्रा ने अधूरे वाक्य को मन में पूरा कर लिया। बोली--ओ, अब समझी मैं। तभी तो उस दिन जब मैं उससे मिलने गई थी तो बड़ी जली-भुनी सी बातें कर रही थी। बड़ी जलमरनी है।

गुलाब का दूसरा सिगनल आया। गाडगिल और उतावला हुआ--अच्छा डार्लिंग इन्द्रा, टाटा।

——टाटा! ——इन्द्रा ने अनायास ही दोहरा दिया। इतने प्यार से तो यह गाडगिल उस रात को भी न बोला था। सोचा—मौसी की बातों को न भूलूं तो यह गाडगिल किसी और की तरफ आंख भी उठाकर न देखे।

गाडगिल चला गया। इन्द्रा को मौसी याद आ ही गई थी। सीधे उसीके पास पहुंची। खुशी में बेहाल थी, इसलिए दौड़ती हुई।

मौसी ने देखा। करम ठोक लिया। बोली——इन्द्रा, तू मेरी एक सिखावन भी नहीं सीख पाई?

इन्द्रा को ध्यान आया। बोली——गलती हुई मौसी। खुशी में दौड़ पड़ी थी।

—किस बात की खुशी?—मौसी ने सेसर की तरह पूछा।

—इन्द्रा मौसी से कैसे छिपाए! वह है न, कहता था···मौसी बहुत कुछ कहता था। मौसी मैं उससे ब्याह···

इन्द्रा एक ही वाक्य में खुश हुई, मैना सी फुदकी और छुईमुई-सी लज्जा गई। मौसी ने कहा—अरी जिस दिन ऐसा होगा उस दिन तेरे भाग ही फूटे समझो!

——तुम तो बुरी बात कहती हो मौसी! ——इन्द्रा बोली। स्वर में उलाहना था।

मौसी ने दृढ़ता से प्रत्याख्यान किया——सच बात तो बुरी ही लगती है।

इतना कहकर उन्होंने थोड़ा मुंह भी घुमाया। अब इन्द्रा की पैरों तले की जमीन खिसकने लगी। चट् से मौसी के गले में बाहें डाल दीं। मनावन के साथ बोली—मौसी, सच कहूं हूं। आज तो उसने बड़े अच्छे ढंग से बातें कीं। और कुछ पता मौसी! यह है न रेवती···डायन। गाडगिल पै डोरे डाल रही है। वह उधर से गुजरता है तो ऐसे देखती है ऐसे देखती है कि···

मौसी खिलखिलाकर हंस पड़ी। इन्द्रा की बात बंद हो गई पर हंसी नहीं। हंसते-हंसते पेट में बल पड़ गए और आंखों में आंसू छलक आए। किसी तरह दम ठीक करती हुई बोली——इन्द्रा, तुझे किसी दिन वह छोकरा कोठे पर बैठा आएगा और तू यही सोचेगी कि उसके घर में है; आने-जाने वाले उसके रिश्तेदार हैं। साजिन्दे इसलिए हैं कि उसे गाने-बजाने का शौक है। फिल्म का आदमी जो ठहरा।

इन्द्रा का मुंह उतर गया। फिर भी दलील की——तो मौसी, फिर वह

आजकल इतनी उदास क्यों रहती है। बालो में तेल तक नहीं।

मौसी ने आखे बनाकर कहा—किसीकी शामत आने वाली है !

——किसकी मौसी ?——इन्द्रा तो मौसी को सर्वज्ञ मानती थी।

मौसी ने कहा——तेरे गाडगिल की नहीं, किसी भले आदमी की।

इन्द्रा को गाडगिल के अलावा किसी और भले आदमी से वास्ता ही न था। उसकी चिन्ता दूर हो गई। पहली बार यह भी मान लिया कि कभी-कभी मौसी भी आदमी को समझने में भूल कर बैठती है। बस इसीसे मौसी की बातो मे उसका मन नही रमा। जल्दी ही छुट्टी ले ली और अपने हीरो की कल्पना मे खोई-खोई रेवती का उपहास करने लगी। जिसे रेवती न पाकर पागल हो उठी है, वही उसपर लट्टू है।

उसके जाने पर मौसी ने अपने-आपसे कहा——किसने इसे लडकी बना दिया; औरत की जात। पर मरद की बात नही समझती। यह तो किसी गवार के खूटे मे बकरी सी बधी रहेगी।

सांझ उतर आई थी। दफ्तरो के बाबू लौटने लगे थे। बाबू न्हाना भाई भी लौटे। मौसी ने देखा। बहुत दिनों से उससे बात ही नही हो पाई थी। वह मौसी को देखकर भी जब अपनी खोली की ओर बढने लगा तो मौसी ने टोका——न्हाना भाई, घर में दिया बालने की जल्दी पडी है क्या !

न्हाना रुका। बेमन से बोला—दिया किसके लिए मौसी ?

मौसी ने जादू पढा——मौसी से कह न। उसका भी इन्तजाम कर दूं। कह तो, यह गुलाब जो है, इसे ही तेरे साथ बाध दू।

गुलाब। गोरी गुदबुद सी गुलाब। गेंदे सी गुलाब न्हाना को पसन्द आई। रेवती आखो के सामने उतर आई थी। केवड़े के पत्ते सी रेवती। बोला——मौसी, तब तो मेरे घर का जलता हुआ दिया बुझ जाएगा।

मौसी को बुरा लगा——तो सिंहल की पद्मिनी लाएगा ?

न्हाना ने आज धीरज न खोया——पद्मिनी तो कहीं भी हो सकती है। मनु-भाई की वाडी में भी।

मौसी हंसी——ओह, वहां नजर है। तो बात चला दूं। जिसके साथ आई थी

वह तो उस पद्मिनी को छोड़ गया।

न्हाना को बुरा लगा---मौसी, मुझे इस तरह की बातें पसन्द नहीं।

मौसी ने कुटिल बान छोड़ा---तो लगता है न्हाना भाई को मोहब्बत हो गई। तभी आजकल कुछ बेहाल है।

न्हाना ने अपने-आपको अपमानित अनुभव किया। गर्व से बोला---न्हाना को बेहाल कर सके ऐसी सूरत नहीं पैदा हुई। देखा है, बालों में तेल तक नहीं। न्हाना से बात करने के बहाने ढूढ़ती है। सूरत मेरी नहीं, उसकी बिगडी है।

मौसी ने हंसना चाहा। पर अचरज ने हंसी भी छीन ली। अचरज इस बात का कि बौना न्हाना भी मन मे सोचता है कि पद्मिनी का दिल तोड दे, ऐसी उसमें ताकत है। फिर संभली तो बनकर बोली--तू तो बड़ा बेरहम हो गया रे न्हाना! पत्थर का दिल है, तरस भी नहीं खाता।

न्हाना और अकडा---तरस! किस पर तरस! मुझपर रुपये की धौंस जमाना चाहती है। उसी दिन पचीस हजार का चेक थमाकर बोली, इसे बैंक मे जमा करा देना।

मौसी को जैसे साप सूघ गया। पचीस हजार का चेक इस बौने को! नहीं, झूठ बोलता है। झूठ, नहीं, इतना बडा झूठ यह बित्ते भर का आदमी बोलने की ताकत ही कहां से पाएगा! बोली---तो तुमने ले लिया वह चेक? जमा करा लिया?

---हां!---न्हाना चमककर बोला।

मौसी फिर अपनी राह आई---तो अब तो शादी कर लो। किसीसे भी कर लो। हाथ मे पैसा भी आ गया है।

न्हाना मौसी की समझ पर क्षुब्ध हो उठा---वह चेक उसने मुझे बैंक मे अपने खाते में जमा कराने को दिया था। मै क्यों लेता उसकी पाप की कमाई!

मौसी को जो सदमा उसने अनजाने ही पहुचाया था, उससे वह नाराज हो उठी थी। उसका बड-बोलापन उसे बड़ा अखरा। बोली---अरे न्हाना, चेक जमा कराने को दिया तो कौन सा गजब हो गया। तू ठहरा बैंक का नौकर। बस करा लिया जरा सा काम।

मौसी के शब्दो में उसके प्रति तुच्छता का भाव था। 'बैंक का नौकर' न्हाला को यह बात गोली सी लगी। पर कह कुछ भी नही पाया। तिलमिलाकर रह गया और उसी मनोदशा मे बहा से चल दिया।

अजीव हाल है। दिन पर दिन बीत रहे है, पर रेवती, गोधूलि सी रेवती, धुध मे छिपे चाद सी रेवती उदास है। केतकी सी रेवती, पहाडी पर के बंधे सरोवर सी रेवती, वहल ही नहीं रही। लगती जैसे मुस्कराहट उदास हो गई हो। कभी लगती जैसे उदासी मुस्करा रही हो। पर गजव तो यह है कि वह अब भी सुन्दर ही लगती है। देखने वाले की निगाह खुद से अलग होकर अपने ही दिल मे दरार बना जाती है। वदली की चूनर मे लगी चादनी की गोट सी रेवती जैसे सिर्फ खूबसूरत लगने को पैदा हुई है।

मनुभाई। वे भी अजीब है। रेवती को देखते है तो आखे भर आती है। एकान्त मिलता है तो आंसू उमड आते है। कोई खा रहा है उन्हे। रेवती कभी-कभी खुद को गुनहगार समझती है। पूछती है—मैने दुखी किया है तुम्हे बापू !

उत्तर मिलता है—मै अपने कर्मो का मारा हू बिटिया !

—तुम्हारे भी कर्म ऐसे निर्मम हो सकते है बापू ! शका होती है।

—मै गंगा का साप हू रेवती—बापू कहते-कहते तिलमिला उठते है।

'बापू गंगा के साप !' कैसे मान ले रेवती। उसे तो बापू बूढ़े बट से लगते है जिनके स्नेह की जटाए जमीन मे घुस-घुसकर जीवन की रीढ को मजबूत किए जा रही है। जब बापू हसते है तो उनकी हसी उसे दुनिया के अधियारे मे मन के आलोक सी लगती है। वे तो अभागों के सिर के छाजन से है। आखो में आंसू आया तो लगता है छाजन चू रही है। छाजन ओलती वन गई है। गगा के सांप नहीं बापू। वे तो सापों से लिपटे मलयवन के चदन है। रेवती ने न मलयवन देखा है, न चंदन। साप देखे है पर पेड़ों से लिपटे नही। पर फिर भी जो कही नहीं देखा,

बापू को देखकर उसीकी कल्पना होती है। जो चारों ओर देखती आई है, वह बापू के बखान मे उतना अच्छा नही लगता, हालाकि आश्रय उसका भी लेना पडता है। उसने कहा—नही बापू। तुम तो सर्पों की गगा हो। कितना ही जहर उगलो। तुम अमृत ही बहाते हो।

मनुभाई मुस्कराए—पर तेरे मोह ने उस गगा को गदला कर दिया।

रेवती रोनी-रोनी हो गई। आसू बरौनियो मे ऐसे टग गए कि जैसे काटों में ओस की बूदे गुथ गई हों।—तो मै तुम्हारी पीडा हू ?

—हा।—मुस्कराते हुए मनुभाई ने कहा। पर गहरी उदासी उस एक शब्दी वाक्य का विराम बन गई। कुछ देर चुप रहे। बोले—रेवा, मैं बडा बुरा आदमी हूं। मैंने जीवन मे बड़े पाप किए। वे पाप मुझे निपूता कर गए, निरबस कर गए; अपना कहे जाने वाला कोई नही रहा। सिर्फ धन रह गया, पाप के घमण्ड सा धन। मैंने उससे दूर भागना चाहा। पर नहीं भाग सका। बंगला छोडकर नागफनी की बाडी में आया पर फिर भी न भाग सका। अब भी नाग बनकर उस धन का पहरा दे रहा हूं। फिर भी सोचता था कि एक दिन इस मोह से भी उबर जाऊंगा। न भी उबरा तो अपने किए की सजा पाकर तिर जाऊगा।

रेवती ने प्रश्नवाचक दृष्टि से उन्हें देखा। जैसे पूछ रही हो कि सजा पाकर कैसे तिर जाओगे ? मनुभाई ने समझाया : वे ही संन्यासी कहा करते थे कि कर्म का भोग ही उसकी मृत्यु है। उसके बंधन से छूटना चाहते हो तो उसे भोग से मिटा दो। पर इतने में तू आ गई। तू मेरा मोह बन गई। फिर से जीने, अच्छी तरह से जीने की लालसा पैदा हो रही है। बडा सा बंगला होता। तू उसमे मैना सी फुदकती, कोयल सी कूकती। रजनीगन्धा सी महकती। और मै बडे सुखी सा तुझे देखकर अपने भाग को सराहा करता।

रेवती मनुभाई के करीब आ गई थी। कंधे पर हाथ रखकर बोली—मगर बापू, मै तुम्हें वह सुख यहा इस नागफनी की बाडी में भी दे सकती हू। दौलत का मुझे कभी मोह ही नहीं हुआ। कभी होगा भी नही बापू। उसे तो मै लात मारकर आई हू।

पर इतना कहकर रेवती सहम सी गई। मनुभाई को भी लगा कि वह कुछ

ऐसा कह रही है जो नही कहना चाहती थी। इसीसे आगे सवाल ही नही किया। अपनी बात ही बढ़ाई—पर अब सुखी नही हो पाऊगा। मुझे लगता कि वह दिन दूर नहीं जब तू मुझसे घृणा करने लगेगी। पर करूं भी क्या। मैं उस पाप से उबर ही नही पाया। वह अपनी हजारों-लाखो बाहें बढा-बढ़ाकर मुझे अपनी ओर खींच लेता है। तुझे देखकर मन करता है कि उसका गला घोट डालू और अपनी बिटिया की सुख की लौ जगाकर अपनी जिन्दगी के अंधियारे को भी दूर कर लू। पर रेवा''

आज मनुभाई ने पहली बार; दो-दो बार उसे रेवा कहा था। मीठा लगा उसे पर साथ ही टीस दे गया। वह जयन्त भी तो'''। हा पत्रो मे जाने क्या-क्या लिखा है। भग्गू जयन्त! कायर जयन्त! बापू से उसकी कोई तुलना नही।

मनुभाई कह रहे थे—मैंने खुद से भागने की बडी कोशिश की। जिन्दगी से हट जाने की भी कोशिश की। पर कायर निकला। किए का फल भोगने को जिन्दा रह गया। तुझे पाकर वह अफसोस मिट गया। मेरे सुख की लौ चमक उठी पर उस सुख को मैं कैसे साधे रहू बिटिया!

उनका गला भर्रा गया था। भर्राए गले से ही कहते गए—बिटिया, यह कभी नही सोचा था कि कभी जिन्दगी मे अच्छा बनने की लालसा इतनी मजबूत होकर पैदा होगी। अच्छाई कभी-कभी अपनी ओर खींचती थी, पर तभी कच्चे धागे सा तनकर टूट जाती थी। इस बार उसमें बल आ रहा है। बहुत से कच्चे धागे मिलकर, बटकर डोर बन रहे है। जीवन की डोर। पर रेवा''''''

—चुप क्यों हो गए बापू।—रेवा ने अपना हाथ बापू की गोद मे रख दिया था। बोलो न। अपने उस गम को मुझे भी बताओ न।

मनुभाई की मूछे फरकी। पता नही पीड़ा से, व्यंग्य से या मजबूरी से। आंखो मे भी कुछ वैसी ही उलझन बनी रही। बोले—वह तो सत्य है बिटिया। नहीं कह पाऊगा। खुद कभी नही कह पाऊगा। सत्य के लिए ताकत चाहिए न। इस उम्र मे पहुंचकर वह भी नही रही। पहले पाप से भी नही डरता था। अब सच से भी घबड़ाने लगा हू।

उसके बाद मनुभाई वहा से हट गए थे। रेवती उनके विचारों मे ही खोई रही

थी। कौन दूसरा आ गया है। कैसे देख रहा है। उसे पता भी नही चला। जब जाने लगा तो चौंकी। सुन्दरम् था। पूछा--लौट क्यो चले ?

---दर्शन करने आया था---उसने कलाकार की भावुकता को आंखों में छल-छलाकर कहा।

रेवती हठात् मुस्करा उठी---मैं तो जीभ वाली देवी हूं। कलकत्ते की काली वाली जीभ नही। बोलने वाली जीभ है मेरे पास। कभी उसके मन की भी रख लिया करो।

सुन्दरम् चुप रह गया। ऐसी बातों का जवाब उसे सूझता ही नहीं। सूझता है तो तब वह अकेला ही होता है। बस चुप ही खड़ा रहा।

---बैठो न !---रेवती ने आमन्त्रित किया।

बैठा भी। पर चुप ही।

रेवती ने कुछ बात न पाकर पूछा---चित्र बन रहा है ?

सुन्दरम् ने सिर हिलाकर 'हां' कहा।

---तो कब मिलेगा मुझे ?---उसने पूछा।

सुन्दरम् की जीभ अटपटाई---वह तो मेरा होगा। मेरे इस चित्र का मूल्य।

उसने अभी तक पेंटिंग स्टैंड पर ही रखे गाय वाले चित्र की ओर इशारा कर दिया।

रेवती को उसकी बात अच्छी लगी---क्या करोगे उस चित्र को ? बेच दोगे ? अच्छे दामों की आशा है ?

सुन्दरम् अस्थिर सा हुआ---जाने क्यों लोग मेरी कला को बिकने वाली ही समझते है। मेरा वह चित्र मेरे मरने के बाद राष्ट्र का एक महान् सग्रह होगा।

उसकी आंखों मे आत्मविश्वास की दीप्ति थी। रेवती के दिल में गुदगुदी हुई। उसकी प्रशसा मे कामुक पुरुष की रसिकता नही, बल्कि कला-रसिक की निष्ठा थी।

उसने पूछा---तो कितना बन गया ?

उसने कहा---मैं खुद नहीं जानता कि कितना बन गया। कब तक बन पाएगा, यह भी नही जानता। वह तो जिन्दगी की हर सांस के साथ बनता ही रहेगा।

रेवती नही समझी। या जो समझी वह अजीब लगा। बोली---कवि भी हो।

--कहते-कहते मुस्करा उठी। जैसे सीप के सपुट मे मोतियो ने झाक लिया हो। सुन्दरम् ने उमग नहाकर कहा--सब कलाएं एक है। कविता चित्र है, चित्र काव्य है, सगीत भी वही, शिल्प भी वही।

रेवती कुछ शरारत के साथ बोली--पर कलाकारजी, यह तो बताओ कि मुझे इस खोली में कब तक रहना पडेगा।

उसने बडी सरलता से कहा--बस सिर्फ चित्र बनने तक।

--और चित्र कब तक बनेगा ?--वही पुराना प्रश्न।

उत्तर भी वैसा ही--यह मै नही जानता।

--तो मुझे यहा से जाना पडा तो।--उसने सुन्दरम् को घूरते हुए पूछा।

--तब तो मुझे भी अपने साथ ले चलना होगा। यह अधिकार मैं अपने चित्र के मूल्य मे माग सकता हू।

--पर मेरे साथ तुम कहा-कहा जाओगे चित्रकार ! --रेवती ने स्वर मे भावुकता भरकर कहा।

सुन्दरम् को लगा जैसे क्षितिज पर से उषा ने उसे आमन्त्रण दिया। आसमान से चादनी ने पुकारा। उसे यह प्रश्न नही, प्रस्ताव लगा। जैसे वह कह रही हो : जहा-जहा भी मै जाऊं तुम भी अवश्य आना। आओगे न। आ सकोगे न। उसे लगा जैसे उसकी कला या कला की साधना सामने खडी होकर उसकी परीक्षा ले रही है। उसने हुलास से भरकर कहा--मै तुम्हारे पीछे-पीछे सब जगह जाऊगा। मै तुम्हे न छोडूगा। जन्म मे भी नही, मृत्यु में भी नही। तुम मेरी होकर रहोगी। सफलता मे भी, विफलता मे भी।

सुन्दरम् आविष्ट की तरह बोल रहा था। उसकी आंखे कही ऊपर टगी थीं। सामने बैठी रेवती जैसे उस दृष्टि में थी ही नहीं। रेवती कुछ घबडा सी गई। बोली—किससे बात कर रहे हो सुन्दरम् !

सुन्दरम् ने उसी तरह कहा—जो मेरे भाव का अस्तित्व है, कला की कसौटी है, रेखाओं का जीवन और रगो की आत्मा है, जो मेरी सपूर्णता है।

रेवती को उसपर दया सी आई। यह क्या खेल खेल गई वह ! यह क्या हो गया इस सीधे-सादे चितेरे को। उसने उसे बाह पर से हिलाया—सुन्दरम्, मुझे तो देखो।

सुन्दरम् चौंक गया। उसे देखते ही लजा गया। रेवती पूछती रही—कहां चले गए थे तुम ?

उसने बोलने का प्रयत्न किया, 'मैं 'मैं' पर 'मैं' से आगे बढ़ ही नहीं सका। अपनी उस उलझन में वह जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। फिर घूमकर ऐसी तेजी से भागा कि रेवती को अचरज हुआ, पागल है। खुद को न समझने वाला पागल !

पर दूसरे क्षण लगा शायद खुद को न समझ सकने वाला पागल !

रेवती फिर अकेली रह गई। जेठ की धूप की तरह उसे ज्यादा देर कोई सह नहीं पाता। उसकी तरफ बढ़ते-बढ़ते ही क्यों लोग लौटने लगते हैं। उसे पीड़ा हुई। आंच जैसे जाड़े में लोगों को खींचती है। वह क्यों नहीं खींचती। या कि खींचती तो है पर फिर वही जेठ की धूप बन जाती है।···

सोचते-सोचते वह थकने सी लगी। खोली से बाहर चबूतरे पर चली आई। खम्भे के सहारे पीठ लगाकर बैठ गई। इधर देखा, उधर देखा। पारसी के मकान की खिड़की बन्द रहती है। शायद आजकल वहां कोई है नहीं। पर बाड़ी भी खाली सी लग रही थी। कहीं कोई नहीं। सिंधी परिवार अपनी चूहेदान सी खोली में ही बंद है या कहीं इधर-उधर। बाप-बेटे का तो पता ही नहीं रहता। रेवती ने तो देखा तक नहीं। सुना है, बेटा किसी सिनेमा में गेट-कीपर हो गया है, बाप दलाली करने लगा है। दलाली शब्द उसे बुरा लगता है। पर बंबई में तो बड़े-बड़े लोगों के नाम के सामने दलाल लिखा रहता है। वह क्या जाने यह सब। दलाली से कुछ घृणित सी व्यञ्जना ही उसे मिलती है। मां ने भी विले पार्ले के दो-एक घरों में बर्तन मांजने का काम सम्हाल लिया है। लड़कियां सिर्फ फैशन ही करती रहती हैं। इन्द्रा जब देखो, मौसी की छाया बनी रहती है। गुलाब का कुछ पता ही नहीं, उसे जो बोलते सुना भी नहीं। पास से कभी निकली तो गाती हुई; नहीं, गुनगुनाती हुई। जैसे उसके दिल में बंदी कोई भंवरा गुनगुन करता हो। अभी से सपने देखती है वह जरा सी लड़की।···

इतने में गुलाब बाहर से आती दिखाई दी। रेवती ने उसे देखा। बड़े गौर से देखा। वह उसकी तरफ देख ही नहीं रही थी; रेवती देखती रही। पर जाने क्यों आज उसे वह उतनी छोटी, कम-उम्र न लगी। जैसे नए-नए खिले फूल के

दल गदरा रहे हों। चाल भी अजीब। चंचल धारा सी नहीं। अजीब सा भारी-पन लिए। मुह पर भी कुंवारापन नहीं। तो तभी ? क्या हो सकता है ? कहीं···

रेवती ने अपनी जीभ आप काट ली। कितनी बुरी है वह। हर किसीके बारे में बुरा सोचती है। गुलाब अपनी खोली में चली गई थी। रेवती ने भी प्रयत्न करके उसे अपने मन से हटाया। पर खाली मन से किसीको हटाना भी तो मुश्किल है। न्हाना भाई के बारे में सोचने लगी। अजीब आदमी है न्हाना। अभी तो दफ्तर में होगा। शाम को आएगा तो उसे देखकर कैसी आख बचाएगा और आख बचाकर कैसे देखेगा।

यह क्या, यह तो वही आ रहा है। ऊह, वह भी तो अजीब है। जो नहीं है उसे भी देखने लगती है। अभी तो बिचारा बैंक में दूसरो की दौलत का हिसाब लगाकर अपना खून पानी कर रहा होगा। तभी ध्यान आया। इतवार है, इतवार है। आज तो वह अपना मालिक खुद है। वह तब तक बिल्कुल पास आ गया था। हाथ में थैला था जिससे हरी-हरी सब्जी बाहर झाक रही थी। न्हाना मानी सा आगे बढा। छोटी-छोटी सी टागों पर प्रौढ से धड़ और सिर को डोलते हुए देखकर उसे हंसी सी आई। न्हाना उससे आगे बढ चुका था। तब उससे रहा न गया। पुकारा——न्हाना भाई !

न्हाना ने कोशिश की कि टाल जाए, पर दिल से मजबूर होकर लौटना पडा। बोला——कहो रेवती बेन।

रेवती को उसने इतनी आत्मीयता से कभी नहीं पुकारा था। उसे अच्छा लगा। पर न्हाना को बुरा ही। जाने कैसे मुह से निकल गया था। शायद आदत से लाचार होकर। कोशिश करके उससे परायापन बनाए रखता था। आज संबोधन ने उसे हलका कर दिया। रेवती ने पूछा—सब्जी लाए हो ?

उसने सिर हिलाकर 'हा' कहा।

——क्या-क्या लाए हो, देखू। ——रेवती ने उसे और पास बुलाया।

वह पास आया। चबूतरा उसकी छाती तक आ रहा था। रेवती ने झुककर उसके हाथ से थैला ले लिया। सब्जी देखी——बड़ी अच्छी है। मुझे दे दो न भाई। मैं तो ताजी-सब्जी ला ही नहीं पाती।

न्हाना कुछ उलझन में ही था कि वह आगे बोली—आज तुम मेरे ही साथ खाना।

न्हाना को अचरज हुआ। मन को लगा, कितनी अच्छी है। इतनी देर में पहली बार आंख उठाकर उसका मुंह देखा : कितना प्यारा, नूना, जादू भरा। और दूसरे ही क्षण वह अपने मन की कमजोरी पर नकाब डालने के प्रयत्न में बाहर से रूक्ष हो गया। बोला—रोज होटल में ही खाता हूं। छुट्टी वाले दिन घर बना लेता हूं। आप क्यों तकलीफ करें।

रेवती ने उसे अपनी हंसी से परेशान करते हुए कहा—पर मेरा घर तो होटल नहीं। खाने के दाम भी नहीं देने पड़ेंगे। हां, सब्जी के दाम में भी नहीं दूंगी।

उसे फिर लगा कि रेवती बेहद अच्छी है। पर उसे देखने का साहस नहीं कर सका। आंखें इधर-उधर ही रखीं। उसे देखते ही जाने क्यों वह खुद को बहुत ही छोटा-तुच्छ समझने लगता है। उसने उसकी अच्छाई से अभिभूत हो कह दिया—सब्जी की भी कोई बात। मैं आपके लिए रोज ला दिया करूंगा।

—सच! —रेवती ने मुखर खुशी के साथ उसे खुश करने को चाहा। बोली—तब तो मेरा बड़ा भारी काम कर दिया करोगे।

न्हाना की छाती फूली। वह चाहता था कि इस समय उसे गाडगिल देखे। उसकी बातों को सुने और मेरे और अपने अन्तर को भी समझ ले। पर गाडगिल कहां था। उसे अफसोस ही हुआ। उसकी खुशी पर जलने वाला भी तो कोई हो। अच्छा कभी तो कोई जलेगा। उसने सब्जी सहित थैला वहीं छोड़ दिया। और चुपचाप बढ़ चला। रेवती ने पीछे से पुकारकर कहा—तो खाना यहीं खाना न्हाना भाई।

—जरूर—उसने जवाब दिया। और उस खुशी में मेंढक सा फुदकता बढ़ चला।

उस दिन मौसी का मन माना ही नहीं और वह रेवती के पास चली आई। कोई आता तो रेवती को खुशी ही होती। कुछ वक्त आसानी से कट जाता। पर

मौसी की सूरत उसमें अजीब सी जुगुप्सा जगाती थी। अतः रेवती खुश होकर भी न हो सकी। मुंह-देखी फिर भी कही--बड़े दिनों में आई मौसी।

मौसी बोली—सोचती थी कि कभी तुम्हीं आओगी। पर तुमने तो झांका ही नहीं। जैसे यह आंगन पार करने की ही कसम खा रखी है।

---ऐसी बात तो नहीं मौसी!---रेवती ने झेंप सी मिटाते कहा।

इसपर थोड़ी देर तो मौसी चुप रही, फिर अपने विषय पर आकर बोली--यह तूने आजकल कैसी सूरत बना रखी है!

क्यों मौसी, बुरी लगती हूं?—रेवती ने मुस्कराकर पूछा। उस मुस्कान में उसका आत्मविश्वास ही जैसे हंस रहा था।

मौसी उसकी बलैया लेती हुई बोली—अरी मोती तो मोती ही है। उसे साज-सिंगार की थोडे ही जरूरत होती है। उल्टे वह दूसरों का सिंगार बन जाता है।

रेवती ने छेड़ की—तुम तो अपनी जवानी की बात कर रही हो मौसी!

मौसी खुश ही हुई। रेवती का दिल एकदम मर ही नहीं गया। जवानी की बात करती है। बोली--पर एक बात कहूं हूं। यह रूप बडा बेसब्र है। जवानी के कंधों चढ़कर आता है और उसीको कंधा देकर चला जाता है। इसलिए औरत को चाहिए कि जवानी को न जाने दे। रूप तो उसका गुलाम होकर रहेगा ही।

रेवती को लगा कि मौसी की बात में सत्य तो है पर बात का अभिप्राय कुछ अरात् ही है। कहा—मौसी, पर जवानी का मोहताज क्यों बने कोई?

मौसी ने आंखें फैलाकर कहा---गजब की बात करती हो रानी। औरत हो के भी जवानी न मिले और उसका गुमान न हो तो बात ही क्या! बाद में तो हाथ ही मलने को रह जाते हैं। तूने वह कहानी नहीं सुनी रानी।

रेवती विनोद भाव से बात में रस लेने लगी थी। बोली--कौनसी कहानी मौसी?

—अरी वही। सुबह और शाम की--मौसी ने कहा। फिर और प्रतीक्षा किए बिना उसने सुनाना भी आरंभ कर दिया।

—भगवान् ने दो सुन्दरियां बनाईं। एक सुबह और दूसरी शाम। सुबह को उसने कौन सी खूबसूरती, कौन सी रंगीनी और कौन सी अदा नहीं बख्शी: चिड़ियों

की चहक, फूलों की महक, हवा की मस्ती। उषा की लाली को उसने उसपर लुटाया जिसे देख के चांद शरमाया, रात भागी और दुनिया की किस्मत जागी। पर बडबोली थी वह सुबह। भौंरे आए उससे प्यार करने। उन्हें उसने दुतकार दिया। बहारों ने उसके पास संदेस भेजे, पर उसने उन्हें लौटा दिया। उसका मन बावली हंसी सा था जो अपनी जवानी को आसमान सी बिना ओर-छोर की समझती है। बस वह यही सोचती रही कि अभी तो जवानी ने आंखें खोली ही हैं। प्यार भी करूंगी, रूप भी सजाऊंगी। पर अभी कौन सी जल्दी है। कुछ दिन और प्रेमियों के दिल तोड़ लूं। बस इसीमें बूढ़ी हो गई। बाल सफेद हो गए। न आवाज में कोयल की कूक रही और न मुस्कान में फूलों की हुलास। प्रेमी बेवफा हो गए। बस बाकी जिन्दगी जलते-जलते भाड़ सी बीती।'

—पर समझदार थी शाम। उतना रूप न होने पर भी जवानी ने कोर कसर न की। उसे देखकर पंछी भी घोंसलों में घुसने लगते। दुनिया भर थकान महसूस करती। कभी कहीं अंधेरे की गरज सुनाई देती। पर जवानी को इससे क्या। आसमान में तारे बरसाए तो उसने उनसे अपना सिंगार किया। रात की रानी उसकी सांसों में मचलने लगी। चांद उसके चक्कर लगाने लगा। चांदनी उसकी छाया के पीछे दौड़ने लगी। उसने उसे अपना चूनर बना लिया। फिर नींद की मोहिनी छोड़ी। सारी दुनिया उसमें खो गई। और वह शाम, जो कुछ ही घड़ी पहले मनहूस सी लगती थी, सब को प्यारी हो गई। कौन नहीं आया उससे प्यार करने! किसने चांद-तारों की कसम खाकर उसे अपने प्यार का विश्वास नहीं दिलाया और किसे उसने अपने प्यार के स्वर्ग का सुख नहीं दिया! उसने बड़े सुख भोगे, बड़े सुख बांटे। और जब मन किया तो अन्तर्धान हो गई। दुनिया को लगा, सपना देखा। पर वह तो सच था। पर सुबह ने उससे कुछ नहीं सीखा। वह हमेशा ही जवानी की परवाह न कर-करके बूढ़ी हो-होकर भाड़ सी तपती रही, दुनिया को थकान बांटती रही।

•

बात खास न थी, पर मौसी के कहने का ढंग खास था। रेवती सोचने लगी : सचमुच ही अभी तो वह जवान है। पर जब···

वह घबड़ा उठी। क्या ऐसा भी होता है। उफ, तब तो कोई सुन्दरम् उसका

चित्र बनाने को भी उत्सुक न होगा; कोई न्हाना बेबस होकर उसके हुक्म न मानेगा; कोई गाडगिल इश्क जमाने न आएगा; कोई जयन्त उसके इशारे पर घर न छोड देगा; और समस्त पराभव में भी वह विजय के दर्द से मुस्करा न सकेगी। सफेद बाल, पोपले गाल, बुझती आखे, टूटती सांसें। और तब भी अकेली हुई तो··· उफ··· नहीं। जवानी में चाहे, बेसहारा जी ले, पर तब नही, तब नही। तब के लिए सहारा चाहिए। पर कैसा सहारा!

गाय के चित्र पर आंख पडी · दूध भरे थन। करुणा और प्यार भरी आंखे और वह बछड़ा। उसे मा का पद देने वाला गोवत्स। वह न हो तो कामधेनु भी दुधारू न रहे। दूध ही उसका यौवन है; दूध ही उसका जीवन है। पर स्त्री का। रेवती का। रेवती माही नही हो सकती। इस दुनिया मे वह सृष्टि का गौरव पा ही नहीं सकती। बूढी होकर वह अपनी जवानी किसी और मे देख ही नहीं सकती। जवानी तो अमर हो सकती है।

'जवानी तो अमर हो सकती है।'—उसने मन ही मन दोहराया। फिर होंठो पर भी मन की गूंज आ गई—'जवानी तो अमर हो सकती है।'

मौसी उसके बावलेपन को देख रही थी। बात सुनी तो अचरज में डूब गई—क्या कहती हो रानी। कुछ नई सी बात लगी है? जवानी तो राजा ययाति की नही रही। फिर भला जवानी अमर कैसे होगी?

रेवती की आंखो मे गाय का बछडा था। बोली—मौसी, अपनी जवानी को मै अपनी संतान को दे जाऊगी। बूढ़ी होने से पहले ही उसे नये प्राणो में डाल दूगी।

उस कल्पना-सुख मे रेवती यह भी भूल गई कि यह सब संभव कैसे होगा। रेवती को मातृत्व का वरदान देने वाला कहा? मौसी ने कुटिलता से आघात किया—पर उसके पहले तो अपनी इस जवानी का नीलाम करना होगा।

रेवती तिलमिला उठी—'मौसी!' जैसे बेबस की चीख हो। उसने बड़ी ही निर्ममता से उसका स्वप्न तोड दिया था। कल्पना में भी मा न बनने दिया। उसकी तरल आखों मे जैसे बच्चे का शव तैरने लगा। उसके जीवन-नाटक में समय से पहले ही जैसे किसीने कफन की यवनिका डाल दी थी।

मौसी को भी लगा कि वह उसे गलत जगह छू गई। बिगड़ी बात बनाती हुई बोली—बुरा मान गई रानी। गवार हू। अच्छी बात भी बुरे ढग से कह बैठती हू। सचमुच ही औरत की जवानी कभी नहीं मरती, अगर उसके औलाद हो।

रेवती टूट सी गई थी। पर उसे लग रहा था कि मौसी के सामने कमजोर पड़-कर वह और भी टूट जाएगी, बिखर जाएगी। वह नीचे ही नीचे धंसी सी जा रही थी। उसने किसी तरह स्वय को सभाला, मन को दृढ करके बोली—नहीं मौसी, मुझे औलाद नहीं चाहिए। औलाद तो जवानी की चोर होती है। मै किसीको यो चोरी करने न दूगी। अपने लिए जी रही हूं। अपने लिए ही जवान रहूंगी। और जब जवानी न रहेगी तो मै भी न रहूंगी।

मौसी ने अनुभव किया कि रेवती की इस दुर्बलता से लाभ उठाया जा सकता है। बोली—रानी, तू है समझदार। फिर भी जाने क्यो मौके का फायदा नही उठा पा रही। तेरी कद्र मनुभाई की इस बाड़ी मे करने वाला कोई नही। कहूं हू कि तेरे पारखी बड़े-बड़े होटलो में, रईसो की कोठियों मे और फिल्मों मे हैं। तू एक बार 'हां' तो कर दे, फिर देखना जो बंबई तेरे पाव न चूमने लगे।

रेवती ने सुना। मौसी के बोल मनोहर लगे। उसने मौसी की आंखो मे देखा। वही उसे उन्ही शब्दों की घिनौनी व्यंजना मिली। वह सुखी हो भी न पाई थी कि घृणा से जलने लगी। उसने कठोर होकर कह दिया—मौसी, तुमने मुझे गलत समझा। मै खुद को बेच नही सकती। मै किसीकी वासना के हाथो खिलौना नही बन सकती।

मौसी ने सफाई दी—हाय रानी, गजब करती है तू भी। तू बेचेगी खुद को ? तू बनेगी किसीका खिलौना ? यह मैने कब कहा ! वे सब तेरी मुस्कान पर बिक जाएंगे। तेरे हाथ के खिलौने बन जाएंगे। अभी उस दिन मिला था मुझे बड़ा भारी सेठ। नहीं, फिल्म बनाने जा रहा है। कहता था : मौसी, ऐसी हीरोइन दिलाओ कि लोग पर्दे पर देखकर गश खाएं। मैने कहा 'ऐसी हीरोइन का पता तो सिर्फ मुझे ही है। पर वह रुपए से नहीं खरीदी जा सकती। वह इज्जतदार है। इज्जत करोगे तो पा सकोगे।

इतना कहकर वह रेवती की प्रतिक्रिया को जानने को रुकी। पर इस क्षण

उसका मुख एकदम भावहीन था। मौसी ने पूछा---तू 'हां' कर दे रानी। फिर देख बंबई की हर गली सड़क में जो तेरी ही तसवीरें न चिपकी हों।

रेवती ने पीड़ा से भरकर कहा---मौसी, मुझे यह कुछ भी नहीं चाहिए। मैं हीरोइन भी नहीं बनना चाहती। मैं तो सिर्फ औरत बनी रहना चाहती हूं।

मौसी ने समझाया---हीरोइन क्या औरत नहीं होती ? औरत वही, जो मर्दों के दिलों में आग और दिमागों में तूफान पैदा कर सके। भला रानी, इस खोली में पड़े-पड़े बुढ़िया हो जाने में भी कोई तुक है ! बाहर निकलेगी तो नाम और पैसा दोनों मिलेंगे।

रेवती अपने ही मन की गलियों में भटकती सी बोली---मौसी, पैसे की बात न करो। पैसा मुझे कभी खरीद न सकेगा। मैं पैसे पर लात मार चुकी हूं। अब मैं उसी पैसे पर क्या गिरूंगी !

मौसी प्यार से बोली---बड़ी भोली है री ! अरी तू गिरेगी पैसे पर ! बावली, पैसा बरसेगा तेरे ऊपर। लक्ष्मी आप चूमेगी तेरे पैर। तू ठुकराएगी, वह तुझसे लिपटेगा।

रेवती ने अपने-आपसे उलझते हुए कहा---अब यह चर्चा छोड़ दो मौसी। मुझे यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता।

मौसी ने जीभ की मिठास तब भी नहीं छोड़ी---अच्छा तो मैं चलूं। तू सोच ले। एक बात यह भी बता दूं कि यह तेरी गलती है कि औरत बिना गिरे कुछ हो नहीं सकती। एक बार मेरे साथ यहां से बाहर तो निकलियो, तब पता चलेगा।

मौसी चली गई। रेवती एकांत पाकर और भी उलझ उठी।

रेवती सचमुच ही उलझ चली। पुरुष के संग से वंचित रेवती मातृत्व की कामना से पीड़ित होने लगी। वह एकांत में बैठती तो कोई उसे उसीके मन के किसी कोने से पुकारता ''मां ! मां !! कितना गौरवशाली पद है 'मां' ! गाय भी मां बनकर

कितनी तृप्त होती है। कहीं भी वह किसी बच्चे को देखती उसे वह बड़ा प्यारा लगता। सोते-सोते कभी कोई उसके कानों में कह जाता, 'मा'। वह सपना देखती कोई मा-मा कहकर उसकी टांगों में लिपट जाता। कभी धूल में भरा आकर गोद में बैठ जाता। कभी दूधिया दांतों की हंसी में चमका-चमकाकर उसे पुलकों से भर देता। कभी वह छिप जाता और वह ढूंढती। कितना प्यारा है उसका लाल, कान्ह सा सांवला, घुंघराली लटों में मा की मुग्ध दृष्टि खो जाती, आंखों में कैसी चमक है! वह उसे छाती से कसकर लगा लेती। माथा, गाल, होंठ, ठोडी बारबार चूमती और फिर अतृप्त सी उसे बाहों मे भर लेती। पुरुष की निर्ममता को न जानने वाले उसके स्तन अपने लाल की तिलक पर कैसे उन्मुख से हो उठते। लगता दूध की नदियां बहा देंगे। वह सोते-सोते अपने हाथों से उन्हें बरजने लगती। कभी दूध का लोभी मुनुआ उतावली में अपने दूधिया दांतों मे स्तन को काट लेता। कितनी पीडा होती। पर कितना सुख मिलता। रेवती एकांत मे शिशु के उसी दंतक्षत की कामना करती। सोने जाती तो सपनों में उसीकी चाहना करती। उसके अंग-अंग बंधन से तोडते जान पड़ते। ऐसी मनोदशा मे निर्दय पुरुष कितना सुख देता है। पर वह पुरुष की कल्पना मे मूढ़ हो उठी थी। पुरुष की स्मृति के साथ किंवीर्य, कायर, भग्गू, कामुक या हीन पुरुष ही सामने आते। वह उनमें से किसीको भी प्यार नहीं कर सकती। किसीको छूने भी नहीं दे सकती अपने अंगों को। पर अंग तो चाहते हैं किसी द्वितीय का स्पर्श। पर वह द्वितीय कौन। पुरुष तो वर्जित है। वर्जित है वह व्यभिचारी चेष्टाओं वाला। उसके अंगों से क्रीड़ा वही कर सकता है जो राम सा प्यारा, कान्हा सा नटखट है, जिसके कलियों मे हाथ-पांव है, जो डगमगाते पैरों से चलता है, जो धूल भरे मुह को भी चूमने की लालसा जगाता है, जो ब्लाउज के बटन खोलता है 'मां दूध, मा दूध' चिल्लाने लगता है, जिसके आह्वान पर चोली ही भीग उठती है। जिसको देखते ही वक्ष का रक्त क्षीर बन जाता है।

रेवती ने रति-सुख नही जाना था। पर मा बने बिना ही मातृत्व के परम सुख को मनोलोक मे रहकर ही भोगने की बान डाल ली थी। कई बार जब वह सोकर उठी तो उसने देखा चोली हटी हुई है। ब्लाउज के बटन खुले है। स्तन सुग्गों से सटे बैठे है। हाय, उस 'खोली' में कौन आया। किसका हाथ उसके सौंदर्य की

परिखा को लाँघ गया। फिर वह मन ही मन खुश हो उठती, मुस्कराहट को खुद से ही छिपाना चाहती, पर वह हठी बालक सी होंठो पर मचलने लगती। वह सोचती : वही होगा, वही होगा—मेरे सपनों का कान्हा, मेरा लाल। मेरा मानस-पुत्र, नटखट पाजी। दूध पीने आया होगा। हाय, पर निर्मोही दूध पीकर रुकता भी तो नहीं। पाजी'''पर बडा प्यारा। कहा भाग जाता है। क्यों छिपकर ही आने की आदत है। मोरे गोपाल, नदलाल'''नही, मेरा लाल। सिर्फ मेरा लाल, मरियम का लाल। मै मरियम, मै कुवारी मा। मेरा लाल। वह फिर अपने खुले वक्ष पर किसीके मुह के स्पर्श का अनुभव करती। कोई फिर उसके स्तनों को काट-काटकर रक्त को दूध बना डालता। कान्हा'''वह जाने न देगी उस नटखट को; बाहो मे बांधकर रख लेगी। छाती से अलग न होने देगी। भागेगा तो आंख के काजर की डोर से बाध लाएगी। नही जाने देगी। नही जाने देगी''''''

रेवती बावली हो उठती। शय्या मे उठती भी नही, वक्ष को ढापती भी नही। उसके स्तन्य का लोभी वह कान्हा कहीं इन्हींके लोभ मे फिर आ जाए। उसके स्तन ही शुभ्र कपोतो सी ग्रीवा उठा-उठाकर उसे बुलाते। ओह, क्यों नहीं आता। मरियम को पा सकती तो पूछती कि तेरा कान्हा कैसे आ गया था। तूने पुकारा था उसे ?

वह कहेगी . 'ना' मै तो खोई-खोई सी रहती थी; अकेली-अकेली फिरती थी। मेरे अन्तर मे कही कोई हलचल मची रहती थी। मुझे इस दुनिया का कुछ भी अच्छा नही लगता था। मै आंखें बद करके जाने किन लोगों में उड़ जाती थी। तब मै अनुभव करती कि मे जाने कैसे तेज मे लिपटी हू। सच मुझे पता ही नही चला कि कब क्या हो गई। एक दिन आंख खोली तो मेरी बगल मे वह लेटा था; सोने की मूरत, चाद-सूरज के तेज से बना अमृत से धोया-धोया। उफ, कितना प्यारा था। मैने किसी पुरुष को छुआ तक न था। वे मुझे कलुषित लगते थे। पर उसे देखकर तो मैने अपना वक्ष नंगा कर दिया। मैने अपने कठोर स्तनों को उसके पंखुड़ी से होठों पर रख दिया। फिर तो गजब ही हो गया। वे कोमल पड गए। होंठ कठोर हो गए। उनमें दूध उमड पड़ा। मै सचमुच ही मां बन गई। सचमुच ही मां ! उफ, कैसा अजीब सुख है ! और किसी सुख को नहीं जानती। सिर्फ एक

ही सुख जानती हूं—उसे दूध पिलाने के सुख को। और सोचती हू कि वही सब कुछ है, उससे बढ़कर कही कोई सुख हो ही नही सकता।

रेवती निराश होती - हाय, इसने तो तदबीर बताई ही नहीं। कैसे पाऊ! कैसे बुलाऊ! कहा जाकर पुकारूं कि वह आकर मेरे वक्ष से चिपट जाए!

रेवती खुश भी होती सच! तब तो एक दिन वह भी मेरी कोख को चीर-कर जनमेगा। तब तो मैं भी कल्पलता कामधेनु क्षीरसर, सब कुछ बन जाऊगी। वह जरूर कही मेरे वक्ष मे ही छिपा है। तभी तो ये पाजी इतने उद्धत रहते हैं। इन्हे उद्दड बनाने वाला वही है। ओ मेरे लाल, इस वक्ष को चीरकर ही आजा।

रेवती की नसे तनने लगती। लगता, नसों का जाल खिचते-खिचते टूट जाएगा, हड्डिया चटक उठेंगी। वह ऊधमी उसके भीतर ही बैठे-बैठे जो उसे तंग करता है। कर ले तग। जब बाहर आएगा तो मैंने भी तुझे ओखल से न बाधा तो मेरा नाम यशोदा नहीं!

यशोदा!·· वह मन ही मन हंसती: यशोदा क्यों, रेवती। मेरा नाम रेवती ही सही। पर तेरा नाम नहीं बदलूगी। तू तो कान्हा ही रहेगा। वैसा ही सलोना, नटखट, चोर; माखन नही, मां के प्यार का चोर। हाय पापी, देर क्यो कर रहा है! अभी जा। तुझे अपनी मा की कसम। मां की कसम!

——मां · ···मां······।——रेवती पुकार उठती—'मा'।

उसकी एक पुकार हजार आवाजो मे गूंजती।—मा ऽ ऽ ऽ ऽ। पर जब आवाज भी डूब जाती, कान्ह की सूरत न दिखाई देती तो उसकी आखों का प्यार आंसू बन-कर बहने लगता। वह विकल होकर अपना सिर कही भी दे मारती! फूट-फूटकर रोने लगती। हल्की होती तो सोचती कि कितनी बावली है वह! ऐसे भी किसीने बच्चा पाया, कोई मा बनी। मरियम। उसकी छोडो। रेवती कभी मां नही हो पाएगी, कभी नही हो पाएगी।

वह होली सी जल उठती। पर ऐसी होली जिसकी लपटें अन्तर्मुखी हों। तब वह खोली से बाहर आ जाती। खोली की दीवालें, उसे लगता आपस में टकरा जाएंगी। बाहर आकर खुले आसमान के नीचे उसे सिर्फ सकरी धरती और दड़बों से मकान ही दिखाई देते। जिन आदमियों के चेहरे सामने पड़ते वे उसे घिनौने

लगते। वह फिर अपने-आपमे सिमटने लगती, अपने-आपमें रमने लगती। पर कब तक। फिर बाहर से खिंच आती। उसे कहीं भी शांति नहीं मिलती। भीतर दहन है, बाहर झुलसन है।

गुलाब को वह देखती आ रही है। वह जरूर ही मा बन जाएगी। दुनिया उसे इसपर जाने क्या-क्या कहेगी। पर मैं तो उससे भी डाह करूंगी। वह मा तो है। मैं बेटी, पत्नी, प्रिया, कुछ भी तो नहीं रह सकी। मैं मां भी न बन सकी तो? पर नहीं, मैं बनूंगी। अवश्य बनूंगी। मा बनकर ही रहूंगी। नहीं तो मर जाऊंगी। मुझे मा बनना ही है।

पर दूसरे ही क्षण शंका उठती पर कैसे? जैसे पहाड से उतरता हुआ सोता अचानक किसी उठान से टकरा जाता, उछलने लगता, आगे बढ़ने को मचलने लगता। तड़पन से भर उठता। वही हालत उसकी होती। ठोकर सी लग जाती। मन की उमग ढह जाती। कैसे! भला कैसे! वह पीड़ित सी सोचती ही रहती: हां कैसे!

वह जाने क्या-क्या सोचती। कैसी-कैसी तदबीरें। पर कोई समझ में न आती। मौसी का ध्यान आता: हा। मौसी के पास शायद कोई तदबीर हो। वह बुरी-बुरी लगने वाली मौसी क्षण भर को प्यारी हो उठती। उस समय उसे मौसी के मिस्सी लगे मसूडे और वासना भरे नयन नही दिखाई देते। उसके होठों की वह जुगुप्सा भरी सिकुडन भी नहीं दीखती। वह उसे प्रज्ञा वाली, लोक-ज्ञान वाली समर्थ महिला जान पडती।

बस वह खुश होने लगती। पर कितनी छोटी खुशी। थोडी खुशी। क्षणिक खुशी। उसे याद आता: मौसी होटलों, बंगलों, कोठियों और फिल्मो के स्टूडियो की बाते करती है। उसकी तदबीर तो उन्हींके माध्यम से फलित होगी। वे सब···उफ, ···नहीं, नहीं, हर्गिज नहीं। वह इतने नीचे न गिरेगी, कभी नही गिरेगी। हर्गिज नहीं गिरेगी। तो·· तो···वन्ध्या ही रह जाऊंगी, निपूती ही रह जाऊंगी! बन्जर ही बनी रहूंगी।

बन्जर···रेवती के आंसू उमड आते। यह भी भूल जाती कि जाने कितनी आंखें उसे वहां रोते-रोते देख सकती हैं। विधना को कोसने लगती: तूने मातृत्व का

कोई विधान क्यों नही रचा ! स्त्री को इतना गिरने पर क्यो मजबूर किया ! उसे और इतनी हीनता से क्यो भर दिया !

कोई उसकी शंका का जवाब देता इसलिए कि वह अपनी सृष्टि के महत्त्व को जान सके। इसलिए कि वह उसे पाप के कीचड से उपजे पुण्य के कमल की तरह खिला सके। यह सब न होता, संतान भी पेडो से मिल जाया करती तो इस दुनिया को प्रेम के सूत्र मे कोई कैसे बाधता ?

वह अपने मन के तर्क का प्रतीकार करती : पर यह स्त्री के भाग्य मे ही क्यों ? पुरुष को क्यो नहीं यह संताप दिया गया ?

इसलिए कि उसे इसके अयोग्य समझा गया · उसी आवाज ने कहा : इसलिए कि भगवान् की सब से सुदर सृष्टि स्त्री है और उस सौंदर्य की परपरा को वही कायम रख सकती है।

पर रेवती का समाधान नही होता। उसे कोई तर्क, कोई प्रतितर्क ठीक नही लगता। कही बिना किसी रास्ते को पाए वह बूढी हो गई तो ?

रेवती की कल्पना में लकडी के सहारे कमर झुकाए चलने वाली बुढ़िया प्रत्यक्ष हो उठती। मुंह पर झुरिया, बदन की खाल ढीली, आखों की जोत मद्धिम, बाल सफेद और नित झडते हुए, दांत गिरते और हिलते हुए; मौत पास ही है। पर उस तक पहुंचने का रास्ता जैसे जल्दी नहीं तय कर पाएगी, नहीं कर पाएगी तय ! उफ, अगर वह लकड़ी बच्चा बन सकती तो वह उसे हर ठोकर से बचाता। उसके जीवन का उत्साह और आख की जोत बन जाता। उसे मृत्यु के पास खुद चलकर के जाना ही न पडता और न उसकी दारुण प्रतीक्षा ही करनी पडती। बस किसी दिन वह सोई की सोई रह जाती। जीवन-यात्रा सपने सी पूरी हो जाती। सपना भी सुख की कल्पनाओं से भरा। पर वह लकडी बच्चा बन सके तब न।

बच्चा ! बच्चा ! बच्चा !

रेवती नहीं रह सकेगी उसके बिना। वह सब अभिभव सहेगी उसे पाने के लिए जितना भी नीचे गिरना होगा, गिरेगी। हर होटल, कोठी, बगले, फिल्म स्टूडियो मे जाएगी अपने बच्चे की खोज में। जरूर जाएगी। वह स्त्री इसी एक अधिकार के लिए बनी है। वह सिर्फ भोग्या नहीं, जननी भी है। वह सृष्टि करेगी। भगवान् के

कार्य को बढ़ाएगी। अपने यौवन को नया जन्म देगी, जरूर देगी।

वह उठ खड़ी हुई। मन में मौसी थी। उधर ही चली। अचानक किसीने प्यार भरी आवाज में टोका -- पर यह तो प्यार की नहीं पाप की संतान होगी।

पाप की संतान ! उसने इधर-उधर देखा। कहीं भी तो कोई नहीं। उसका मन ही उसे छल भरी बातें सुना-सुनाकर उलझा रहा है। नहीं, वह इसकी एक न सुनेगी। संतान में पाप कहीं नहीं होता, कभी नहीं होता।

एक बच्चे का भोला निर्दोष मुख उसकी आंखों में छा गया। उसने अपने मन से पूछा : कहीं यह भी पाप हो सकता है? कितनी निर्मल आंखें ! कितना अकलुष मन ! होठों पर जैसे प्यार और सचाई की मुहर सी लगी हो। देखो हंस रहा है। कैसी पवित्र है हंसी ! गंगा के कल-कल नाद सी हंसी। अमृत के धोवन सी मुस्कान। इसे पाप छू भी तो नहीं गया। जमीन खोदकर ही हीरा निकालते हैं न। वहां क्या-क्या नहीं होता। पर हीरे को उससे क्या ! दूसरों की बुराई उसे थोड़े ही छू लेगी। वह तो सिर्फ अच्छाई का बना होता है। इसीलिए पत्थर नहीं हीरा कहलाता है। पत्थरों की इस दुनिया में ये बच्चे हीरों से हमेशा दमकेंगे। हाय, इन्हें पापी कहने वाले, तुम ही पापी हो। मैं नहीं मानूंगी, मैं नहीं मानूंगी। मैं मां बनकर ही रहूंगी।

रेवती मौसी के पास चली आई। दरवाजा खुला था। बिना आहट के ही अंदर पहुंच गई। देखा, मौसी इन्द्रा की चोटी कर रही थी। रेवती को देखा। मौसी की आंखों में खुशी चमक उठी। हाथ से अधगुथी चोटी छूट गई। इन्द्रा ने देखा। वह फीकी सी पड़ गई। जाने क्यों रेवती को सुंदर न मानकर भी उसका मन उसकी छाया से भी हारने लगता है। मौसी ने सीतल पाटी से जरा सा खिसकते हुए कहा---आओ रानी। बड़ी उमर हो तुम्हारी। आज तो तुमने मौसी की तकदीर ही जगा दी। बैठो भी। सच कहूं हूं। बड़ी लंबी उम्र होगी तेरी। अभी याद कर रही थी। पूछ ले इन्द्रा से जो झूठ कहूं।

मौसी ने सफेद झूठ कहा था। पर इन्द्रा निषेध न कर सकी। रेवती ने पास बैठते हुए कहा---मौसी, लंबी उम्र कौन सी अच्छी। जवानी थोड़े ही बढ़ेगी उससे ?

रेवती अचानक ही कह गई और कहकर उसे अपने ऊपर ग्लानि भी हुई। खास

तौर से इन्द्रा की उपस्थिति के कारण उसे बुरा लगा। भला यह भी कहने की कोई बात ! वह सोचती कि यह भी है एक जवानी पर ही गुजर करने वाली। रेवती का मुंह जैसे वकबका उठा।

मौसी हंसी। जैसे बोलों में जहर घोला। बोली—आज की तूने समझदारी की बात ! जिन्दगी चाहे जितनी भी लंबी हो, जवानी के दिन तो बस चार, उसमें से भी दो सोचने-समझने और बाकी धक्के खाने में बिता दिए तो रह ही क्या गया ! मैं कह रही थी रानी, इस इन्द्रा से, देख, रूप हो तो हमारी रेवती जैसा; देख के आखों की भूख मिट जाए। भीड़ में घुस जाए तो वह भी पानी सी फटती चले। सड़क पर आ जाए तो आंखें बिछने लगें। पर बड़ी भोली है। अपनी ताकत का ही पता नहीं इसे।

रेवती ने शर्म से भरकर कहा—रहने दो मौसी।

पर मौसी न मानी—क्या बात करती हो रानी ! मौसी तो सच बात ढोल पीट के कहती है। औरत-औरत के रूप को देखकर जले है। पर एक मौसी है कि सुंदर को देखकर दिल जुड़े है। सच कहूं हूं रानी, बड़े पुन्न से रूप और जवानी मिले हैं। इस इन्द्रा को मैं बार-बार समझाऊं हूं। देख कुछ सीख-पढ़ ले मौसी से। नहीं बैल की बैल रह जाएगी। जब जवानी आए है तो रूप दुहाई देता फिरे है। सच जानो तो जवानी अपने-आपमें रूप है। उसे किसी और रूप की जरूरत ही नहीं। पर समझदारी की फिर भी जरूरत है। यही उम्र है जब चाहे दुनिया तुझे बेवकूफ बना ले और चाहे तू दुनिया को बेवकूफ बना ले।

रेवती के लिए वहां बैठना मुश्किल हो गया। पर एक दम से उठ भी नहीं सकी। मौसी बोलती तो इन्द्रा उसे सराहना से भरकर देखती। मौसी उससे नई स्फूर्ति पाकर आगे बढ़ती—इसकी बहन को ही लो। जवानी तो चार दिन पहले से ही आ गई पर अक्ल नहीं आई। बस वैसा ही नतीजा हो गया। अभी कोई नहीं जानता। पर कहे हूं जो चार महीने में बच्चा न जन दे। फिर देखना जो सारा जहान थू-थू न करे। अरे जवानी बच्चे जनने को थोड़े ही है !

अब रेवती से बैठा न रहा जा सका। उठते हुए बोली—अच्छा मौसी, चलूं।

—इतनी जल्दी— मौसी ने कुछ अपमानित सा अनुभव किया।

—बस यूं ही देखने चली आई थी।—उसने कहा।

—अच्छा तो फिर आइयो।—मौसी अपमान की वेदना को दबाकर बोली।

पर रेवती कुछ इतनी खिन्न थी कि मन रखने को भी नहीं कह सकी कि 'हां आऊंगी मौसी।'

दिन बीतते गए। रेवती की उलझन बढ़ती गई। जैसे दुराहे पर खड़ा थका-मादा यात्री यह न जानता हो कि उसे किधर जाना है। रात में नींद भी ढंग से नहीं आती। खोली के बाहर चबूतरे पर आकर खंभे के सहारे बैठे-बैठे घंटों बिता देती। मनुभाई उससे कम ही मिलते। उनके अपने अंदर तूफान उमड़ रहा था। रेवती सोचती कि वे उसकी परेशानी से परेशान हैं। इसीसे कभी उनकी वेदना की गहराई में जा ही न सकी। सुंदरम् नित उसके पास आता, बावला सा देखकर चला जाता। चित्र की प्रगति क्या है, उसने कभी बताया ही नहीं। न्हाना उसके छोटे-मोटे काम आ ही जाया करता। कभी साग-सब्जी ला देता, कभी बैंक से रुपया निकाल लाता। रेवती के दस्तखत देखकर वह कभी-कभी कह बैठता—बड़े सीधे-सादे हैं। कोशिश करने पर कोई भी नकल कर सकता है।

रेवती ने एक बार उससे हंसकर कह भी दिया था—तो तुम्हीं कोशिश कर लो न! मैं दस्तखत करने के झंझट से भी बच जाऊंगी। तुम मेरे सेक्रेटरी बन जाना तब।

न्हाना की आंखें चमक उठी थीं पर उसने कहा कुछ नहीं था।

एक दिन रात को जब उसे नींद नहीं आई और करवटें लेती-लेती थक गई तो खोली से बाहर निकल आई। कुछ देर चबूतरे पर उसी खंभे के सहारे बैठी और जब मच्छरों ने कान पर भनभनाकर तंग करना शुरू किया तो उठकर आंगन में टहलने लगी। रात ओस से बोझिल हवा के पंखों पर बैठ, जैसे सारी दुनिया की फेरी दे रही थी। समुद्र का गर्जन नारियल के पेड़ों की सरसराहट में अजीब सा

सुनाई पड़ता। नागफनी की बाड़ अंधेरे की दीवार सी दिखाई दे रही थी। उसके कांटे तक अंधेरे के अंबार में ढक गए थे। कोई नेवला दौड़ता हुआ उसके पास से निकल गया, और निर्द्वंद्व भाव से नागफनी की बाड़ में घुस गया। रेवती को एक सर-सराहट की सी आवाज में अधिक कुछ भी पता नहीं चला। पारसी के दुखने मकान की सपाट दीवाल बड़ी अर्थहीन सी लग रही थी। अचानक रेवती की दृष्टि सुन्दरम् की खोली पर पड़ी। खिड़की के द्वार खुले थे। रोशनी बाहर झांक रही थी। उसने सोचा—जरूर ही चित्र बना रहा होगा, उसीका। कितने दिनों से लगा है। काफी बन चुका होगा। जब उसने उसके वक्ष को कूचियों से उभारा होगा तो···

बदन कटीला हो उठा। वह उसकी खोली की ओर बढ़ती रही। पास पहुंच के कुछ झिझकी—कोई देख ले तो। इस रात में सुन्दरम् की खोली में आते-जाते देखकर बस एक ही बात तो सोच पाएगा देखने वाला।

उसके पांव रुक गए पर मन नहीं रुका—चित्र तो देखना ही है, वैसे तो वह पूरा होने से पहले नहीं दिखाएगा। जाने कब तक इन्तजार कराए। बड़ा सकोची है।

बस उसके पांव बढ़ चले। उत्सुकता ने लोक-भय पर विजय पा ली। दबे पांव से वह चबूतरे पर चढ़ी। फिर धीरे से देहली पर पांव रखा और एक हाथ से चौखट थामकर अंदर झांका। लैम्प जल रहा था और अंदर धरती पर ही अधनंगा सुन्दरम् सोया पड़ा था। हाथ में उसके ब्रुश अब भी था। रंगों की प्लेट भी पास ही थी। पर चित्र कहीं नहीं दिखाई दे रहा था। उसके पास तो जो चित्र-फलक दीवाल के सहारे रखा था उसपर एक भी कूची नहीं लगी थी।

रेवती को बड़ी निराशा हुई। पर यह कैसे संभव कि चित्र अभी तक कुछ भी न बना हो। वह कितने दिनों से काम कर रहा है उसपर। जरूर ही खोली में किसी ओट में होगा। उसने चौखट लांघ ली। बिलकुल सुन्दरम् के पास चली आई। इधर देखा, उधर देखा, चारों तरफ देखा पर उसे अपना चित्र कहीं भी तो नहीं दिखाई दिया। खोली में छिपाकर रख सकने लायक कोई स्थान भी तो न था। तो चित्र उसने बनाया ही नहीं; बनाना शुरू तक नहीं किया। पर क्यों? यह प्रश्न उसके सामने बार-बार आ जाता, पर उत्तर में सोए सुंदरम् से अधिक कुछ भी तो नहीं देख पाती।

सुंदरम् के मुंह पर सीधे रोशनी पड़ रही थी। फिर भी वह सुख के साथ सोया था। उसका पक्का रंग तब रेवती को अच्छा लगा। मुंह पर बच्चे जैसा भाव। बच्चा·····

रेवती मोह में भरकर उसकी ओर देखने लगी। वह उसके इतने पास खड़ी थी कि बाहर की हवा भीतर झांकती भी तो उसकी साड़ी का किनारा सुन्दरम् से छू-छू जाता। इतने में सुन्दरम् ने करवट ली और बाहु कुछ ऐसी फेंकी कि रेवती का दाया पाव तो करवट में आ गया और बाहु दोनो पावों मे फस सी गई। रेवती तत्काल उछलकर अलग हो गई। तभी सुन्दरम् की आखे खुल गई। आखे खुलते ही उसने जो देखा, उसपर यकीन ही न हुआ। क्या उसका चित्र अपने-आप बन गया? कला की देवी ने उसकी असमर्थता जानकर उसकी सहायता की? या, या रेवती ही स्वय प्रकट हो गई? उसकी असफल साधना पर दया करने चली आई?

वह उसे आंखें फाड़-फाड़कर देखता रहा। अपने अचरज में उठ बैठने तक का ध्यान नही रहा। रेवती एक क्षण अस्तव्यस्त रही, पर शीघ्र ही सदा जैसी हो गई। आखों से चमकीली किरणें निकल-निकलकर सुन्दरम् पर पडती रही और ईषत् मुस्कान से वे होंठ और भी सुन्दर हो गए।

सुंदरम् को तो बोलने को शब्द मिल ही नही रहे थे। रेवती ने ही निशा-मौन को तोड़ा—मैं रेवती हूं सुंदरम्।

सुंदरम् पर वशी के से बोलों को जादू छाया। वह उठ बैठा। धीमे से बोला—तुम···तुम···

उसने रेवती को 'तुम' पहली ही बार कहा था। रेवती ने मुस्कराकर समर्थन किया—हा।

—कैसे आई?—उसने झिझक के साथ पूछा।

—चोरी करने। रेवती के बोलो की मिठास बढ़ती ही गई।

सुंदरम् बालकों जैसी खुशी मे भर गया। बोला कुछ भी नहीं। रेवती कहती गई—नीद नही आ रही थी खोली में। गर्मी लगी, बाहर निकल आई। देखा, तुम्हारी खोली मे रोशनी हो रही है। सोचा, चित्र बना रहे होंगे। बस चली आई। अपने चित्र को देखने का लोभ रोक ही नहीं सकी।

चित्र की चर्चा से सुन्दरम् पीला पड गया था, ग्रांखें बुझ सी गई थी। उसने कुछ कहने का प्रयत्न भी किया। पर जीभ उठ ही नही पाई। रेवती उस नाटकीय परिस्थिति मे कुछ इतनी खुश सी थी कि सुन्दरम् की बेचैनी वह भांप ही नही सकी। बोली—–तो दिखाग्रो न कहां है वह चित्र! सारी खोली छान मारी, पर मुझे नही मिला। जाने कहा छिपाकर रख रखा है!

सुन्दरम् गूंगा बना रहा। क्या कहे? ग्रांखें तक उठा न पा रहा था। रेवती को शरारत सूझी—–कहा छिपा रखी है मेरी तस्वीर? क्या दिल मे? बताग्रो।

उफ, कैसी नशीली मुस्कान! कैसी शरारत भरी दृष्टि! कहा छिप जाए सुन्दरम्। किसी तरह बोला—–मुझे एक रात की, सिर्फ एक रात की मुहलत दो। कल सुबह तुम्हें सब कुछ पता चल जाएगा।

रेवती उसी दुष्टता के साथ बोली—–क्या पता चल जाएगा सुन्दरम्। यही न कि चित्र दिल में समा नहीं सका।

सुंदरम् फिर गूंगा हो गया। क्या जवाब दे। रेवती उसके पास बैठ गई थी—नहीं, मैं ग्रब कतई इतजार नहीं करूंगी। बोलो कितना बना है चित्र?

सुदरम् ने कुछ बोलने का प्रयत्न किया। पर 'मै, मै' कर के रह गया। रेवती को वह न्हाना सा लग रहा था, जिसके साथ छेड़खानी की जा सकती है। बोली–तो तुमने बेच दिया उसे। मुझे दिखाया तक नहीं, ग्रौर बेच डाला?

इसके उत्तर में सुदरम् ने रेवती की ग्रोर देखा भी। उसे लगा जैसे कोई वलि का पशु बलि के उठे हुए खांडे को देखकर दया की भीख माग रहा हो। रेवती को वह निगाह छू गई। शरारत को मधुर करती हुई बोली–ग्रच्छा एक रात की माफी ग्रौर। पर कल सुबह चित्र न दिखाया तो दर्शन-मेला बंद।

सुदरम् ने सिर झुकाए ग्राज्ञा सुन ली। रेवती ग्रनायास ही खुश होती हुई उठी ग्रौर ग्रपनी खोली की तरफ चल दी। वह काफी हल्कापन महसूस कर रही थी। वेसा ही हल्कापन जैसा बच्चे खेल-कूद के बाद करते है। उसने इधर-उधर देखा तक नहीं। सीधे ग्रपनी खोली में ग्राई। खोली मे ग्रंधियारा था। ग्रंदाज से ग्रपने बिस्तर की तरफ बढी ग्रौर धम्म से लेट गई। तकिया उसे कुछ नीचा लगा। तकिये के नीचे बांहें रखकर उसे कुछ ऊंचा किया। मन चित्र की कल्पना में खो गया। सोचने

लगी—पूछूंगी कल सुंदरम् से कि जब तुम मेरे इस चित्र को बनाते थे तो कैसा लगता था, जब तुमने मेरे इन अंगों को उभारा होगा तो क्या तुम एक बार भी नहीं सकुचाए। बड़े निर्लज्ज हो तुम ! हाय, पराई नार के अंगों में डूबे रहे !

और वह सो गई।

सुख की नींद थी, खूब गहरी आई। टूटी तो सूरज चढ़ चुका था। वह जमुहाई लेती हुई उठी और दीवाल पर टंगे छोटे से शीशे के सामने पहुंचकर अंगड़ाई ली। अंगड़ाई भी ऐसी कि खुद शरमा उठी। चट्-चट् करते हुए ब्लाउज के बटन खुल गए। हाय, मुई नींद। रेवती को खुद से प्यार हो रहा था। अपनी सुंदरता पर आप रीझ रही थी। उफ, इन आंखों को तो देखो, अब भी नींद की मारी हों जैसे। मुस्क-राई। गालों में ज्वार सा आया। गजब, बड़ी इतराती है। मन कर ही नहीं रहा था कि शीशे के सामने से हटे। पर हटना पड़ा। सूखी हुई लटों में अंगुली उलझाती हुई वह वहां से हट गई। चित्र तो बन ही गया होगा। अब वह इनका भी सिंगार करेगी। बापू भी हैरत में पड़ जाएंगे। क्या हो गया जो बिटिया इतनी खुश है। वे खुद भी खुश रहने लगेंगे। बड़े प्यारे हैं बापू।

खिड़की खुली ही थी। उसने आगे बढ़कर किवाड़ भी खोल दिए। ताजी हवा का झोंका आया। उफ, कैसी शरारत ! कहां नहीं चूमा उसने उसे। मुई, धुसी। पिछली तरफ की खिड़की और दरवाजा दोनों खोल दिए। हवा के साथ-साथ धूप भी घुस आई। 'प्यारी हवा, बुहार दे मेरा घर। प्यारी धूप, भगा दे मेरे घर का अंधियारा !' वह छोटी सी खोली भी उसे खुली-खुली, बड़ी ऊंची, बड़ी चौड़ी लगी। पांवों में अजीब सी चंचलता महसूस हुई। क्या नाचे ? गुनगुन करने लगी। हाय गीत भी उठ रहे हैं। वह पिछले दरवाजे की चौखट पकड़कर खड़ी हो गई। नीम की कबंध-भुजा, कुएं की परली मन और नागफनी की बाड़, सभी कुछ तो दिखाई दिया। हरे-हरे दलदार पत्तों में सुई से कांटे। क्या अंदाज है इनका भी ! और वे नारियल के पेड़ ! —कैसे अभिमानी से खड़े हैं।...

... आखिर क्यों हूं इतनी प्रसन्न ?—उसने अपने-आपसे पूछा। जवाब भी मिला : बावली हूं। यों ही खुश हो लेती हूं। यों ही दुख मान लेती हूं। अकेलेपन को नहीं तो मिटाऊं कैसे। पर अजीब खुशी है आज की ! क्या सुन्दरम् चित्र जो

ला रहा है ? क्या अपने रूप का एहसास जो हो रहा है ? ऊह ` पर कहीं, कोई तूफान तो नहीं आने वाला । क्या कहते है, हा, याद आया । तूफान के पहले शांति। हट, क्या फिजूल की बात सोची । मैं तो खुद तूफान हू । बड़े-बड़े स्थिर मन डोल उठते हैं । हाय, मैं सचमुच इतनी सुंदर हू क्या !

वह अंगडाई लेने लगी । पर किसको रिझा रही हू । इस नागफनी को ही देखो न । कितनी मगन है, कितने रंग से भरी है ! दुनिया से अपने भीतर के रस को बचाने के लिए ये कैसे भाले मे काटे प्रहरी बनाकर तैनात कर दिए है ! क्यो न करे । इसका रस भी तो अपना है । कब इसने परवाह की कि कोई इसे सींचे । कब इसने चाहा कि कोई जानवरो से इसे बचाए । यह तो उलटी कमजोरो की आड़ और बाड बन जाती है । लोग इसे कहते है, 'सत्यानासी ।' जहा इसके पाव जमे वहा और कुछ थोडे ही उगेगा । न उगे । वह क्यो इसकी परवाह करे । लोग तो रूप को भी कहते है सत्यानासी । अपनी कमजोरी को नहीं कोसते । दूसरों की ताकत को गलियाते हैं । नागफनी सत्यानासी नहीं सखी है, मेरी प्यारी सखी । पर इस जैसे काटे कहा से लाऊ । हू । बनती हो । हैं तो । काटों से भी तीखे । ये अंदाज, यह चितवन, यह ऐंठन, यह `` यह` हाय––मैं क्या करू । मैं तो जानती ही नहीं कि ये सब ऐसे हैं । इनकी ताकत आजमाने का मौका आया ही कब ? अच्छा तो प्यारी नाग-फनी, मैं जहा भी रहूगी वहीं तुझे भी लगाऊगी । नित सुबह उठ के तुझे पानी दिया करूंगी । शाम को तेरे चौरे पर दीप जलाऊगी । लोग बावली समझें तो समझें । मेरी तुलसी तो तू है । आप तेरी ताकत नहीं । तू तो तुलसी से भी बढ़-चढ़-कर है । अपनी ताकत तू आप है । किसीकी छाया भी तुझपर पड जाए तो बिंध जाए । हाय, मैंने भी तो भोले-भाले दिलों को बींध डाला है । क्या हो जाता है उस सुन्दरम् को ? खो-खो जाता है । देखना जैसे आता ही नहीं । कैसे बनाया होगा उसने मेरा चित्र !

तभी उसे ध्यान आया––अभी नहीं आया । एक रात की ही तो मुहलत मांगी थी । फिर क्यों नहीं आया ! झूठा कहीं का ! नहीं, सो रहा होगा । रातभर जागकर चित्र पूरा किया होगा । मैं खुद देखो न कितनी देर तक सोती रही । जरूर ही सो गया होगा । तो जगाऊ उसे । नहीं, सोने भी दू । बेचारा क्या जाने अभी-अभी सोया हो ।

वह मुड़ी। खोली को पारकर सामने वाले दरवाजे पर पहुंची। पर यह क्या। उसने एक चौहरा मुड़ा कागज देखा। जैसे कोई चिट्ठी लिखकर डाल गया हो। किसकी है चिट्ठी। मन धक से हुआ। कहीं' 'नहीं'''अच्छा देखूं तो।

उसने चट से उसे उठाकर, तहों को खोलकर पढ़ा। अंग्रेजी में लिखा था कुछ। अनजान अक्षर। भला किसके हो सकते हैं। वह पढ़ गई; तेजी से पढ़ गई। पढ़ते-पढ़ते सांस फूलने लगी। लगा कि सहारा चाहिए। वहीं देहली पर बैठ गई। चिट्ठी गोद में पड़ी रही। दिमाग उसीकी बातों में भटका था—'उफ यह क्या हो गया! क्या वह सचमुच ही सत्यानासी है, उसने एक-एक वाक्य को दोहराया—

"तो तुम जान ही गई कि मैंने तुम्हारा चित्र बनाना शुरू तक नहीं किया। तो तुमने यह भी सोचा होगा कि मैं तुम्हें सिर्फ अपनी आंखों को तृप्त करने को ही देखने आया करता था। तो तुमने यह भी मान लिया होगा कि मैं कितना पापी हूं। पर मैं सफाई नहीं दूंगा। मैं सचमुच ही तुम्हारा चित्र नहीं बना सका। तुमने उस चित्र-फलक को देखा होगा। एक बार भी तो ब्रुश से उसे छू न सका। समझ में ही नहीं आता था, कैसे प्रारम्भ करूं। तुम्हारा रूप मेरी आंखों के आगे इतना विराट् होकर उमड़ पड़ता था कि मुझे अपना केनवास छोटा लगने लगता। तुम्हारे अङ्गों की कांति, मुस्कान की दीप्ति, लटों की उलझन मेरे रंगों के वस की थी ही नहीं। मुझे पहली बार लगा कि ये सब फीके हैं, जड़ हैं; तुम जो यज्ञवेदी की अग्नि सी ज्योतिमयी हो, उसे मैं कैसे इन मलिन रंगों से बना सकता हूं। मुझे यह भी लगा कि अगर किसी तरह यह चित्र बना भी लिया तो फिर मेरे पास चित्रित करने को रह भी क्या जाएगा। तुम्हारा चित्र तो मेरे जीवन का अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ चित्र ही हो सकता है। उसके बाद तो सिर्फ आत्महत्या रह जाएगी—मथुरा के गोपुरम् से कूद-कर मरना ही बाकी रह जाएगा। पर अभी मैं मरना नहीं चाहता। मेरी छोटी बहन, बड़ी प्यारी बहन, जिसे वे गोपुरम् प्राणों से भी प्यारे हैं, मेरे मरने पर जी न सकेगी। तो मैंने हार मान ली। मैं हार मानकर ही यहां से भाग रहा हूं। अब तुम्हें अपना मुंह भी न दिखा सकूंगा। पर यह बता दूं कि अब एकमात्र तुम ही मेरी कला की प्रेरणा रह गई हो मैं चाहे जो बनाऊं, उसमें तुम्हारी ही कोई झलक होगी। और जिस दिन तुम्हारी पूरी झलक एक जगह उतार सकूंगा, उस दिन—उस दिन, बस

कह चुका हू, वही शेष रह जाएगा—आत्महत्या ।

रेवती की आख से आसू टपककर गोद मे गिरा । जैसे गोपुरम् से सुदरम् ही कूदा और कूदकर नीचे बैठी अपनी बहन की गोद मे गिर पड़ा । रेवती चीख उठी । हाय, वह बहन भी तो चीख उठी होगी ।

वह उठी और फिर तेजी से सुंदरम् की खोली की ओर बढ़ी। मनुभाई उसके चबूतरे पर ही बैठे थे । रेवती को देख जैसे उसके आने का कारण भी समझ गए, बिना पूछे ही बोले—वह तो चला गया बिटिया ! आधी रात में ही मुझे जगा के किराया दिया और चला गया । जाने क्या हो गया था उसे । बड़ा बावला सा था । कहता था कि जिस दिन अपना आखिरी चित्र बना लूगा उस दिन'''मुझे तो ठीक-ठीक याद भी नहीं रहा । एक दिन चादनी रात को देखकर पगला सा गया था । जाने क्या-क्या कहता गया । हां, गोपुरम् से कूदने की बात करता था । बड़े ऊंचे हैं । बड़े सुंदर है । इसलिए मरेगा वही जाकर पगला ! '''चला ही गया । बड़ा अच्छा था । मुझे बडा पसन्द था । मैने कहा था'''मेरी भी तस्वीर बनाना'''खैर मेरी भी क्या बात । जो मन मे आता था उससे कह लेता था !'''तुमसे उसने कुछ कहा था बिटिया ?

—नहीं बापू !—रेवती को झूठ ने ही सहारा दिया । वह नहीं बता सकती थी कि उसके नाम वह कैसी चिट्ठी छोड गया है ।

बस वह वहां न ठहरी ! अपनी खोली मे लौट आई । उसे फिर एक बार लगा कि वह बिल्कुल खाली है, बिल्कुल रीती ।

उस घटना को कोई दो-तीन दिन ही बीते होंगे कि बाडी में एक रात को हंगामा सा मच गया । रात के कोई दस बजे होंगे, अचानक सिधी की खोली से रोने-चीखने की आवाज आने लगी । आवाज़ इतनी दर्दनाक थी कि रेवती खोली मे बैठी रह ही न सकी । उससे पहले ही वहा गाडगिल के अलावा खोली के और सब लोग थे ।

रेवती मनुभाई के पास जाकर खड़ी हो गई। पूछा---क्या बात है बापू !

---कुछ समझ मे नही आ रहा है।---मनुभाई ने समझते हुए भी कहा।

इतने मे रोना तेज हुआ। रेवती बोली---यह तो शायद गुलाब रो रही है !

मनुभाई ने सम्मति से सिर हिला दिया। इतने में एक पुरुष खुर-खुरी आवाज मे चिल्लाया---मैं भी देखता हू कैसे नही जाएगी यह ! टुकड़े करके रख दूगा !

इतना कहते ही उसने दो-चार प्रहार किए। गुलाब चिल्ला उठी---मा, मुझे बचाओ। मां, मुझे बचाओ।

रेवती ने पूछा---यह गुलाब का बाप है क्या ?

---बाप नही, पिशाच है।---मनुभाई ने दांत किटकिटाकर कहा।

उधर मां दीन होकर बोल रही थी---बस भी करो। कुछ सोचो तो वह जाने काबिल तो हो।

बाप पर भूत ही सवार था---मैं सोचू। मैंने अपने-आपको बेच-बेचकर तुम लोगों को जिंदा रखा। अब कोई रास्ता नही। इसे जाना ही होगा। मैं तय कर आया हू। रात के बीस मिलेगे बीस। बीस कोई थोड़े नही होते।

मा कुछ तेज हुई---अगर इनसे यही कराना था तो इन्हे पैदा क्यो किया ? मैं पूछती हूं क्यो किया ? और पहले यह बताओ कि इन्द्रा कहा है। तीन रात पहले वह गई थी। अब तक क्यो नहीं लौटी। बोलो, उसे बेच आए क्या ?

बाप गरजा---जबान मत चला, नही तो मैं'''नही तो मैं खून कर दूगा।

मा और तेज हुई---तो वह भी कर लो। इससे तो वही अच्छा। मुझे बहलाते थे कि दलाली करता हूं। बंबई मे दलाली बड़े-बड़े पैसे वाले भी करते है। पर आज समझ में आया कि कैसी दलाली करते हो। अपनी बेटियो की दलाली ! थू!

तभी तड़ से एक चपत पड़ा। रेवती आपे से बाहर हुई। वह अंदर घुसने लगी। मनुभाई ने देख लिया। चट से हाथ थाम लिया। बोले---ठहरो रेवती। यह वक्त नहीं बीच-बचाव का। वह जानवर हो गया है।

मां थप्पड़ खाकर भी चिल्लाती रही---रुक क्यों गए ? बोलो, रुक क्यो गए ? एक ही मारकर क्यों रुक गए ? और मारो। टुकड़े-टुकड़े कर डालो। पर मैं गुलाब को जाने नही दूगी। तुम एक को बेच आए हो। कौन भरोसा, इसे भी बेच आओ।

बाप ने जहर उगलते हुए कहा—मैं उसे बेच आया हूं कि वह मुझे दगा दे गई है। उस परदेशी के साथ भाग गई। भला जान के भरोसा किया था। मेरी आंख लग लग गई। सुबह उठा तो दोनों गायब थे। वह भला आदमी नहीं, बदमाश निकला।

मा हंसी। जैसे आग भभकी—तुम उसे बदमाश कहते हो। और तुम क्या हो? बेटियों की दलाली खाने वाले तुम कौन से शरीफ हो! मुझे चैन मिला यह जान के कि वह भाग गई। अच्छा किया। एक की होकर रहेगी। तुम उसे बाजारू बनाते। वह बीमारियां लेकर नरक की आग में जलती, बलती, जीती।

बाप बोला—पर मैं करूं भी क्या? कहां से लाऊं रुपया? कैसे भरूं तुम सब का पेट? वह सिनेमा में गेटकीपर होकर लाट साहब हो गया। घर की तरफ मुंह भी नहीं करता। मैं भी कहीं चला जाऊं तो बोलो तुम क्या करोगी। क्या तुम खुद ही लोगों को ढूंढने न निकलोगी?

मां ने जवाब दिया—मैं जहर दे दूंगी, पर कुकर्म नहीं कराऊंगी।

बाप बिगड़ा—वह मेरे बाद में कर लेना। पर आज मैं वादा कर चुका हूं। इसे चलना ही होगा।

मां विरोध करती रही—तुम अन्धे हो गए क्या! क्या इतना भी नहीं दीखता कि यह पेट से है। थोड़े ही बहुत दिनों में मा होने वाली है।

—क्या कहा।—बाप गरजा—यह'' यह सब करती रही। मैं इसे आज जिन्दा नहीं छोड़ूंगा।

इतना कहकर उसने गुलाब के बाल पकड़कर उसे खींचा। गुलाब रो-रोकर कहती रही—मुझे बालों से न खींचो। मैं मर जाऊंगी। मुझे माफ कर दो पापा, मुझे माफ कर दो। मा, मुझे बचाओ।

बाप ने उसे छोड़ दिया और अपना सिर पीट-पीटकर चिल्लाने लगा—लो लो, मैं ही अपना सिर फोड़ लेता हूं। यह कुंवारी होकर मा बनी। मेरी नाक काट दी! मैं कैसे वाडी के लोगों को मुंह दिखाऊंगा।

—जैसे अब—मा ने भयानक होकर कहा—अभी कौनसी इज्जत है। जो कराने जा रहे हो क्या उसमें कोई कुंवारी मा नहीं बन सकती?

—तो मैं क्या करूं ? मुझे कुछ नहीं सूझ रहा। मैं पागल हो जाऊंगा !—अपने बाल आप नोचता हुआ रो पड़ा।

बाहर खड़े लोग एक-दूसरे का मुंह देखते रहे। मां कह रही थी—यह नाटक बन्द करो। अब रो-रो के न धमकाओ। हमें रोटी नहीं दे सकते तो हमें अपने रहम पर छोड़ दो। पर हमसे पेशा न कराओ।

इसपर बाप ने कहा—अच्छा तो लो, तुम्हें छोड़कर मैं चला। मैं मान लूंगा कि मेरे घर में कोई था ही नहीं।

इतना कहकर वह तेजी से बाहर आया और बाहर खड़े लोगों की तरफ देखे बिना ही वहां से चला गया। उसके जाते ही गुलाब ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी—पापा को रोक लो मां ! पापा को रोक भी लो मां !

मां का दम फूल उठा था। हांफती सी बोली—उसके मोह में न फंस। मुझे तो इस बीमारी ने कहीं का नहीं रखा। नहीं तो मैं यह नौबत आने ही नहीं देती। पर घबडा मत। मैं तो हूं। मैं कुछ भी करूंगी पर तुझे गिरने न दूंगी। पर तू मुझे उसका नाम जरूर बता दे। मैं उससे तेरी शादी करके ही रहूंगी।

—नहीं मां, मैं उससे शादी हर्गिज नहीं करूंगी।—हिचकियों की ठोकरें खाती हुई गुलाब बोली—उसने मुझसे बड़ा फरेब किया है—वह धोखेबाज है मां, तू बस मुझे जहर दे दे।

इसपर मां भी रो पड़ी और मां को रोते देख गुलाब का रोना फिर शुरू हो गया। बाहर खड़े लोग अपनी-अपनी खोलियों की तरफ मुड़ चले। सब के मन में एक ही बात थी, पर उस यथार्थ ने उन्हें कुछ ऐसा अभिभूत कर दिया था कि कोई टीका-टिप्पणी तक न कर सका।

रेवती की समझ में आ ही नहीं रहा था कि आखिर यह ज़िंदगी क्या है, ये रिश्ते-नाते क्या हैं, यह प्यार ही क्या है।

उसने खोली में आकर सोने की कोशिश की पर गुलाब की चीखों की गूंज उसे जगा देती। उसकी समझ में आ ही नहीं रहा था कि अब क्या होगा। उस दिन गुलाब की मां आई थी। उसकी मदद कर दी होती, उसकी बात मान ली होती तो यह नौबत न आती। रेवती खुद को दोषी महसूस करने लगी।

इसी तरह घंटों बीत गए। बाड़ी भर में सन्नाटा छा गया था। सब थोड़ी बहुत देर में सो ही गए थे। पर रेवती कैसे सोए। उस खोली की छत जैसे उसके सिर पर टूटी पड़ रही थी। वह बाहर भागी। वही चबूतरा और उसपर का खंभा उसे अपना सहारा लगा। वह खंभे को हाथ से थामकर खड़ी ही थी कि उसे गाडगिल दिखाई दिया। उसने उसे देखकर नफरत से मुंह फेर लिया। पर गाडगिल उसके बिलकुल पास चला आया। उसके मुंह से शराब की बू आ रही थी। वह शैतान की तरह घूरता हुआ बोला—किसकी इंतजार है ?···मेरी ?

इतना कहकर उसने छाती पर अंगुली मारी और साथ ही हिचकी ली। रेवती ने कठोर होकर कहा—गाडगिल, तुम इस समय नशे में हो। अच्छा हो कि अपनी खोली में चले जाओ।

वह हंसकर बोला—हुक्म दे रही हो। तो तुम भी साथ आओ न। तुम ही अकेली यहां क्या करोगी ?

—गाडगिल !—रेवती ने कुछ उत्तेजित होकर कहा। उसकी हिचकियां तक उसे असह्य हो चली थीं।

वह उसी तरह बोला—क्यों बिगड़ती हो। मैंने तो शराब ही पी है। पर तुम खुद शराब हो। तुम्हें देखकर होश ही नहीं रहता। लगता है तुम जिसके साथ भाग कर आई थी, उसे जल्दी होश आ गया था। इसीसे भाग गया।

रेवती तिलमिला उठी। कुछ कहना चाहा। पर गुस्से ने जबान बांध ली। गाडगिल हिचकियां ले-लेकर भर्राए गले से कहता ही गया—पर तुम भी नादान हो। पसंद करना ही नहीं आता। उस मद्रासी पर लट्टू हुई। वह ऐसा भागा जैसे गधे के सिर से सींग। एक और प्रेमी मिले। वामन महाराज। जब देखो कागजों पर तुम्हारा नाम लिखता रहता है। अजीब ढंग है प्रेम का ! तुम्हारा जिक्र करता हूं तो बड़ा साधु बन जाता है। वैसे मैंने ही कई बार उसे तुम्हारा नाम लिखते पकड़ा है। जैसे तय कर लिया हो कि सवा लाख नाम की माला पहनकर तुम्हें ब्याहने आएगा।

रेवती से अब और सहा नहीं गया। वह चबूतरे से नीचे उतर आई और पूरे जोर से उसके मुंह पर तमाचा मारा। कमजोर गाडगिल लड़खड़ा उठा। उसकी

आंखों के आगे अंधेरा छा गया। गिर न पड़े, इस डर से माथा थामकर बैठ गया। थोड़ी देर में हाथ से गाल सहलाते हुए उठा—तुम औरत हो, बस इसीसे बख्श देता हूं। मर्द होता तो यह मारने वाला हाथ तोड़कर रख देता।

इतना कहकर वह अपनी खोली की तरफ बढ़ने लगा। अचानक रेवती को कुछ सूझा। वह आगे बढ़कर बोली—जरा ठहरो तो।

गाडगिल मुंह से शराब की दुर्गंध छोड़ता हुआ बोला—क्या डर गई! माफी मांगती हो?

रेवती की भवें घृणा से कुंचित हुईं। उसने उसकी इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। बोली—गुलाब तुमसे मिला करती थी?

—तुम्हारा मतलब?—उसने चौंककर पूछा।

—वह बाद में बताऊंगी।—रेवती की आवाज़ सख्त थी—पहले यह बताओ कि तुम उसे प्यार करते थे?

—मैं गुलाब को प्यार?—वह बड़े ही बेहूदा ढंग से हंसा—अजी वह मेरे गले पड़ा करती थी।

रेवती ने उसी गंभीरता से कहा—जानते हो वह तुम्हारे बच्चे की मां होने वाली है।

—मेरे बच्चे की मां!—उसने ऐसे कहा जैसे फिल्म के सेट पर से डायलाग बोल रहा हो—मेरी बीबी वह कैसे हुई, जो मेरे बच्चे की मां बनेगी?

—वह तुम्हारी बीवी तभी बन चुकी थी जब तुमने उसके साथ यह संबंध जोड़ा था।—रेवती ने कहा।

—संबंध? कैसा संबंध? ओ—वह घृणित मनुष्य की तरह बोला—तुम्हारा मतलब उस संबंध से है। अब समझा। ऐसा संबंध तो गाडगिल ने जाने कितनों से जोड़ा है।

उससे बातें करना असह्य हो चला था। पर रेवती किसी तरह स्वयं को संभाले रही। बोली—बेकार की बात मत करो। मैं इतना जानती हूं कि तुमने उस कमसिन बच्ची की जिंदगी खराब की है। और तुम ही अब उसकी जिंदगी सुधार भी सकते हो।

गाडगिल ने उच्छृंखलता से कहा—मैं सुधारक-उधारक नहीं हूं बाबा। मैंने अपनी जिंदगी नहीं सुधारी तो दूसरों का ठेका कैसे ले सकता हूं?

—सुनो।—रेवती ने दृढ़ता पर थोड़ी मिठास के साथ कहा—मैं तुम्हें रुपया दूंगी, जितना कहोगे दूंगी। तुम उससे व्याह कर लो।

सुनकर गाडगिल की आंखें फटीं। बोला—कितने में सौदा करना चाहती हो?

—तुम बोलो!—रेवती जल्दी जवाब चाहती थी।

—दस हजार।—गाडगिल ने बक दिया।

रेवती सोचने लगी। उसने व्यंग्य किया—बस, सौदा महंगा लगने लगा? देखो, बोली बोलता हूं। तीन कहते ही 'हां' न किया तो सौदा टूट जाएगा। दस हजार एक।—दस हजार दो।—दस हजार···ती···।

वह 'तीन' कह ही नहीं पाया कि हिचकी ने दम तोड़ दिया। तभी रेवती बोल उठी—मुझे मंजूर है।

गाडगिल बोला—तो जब तक यह दस हजार रहेगा, तब तक वह मेरी बीवी। उसके बाद···—उसकी आंखों में शैतान था।

रेवती का धीरज टूटने लगा। फिर भी पूछा—उसके बाद?

—वह अपने बाप की बेटी!—गाडगिल ने कहा और हंसने लगा।

रेवती से वह हंसी सही नहीं गई। वह वहां से हट गई। गाडगिल भी किसी फिल्मी गीत को गुनगुनाता हुआ अपनी खोली की तरफ चल पड़ा। रेवती उसकी लड़खड़ाती टांगों को देखती रही। हवा का रुख कुछ ऐसा था कि उसके मुंह की भाप उसके पास तक पहुंचती रही। उसने नाक पर कपड़ा रख लिया और खंभे से पीठ लगाकर वहीं चबूतरे पर बैठ गई।

क्या करे रेवती। बेहद परेशान है। दिन पहाड़ हो रहा है। कब तक ढोए इन पहाड़ों को। फिर उपलब्धि भी क्या। अगला दिन भी तो ठीक वैसा ही, एक नया

पहाड़; उतना ही बोझिल, वैसा ही कमर तोड़ देने वाला।

और यह दुनिया। उफ, गजब है। लोग कहते हैं, बड़े-बड़े होटलों, कोठियों, बंगलों में यह होता है, वह होता है। पर वहां ऐसा क्या होता है जो इन खोलियों में नहीं होता, नहीं हो सकता। अजीब घुटन है···

——बापू को जाने क्या हो गया! अब तो मैं बालों में तेल भी डालती हूं। कपड़े भी ढंग से पहनती हूं। अपने दुख को छिपाने के लिए हंसती भी हूं। पर···बापू अजब हैं। वैसे ही उदास, खोए-खोए। मुझे देखते ही आंखें भर आती हैं। अब मिलते-जुलते भी कम हैं। हाय, क्या करूं!·· रेवती व्यथित हो उठती।

एकान्त का नाग डसता तो छटपटा उठती। सुन्दरम् भी तो चला गया। वह भी एक आकर्षण था। वह भी एक कार्यक्रम था। उसकी नित प्रतीक्षा रहती थी। गूंगा ही चाहे बना रहता, पर मन को थोड़ी सी व्यस्तता तो दे जाता था। पर वह भी भाग गया। वह भी भग्गू निकला। वह भी कायर निकला। 'भग्गू'! रेवती ने पुकारकर एकांत को मुखर किया। वह खुद ही नहीं जान पाई कि वह किसे पुकार रही है——'जयन्त को कि सुन्दरम् को। 'भग्गू! भग्गू! भग्गू!' एकांत की सांय-सांय भी उस शब्द को दोहरा रही थी। रेवती दीन हो उठी।—उफ, वह ऐसी कैसी है। नागफनी! सत्यानाशी। उसे कोई सह ही नहीं पाता।

इस पारसी ने खिड़की क्यों बंद कर रखी है? कहां चला गया? ऊपर देख लेना ही एक कार्यक्रम था। उसमें से कोई परछाईं, कोई झलक दिखाई दे जाए यही व्यस्तता थी। खुली खिड़की को देखकर निगाह उठ ही जाती थी। पर अब · हां उठती तो है। यही देखने को नजर ऊपर चली जाती है कि क्या खिड़की खुली। क्या घर में कोई आया? पुरुष है या स्त्री? या दोनों? पर बंद खिड़की से नजर टकराई नहीं कि नीचे आ गिरी। फिर ये खोलियां। खोलियां ही खोलियां। अजगर के फटे मुंह सी खोलियां। क्या-क्या चल रहा है इनमें। गुलाब और उसकी मां अकेली हैं। मां बीमार, गुलाब खुद बेबस। एक की जिंदगी के दिन पूरे हो रहे हैं। दूसरे के और दिन पूरे हो रहे हैं। बाप फिर लौटा ही नहीं। भाई तो पहले ही कब झांकता था? और वह इन्द्रा——मौसी की शिष्या इन्द्रा। खूब निकली! पर कहां होगी? खाई से निकली और खत्ती में जा पड़ी। कहीं

कुछ ऐसा ही तो नहीं हुआ। उस बेवकूफ को अपने ही जैसा कोई बेवकूफ न मिला तो ?

इस गाइगिल से तो घिन आती है। दो मिनट भी सहना मुश्किल है। गुलाब ने कैसे सहा ! अरे अब तो वह उसके बच्चे की मां होने जा रही है। पर अब सहने को तैयार नहीं, नाम लेने को तैयार नहीं। पर जब बच्चा धरती पर आ जाएगा, गोद में किलकेगा, पालने में सोएगा, अलग होकर रोएगा, तब ? तब ? तब ?

रेवती के कानों में उसकी किलक गूंजी। हाय, वह तो हंस रहा है। गजब, वह तो रोने लगा है। उफ, कैसे देख रहा है, टुकुर-टुकुर। नन्ही-नन्ही हथेलियां; तारों की दुल्हिन सी हथेलियां ! उषा के गाल सी हथेलियां। कितना प्यारा ! चूम लेने को मन करता है। अरे यह क्या होने लगा। छाती में यह क्या सन-सन करने लगा। किसकी किलक सुन के दूध के सोते छूटने लगे—ओ मेरे लाल ! अरे मेरे कान्हा ! नटखट ! मत कर तंग ! छोड़ भी दे। नहीं मानेगा। अच्छा तो ठहर ! लो भाग गया !

रेवती सहम उठी—अरे, भाग मत। हाय, कहां भागा जा रहा है ! मुझे इन भगुओं से बेहद डर लगता है। कोई रोके इसे। कोई थामे इसे।

वह भाग ही गया। रेवती फिर अकेली रह गई। सब झूठ। कोई था ही कहां जो भाग जाता। वह तो गुलाब के बच्चे के बारे में सोच रही थी। वह तो इस चित्र को देख रही थी। हाय, गुलाब क्यों नहीं हुई वह। मां तो बनती। यह चित्र ही क्यों न हुई वह। निपूतियों की कोख में हलचल तो मचती।

वह भी निपूती है। निपूती···

वह होता तो अकेलापन भी न डसता; सब को भूली रहती; उसीमें अपनी दुनिया बसा लेती। वह मिट्टी खाकर आता। मुंह खुलवाती। अरे वहां तो ब्रह्मांड समाया होता। वह बालक थोड़े ही होता। वह तो···वह तो जाने क्या होता। कौशल्या को चकित कर डालने वाला राम होता ! पूतना को मार डालने वाला कान्ह होता ! ओ राम ! ओ कान्ह !

इस एकाकीपन के रावण को कौन मारे। कंस का वध कौन करे। न्हाला से

बातों में मन लगाने की कोशिश की। पर वह बामन हो ही न सका। सिर्फ बौना बना रहा। उसे देखते ही घबड़ा उठता है। जाने क्या है उसके मन में! बुलाने पर भी कम आता है। खोली पर पहुंचने पर किवाड़ नहीं खोलता। चबूतरे पर ही स्वागत करता है। उफ, बौना भी उपेक्षा करता है। अकेली जो है। गोद जो सूनी है। विराट् नाग की गुंजलक में कैद जो है। उफ, ये सूनेपन की परतें कितनी भारी हैं! एक के ऊपर एक जमा होती जा रही है। इनका तो अन्त ही नहीं। पीस डालेंगी। कोई इन्हें अपनी कन्नो उंगली पर उठाने वाला जो नहीं। गिरधारी''! बोल रे क्या सच ही तूने पहाड़ को उंगली पर नचाया था!

पर कोई भी कल्पना, कोई भी विचार रेवती को अकेलेपन की खोह से बाहर नहीं निकाल पाता। दिन बीत रहे हैं; रातें बीत रही हैं। सब उसकी छाती पर एक नई शिला रख जाते हैं; मुर्दा घड़ियों की लाशें रख जाते हैं। उसके पास जैसे इन मुर्दा घड़ियों के सिवा कुछ भी तो नहीं रह गया। सेकेण्डों की लाशें, मिनटों की लाशें, घंटों की लाशें, दिन और रात की लाशें; सप्ताह, मास, वर्ष की अनगिनत लाशें! जैसे उसकी जिन्दगी ही मुर्दा है, कब्रिस्तान है। उसका मन करता कि दीवाल से सिर दे मारे, बाल नोंच ले, अपने अंगों को खुद दांतों से काटकर किसी नई पीड़ा का अनुभव करे। पीड़ा से बुरी उसकी एकरसता। कुछ नई होकर क्यों नहीं आती यह। जैसे जेल में बंद हो। वे ही दीवालें, वे ही शक्लें। जानदार और बेजान सब वे ही। वही कुछ। वही सब कुछ। इस जेल से क्यों न भाग चले।

रेवती को वह वाड़ी जेल सी लगने लगी। नागफनी के कांटे शूल हो उठे। बंबई में इतना ही तो नहीं। और भी तो बहुत कुछ है। मौसी कहती है: बड़े-बड़े बंगले, बड़े-बड़े होटल। देखो तो आंखें चौंधिया जाएं। उसके मन में आया कि मौसी के पास भाग जाए और कहे: मुझे इस वाड़ी से बाहर ले चलो मौसी। मैं ऊब गई। मैं एकदम ऊब गई। मैं कहीं घुटघुट के ही न मर जाऊं।

और तभी मौसी स्वयं ही पधार गईं। हथेली पर गाल टेके बैठी हुई रेवती की निगाह मौसी पर पड़ी। वह उसे बड़ी प्यारी लगी। वह उसीकी तरफ आ रही थी। मन को अंदेशा भी हुआ कि कहीं और को न मुड़ जाए। पर नहीं। मौसी तो उससे ही मिलने आ रही थी। मौसी उसे इतनी अच्छी कभी न लगी थी। मन

करता था कि उसका मुंह देख-देखकर ही बातें करती रहे। आंखों में कितनी मोहती है। झूठ-मूठ को जाने कैसा-कैसा लगता था। सफेद दांतों के बीच-बीच में मिस्सी लगे काले मसूड़े, हसने में अच्छे ही तो लगते हैं। रेवती ने उमगकर स्वागत किया—मौसी, मैं तुम्हें ही याद कर रही थी।

मौसी निहाल हुई। पर मुंह बनाके बोली—मुझ अभागिन के ऐसे भाग कहां? तू तो जाने किसकी याद में खोई होगी।

—यकीन मानो मौसी!—रेवती ने उठकर अपनी बांहों का हार उसके गले में डाल दिया।

मौसी 'उफ' करके बोली—राम ने खैर की। मर्द होती तो मर ही गई होती। हाय, जिसे ये नागिन सी भुजाएं घेर लें उसकी खैर कहां?

—मौसी!—रेवती ने अजीब अन्दाज से कहा।

मौसी की अनुभवी दृष्टि ने देखा। जैसे इन्द्रा मचल रही हो। इसके भीतर भी बेवकूफ इन्द्रा है। हर औरत के मन में एक मूढ़ इन्द्रा रहती है। वही इन्द्रा जो अपनी जवानी को सह नहीं पाती। वही इन्द्रा जो अपने यौवन से अभिभूत रहती है। उसने चट से कहा—अरी इसी खोली में खटती रहेगी या कभी बाहर भी निकलेगी।

—कहां जाऊं मौसी? और वह भी अकेली।—रेवती इन्द्रा ही बनती जा रही थी।

मौसी ने अपनी ममता जताई—अकेले जाएं तेरे दुश्मन। अरी, मैं मर गई क्या, जो यह सोचती है। तू 'हां' कर तो, बस फिर देखना मौसी तुझे सरग की किस अटारी पर ले जावे है।

—सच मौसी!—रेवती नहीं, बिल्कुल इन्द्रा थी।

—मौसी ने झूठ सिर्फ अपने पति से बोला है और किसीसे नहीं।—मौसी ने अभिमान से कहा।

रेवती ने हंसकर पूछा—यह तो उल्टी बात हुई मौसी!

मौसी हाथ मटकाकर बोली—लगता है, तूने पति को जाना ही नहीं। अरी उससे झूठ न बोलें तो वह कभी सुखी ही न हो पाए।

—हूं !—रेवती ने खुशी से आंखें चमकाईं। जैसे मौसी उसे जीवन के उन रहस्यों को बता रही हो जिन्हें उसके सिवा कोई नहीं जानता। पूछा—तो तुम्हारे वे अब कहां है मौसी ?

मौसी ने मुह बिचकाकर कहा—एक छिनाल के चक्कर में आके अफरीका चला गया।

रेवती ने ताज्जुब से पूछा—तुम्हारी जैसी बीबी को भी छोड़ के चला गया ?

—मेरे ठेंगे से।—मौसी ने अभिमान से कहा—मैंने भी उसे सुना दिया था—तूने एक की, मैं हजार करूंगी।

रेवती सहम गई। कैसी भयानक प्रतिक्रिया ! मौसी ने उसके मन के भाव को ताड लिया। बोली—पर वह तो गुस्से की बात थी। औरत कितनी भी बुरी क्यों न हो, ऐसा थोड़े ही कर सकती है !

पर रेवती को मौसी की सफाई का विश्वास नहीं हो रहा था। उसे फिर उसकी आकृति घिनौनी लगने लगी थी। काले मसूड़ों में वासना का जहर भरा सा लगने लगा था। वह उसकी आखों से आंखें मिलाती हुई भी सहम रही थी। उसे लगा, इसीकी सीख से तो इन्द्रा जाने किसके साथ भाग गई; गुलाब क्वारी ही मां बनने की स्थिति में आ गई। उसका मन किया कि मौसी को धक्का देकर बाहर निकाल दे और किवाड़ बन्द कर साकल लगा ले।

मौसी सामने ही बैठी थी। पर रेवती कल्पना में सांकल लगी खोली में फिर बद हो गई थी। जैसे उसकी स्वतन्त्रता के पाव बाध दिए गए। फिर सुनसान सांय-सांय करने लगा। एकान्त पंख लगे पहाड़ों सा उड़-उडकर उसके चारों ओर दुर्लभ बाधाए बनाने लगा। उसके चेहरे की ललाई सफेदी में डूबने लगी। आंखों में त्रास भर उठा। स्थिर हाथ-पाव भी कंपन से भर उठे। मौसी इस परिवर्तन को देखकर सन्न सी रह गई। वह यह तो सोच ही नहीं सकती थी कि उसकी कही हुई बात इतनी बुरी हो सकती है। फिर जो सोचा वह सच ही था। भय से भरकर बोली—हाय मेरी मा ! मेरी चाद सी बिटिया को क्या हो गया ! रानी तू बडी गमखोर है। देख, तेरे ही भले की कहू हू। तू अब अकेली रहना छोड दे। नहीं तो पागल हो जाएगी। पुराने जमाने में राजा लोग अपनी जिन रानियों से चिढ़ जाया करें थे

उन्हे बस एकांतबास की सजा देवें थे। बस रनिवासों की रहने वाली थोड़े ही दिनों मे बाल नोचने और दीवालों से सिर फोड़ने लगे थी।

रेवती मन ही मन कापी। कही वह भी तो पागल नही हो जाएगी। उसका मन ही बाल नोच डालने और दीवाल पर सिर पटक-पटककर फोड़ डालने को करता है। उसका चेहरा सफेद से जर्द पडने लगा। उसके दिमाग मे डायन की दाढों सी सूनी रातें, दानव के पंजों से खाली दिन बरसाती बादलों से उमड़ने लगे। उसने घबडाकर आंखें मीच ली। बड़े ही त्रास के साथ बोली---मुझे यहा से बाहर ले चलो मौसी। मैं सचमुच ही इन नीची छतो और संकरी दीवालो से घबड़ा गई हू। ये मेरे ऊपर झुक-झुक पडती हैं। जरूर ही किसी दिन मेरे प्राण ले लेगी।

मौसी ने बलैया ली---प्राण लें तेरे दुश्मनों के। अरी मौसी के रहते घबड़ावे है। बबई मे रहकर भी तू परेशान होवे है। अरी यहा तो जो सब कुछ लेकर आवे हैं। उनके पास कुछ नहीं रह जावे है। जो सब कुछ गॅवा के आवे हैं उनके पास सभी कुछ हो जावे है। फिर तेरे जैसी सोने की पुतली के लिए भी कुछ कमी! चल, अभी मेरी खोली में चल। दोपहर वहा काट। फिर शाम को चलेंगे बाहर।

रेवती ने चुपचाप समर्पण कर दिया। वह धीरे से खोली से बाहर हो गई। मौसी ने उसमे बाहर से ताला लगा दिया और उसे अपनी खोली की तरफ ले जाती हुई बोली—देख, मौसी ने लगाया है ताला। अब यह कभी नही खुलने का।

रेवती काप उठी। जैसे किसीने बुरी भविष्यवाणी की हो। मौसी अपनी सफलता पर खुश थी। उस खुशी मे उसने देखा ही नही कि उसका जादू अभी कितना हल्का है।

दोपहर मे रेवती ने मौसी से ज्यादा बातें नहीं की। अधिकतर वह श्रोता बनी रही और फिर ऊंघते-ऊघते सो गई। जाने कब से नींद की सताई थी। अकेली रातें पलकों पर झूल-झूलकर लौट आती थीं। आज उसे मौसी के संग भ कम से कम

एकान्त का त्रास तो न लगा। उसकी चेतना में जो तनाव था, शिथिल पड़ने लगा और फिर अचानक ही नींद की गोद में चली गई।

मौसी ने उसे प्यासी आंखों से देखा। उसका सो जाना उसे अच्छा ही लगा। सागर में जैसे ज्वार आकर थम गया हो, ऐसा ही कुछ था रेवती का रूप-यौवन। मौसी के मन में नारी-रूप के लिए अजीब मोह था। लेकिन उस रूप की सार्थकता वह यही मानती थी कि पुरुष के लिए दुर्निवार हो उठे। उसे रेवती की जवानी के उन दिनों पर बेहद तरस आ रहा था जो उसने यों ही खो दिए थे।

मौसी के मन में आ रहा था कि उसकी पारदर्शी त्वचा को छूकर देखे, जो स्पर्श पुरुष में अनन्त कामनाएं जगाता है उसी स्पर्श का सुख ले। पर उसकी ओर बढ़ता हुआ हाथ सहसा रुक गया। जैसे सांसों ने गर्जना की हो। कहा हो--कुछ नहीं। उतनी गहरी संवेदना मौसी के पास नहीं थी। उसे हठात् लगा कि उसका गोरा बदन छूने से भी मैला पड़ सकता है। उसने हाथ को खींच लिया। बस फिर पास बैठी-बैठी उसे निहारती रही और थोड़ी देर में खुद भी आंखें झपक ली।

शाम पास ही आ गई थी। अचानक मौसी की आंखें खुलीं। रेवती खोई ही थी। उसे लगा, बड़ी देर हुई। जगाना चाहिए। धीरे से उसके बालों में हाथ फेरा। स्वर को भरसक कोमल बनाकर पुकारा--रानी!

रेवती ने धीरे से आंखें खोल दीं। क्षण भर को उसे बड़ा अच्छा सा लगा। जैसे उसके चारों ओर मंदिर की घंटियां बज रही हों और वह तन-मन से बेहद हल्की, पवित्र हो उठी हो। पर दूसरे क्षण मौसी ने उस सुख को विराम लगा दिया। उसकी ओर ताली बढ़ाती हुई बोली—लो, जाके तैयार हो लो।

मौसी ने बड़ी मिठास से कहा। रेवती को उसमें उतना ही जहर लगा।

वह उठी। अपनी खोली की ओर चली, पहुंची। ताले में चाबी डाली। ताले के खुलते ही अजीब राहत से भर उठी। मौसी की कुभाखा जैसे टूट गई; मौसी के लगाए ताले को उसने खोल जो लिया था। अंदर आई। मुंह-हाथ धोए। फिर सिंगार करने लगी; कुछ सिंगार ही सा। बाल संवारे। व्यस्तता चाहिए। बालों ने व्यस्तता दी। कंघी फेरना उसे बेहद अच्छा लगा। फिर केसर से छिटके बालों को छाती और पीठ पर डालकर दीवाल पर टंगे छोटे से शीशे में ही अधिक से

अधिक देखने की चेष्टा करने लगी। कभी उन लटों को होंठ तक ले जाती तो कभी नाक तक। कभी अगुली से लपेट लेती तो कभी मुह पर सेहरे की तरह डाल लेती। उसे क्यों किसीका अभाव महसूस हो; किसी दूसरे की जरूरत जान पड़े? वह अपने-आपमें पूर्णता नहीं पा सकती क्या ?

मौसी को एक-एक क्षण की देर अखर रही थी। उन्होंने अपनी खोली के आगे के चबूतरे से ही जोर से पुकारा—तैयार हुई रानी ?

रेवती ने सुना। लगा जैसे कहीं दूर, कोई किसीको पुकार रहा हो।

मौसी ने फिर आवाज लगाई। इस बार वह कुछ चौंकी। पर जवाब कुछ नहीं दिया। सिर्फ बालों को गूंथने लगी। मौसी ने बेताबी से पुकारा। अब वह हिली। चोटी गूथते-गूथते चबूतरे पर आई—अभी तैयार हुई मौसी। बस जरा बाल ठीक करने में देर लग गई।

मौसी ने देखा, कैसा रूप है जो हर हालत में अच्छा लगता है। वहीं से कहा—अरी, अन्दर हो जा। ऐसे बाहर झांकेगी तो किसीकी नजर लग जाएगी।

रेवती मुस्करा दी और अदर आकर तेजी से चोटी करने लगी। उसके बाद मुह को सवारा। कुछ पाउडर, कुछ क्रीम। कहीं काजल, कहीं बेंदी। और फिर खुद को देखा—हाय गजब!

वह अपने ऊपर ही अपनी आंखों की धार आजमाती रही। पर जब चोट बराबर की छुटी तो हंस पड़ी। हसकर कपड़े बदलने लगी। एक चोली उतारी, दूसरी पहनी। पर बीच में ही मन में तूफान सा उठ खड़ा हुआ। अपने-आपको उलझाए रखने के लिए उसने चट से नई साड़ी निकाल ली। कमर में फेर दिया। चुन्नटें दीं। बदन में फेर दिया। जैसे सृष्टि ही फेर में पड़ गई। कपड़े का सीधा-सादा टुकड़ा। रंग अच्छा सही। कुछ काम भी आकर्षक, माना। पर यह क्या कि बदन को फेर में लेते ही दिल को फेर में डाल दे।

साड़ी पहनकर रेवती फिरकी सी घूम गई। पल्ला उड़कर मुंह पर लगा। आंख छू जाने से पानी आ गया। दुष्ट—पर यही जब किसी दुःशासन के हाथ में आ जाए, तब साड़ी के ये डेढ़ फेर कहां रहेंगे।

रेवती सन्न हो गई। उसने उधर से अपना मन हटाना चाहा। पर मन की यही

बात जो ठहरी कि उधर ही बाग तोड कर भागता है, जिधर से कोई मोड़े। रेवती को लगा कि उसकी साडी का पल्ला भी उडता हुआ किसीके हाथ मे जा पहुचा है। हाय, डेढ़ फेर! जरा सा घेर!

मौसी बाहर से पुकार रही थी—रानी, अच्छी तरह सज लियो। जल्दी कोई नही। मेरी आदत ही कुछ उतावली की है।

पर रेवती सजे क्या! किसके लिए? अपने लिए? ऊंह, तब तो उसे इस खोली मे सज-धजकर ही बैठना चाहिए। वह तो बबई के लिए सजी है।

मौसी ने भी चिल्लाकर पुष्टि की—सच कहू हू, आज सारी बबई का रूप तेरे आगे फीका न पडा तो कोई बात! टूटे हुए दिलो की चारों ओर भीड न लगी तो क्या?

मौसी अपने शब्दो मे वासना का रस घोल रही थी। रेवती को उसमे तॉस सी लगी। उसे लगा जैसे वह सज-सवरकर बाजार मे बिकने जा रही है। मौसी उसे नीलाम करेगी; ऊची बोली वाले गाहक से सौदा करेगी। उसे अचानक ही अपने रूप, जवानी और सिगार पर खीज हो आई। हाय, उसका यह भी तो एक पहलू है। जाने क्यो नहीं सोचा कभी। अब तक जो अपनी आखो से नही देखा वह मौसी की आखो ने दिखा दिया। उसका मन किया कि ये साडी ब्लाउज लीर-लीर कर दे, होंठों की लाली और आखो के काजर को किसी तेज चीज से खुरच डाले, मुह पर थोड़ी कालिख मल ले और तब पूछे मौसी से 'अब ले चलोगी, मुझे सारी बबई घुमाने।...

सोचते-सोचते उसके माथे पर पसीने की बूदे चमक आई थीं। दिल धडकनो से भर गया था। वह घबडाई सी जहा की तहां बैठ गई। मौसी वही चली आई थी। सदमे के साथ पूछा—हाय, क्या हुआ मेरी रानी को!

रेवती ने कह ही दिया—मेरी तबियत ठीक नहीं मौसी। जी घबड़ा रहा है। मै आज चल नही पाऊगी।

मौसी को निराशा ने घेरा। चिढ़ ने चपेटा। दिल मे बैठी कोई नागिन फुकारी। पर किसी तरह क्रोध को समेट ही लिया। इस घोडी को बग्घी मे जोतने के लिए धीरज से काम लेना ही होगा। बनावटी परेशानी के साथ बोली—मै कहूं हूं, तुझे

नजर लग गई है। नजर भी और किसीकी नहीं, मेरी ही। हाय, पत्थर को भी फोड़ दे ऐसी है मेरी नजर ! जब तू वहां सो रही थी तो मैं भूखी सी तुझे देख रही थी। हाय, कैसा लग रहा था तेरा रूप ! बार-बार यही लगता था कि तुझे पाने वाला मरद तो ताजिन्दगी जागकर ही बिता देगा।

इतना कहकर उसने प्रतिक्रिया जानने के लिए कनखियों से रेवती की तरफ देखा। रेवती उसके आखिरी वाक्य पर दीए-सी भभकी। फिर वैसे ही बुझ भी गई। उसके मुंह में कड़वाहट भर उठी थी।

पर मौसी ने सोचा : इस दिए का तेल एकदम ही नहीं चुक गया। रूप की तारीफ की गर्मी से जलते देर न लगेगी। बोली—तो आराम करो रानी। रूप ही नहीं, मिजाज भी रानियों सा पाया है। लगता है, बनाव-सिंगार में ही थक गई।

रेवती ने अनायास ही कह दिया—सचमुच ही थक गई मौसी।

मौसी ने सुझाव दिया—तो मोटर मंगवा लूं। मौसी खुद इस बाड़ी में रहवे है तो क्या, मोटर तो बम्बई के जिस बगले वाले की कह मगवा लूं।

रेवती घबड़ाई, कहीं सचमुच ही न मंगवा ले। उतावली से बोली—न मौसी न। मैं आज बाहर जा ही न सकूंगी। तुम्हें मैंने बेकार में रोक रखा। मुझे अकेली छोड़ दो।

मौसी को आखिरी वाक्य चोट कर गया। पर अपने ऊपर हुए प्रहार की प्रतिक्रिया को वह छिपाना भी जानती थी। खीज छिपाकर हंस पड़ी। चलते-चलते एक शै और दे गई—मेरी जैसी बुढ़िया से तेरा मन भी लगे कैसे ! जवानी को तो जवानी से ही चाह होती है।

इतना कहकर वह बाहर से प्रसन्न और भीतर से कुढ़ती हुई चली गई। रेवती उसकी बात से लक्ष्यवेध की मछली सी बिंधकर भी चक्कर सा खाती रही। वह उन्हीं कपड़ों में बिस्तर पर जाकर लुढ़क गई।

मौसी को गए थोड़ी ही देर हुई होगी कि मनुभाई ने दरवाजे के पास से पुकारा—क्या कर रही हो बिटिया ? कुछ दिया-बत्ती नहीं करोगी क्या ?

रेवती के लड़खड़ाते से मन को उस स्वर ने सहारा दिया। वह उठ बैठी।

फिर दरवाजे पर आकर बोली—मैं तो सोचती थी बापू कि अब तुम्हें मेरी खोली का अंधियारा कभी नही दिखाई देगा।

स्वर में उलाहना था। मनुभाई को अच्छा लगा। पूछा—पर ऐसा सोचने की वजह बिटिया ?

वह लाड़ली बेटी के मान से भरकर बोली—तो तुम्ही बताओ कि आज कितने दिनों बाद सुध ली।

मनुभाई क्षणभर चुप रहकर बोले—बिटिया, जब अपनी भी सुध भूल जाता हू, तब भी तेरी सुध रहती है। पर जाने क्यों डगमगाते कदमो से तेरे पास आना अच्छा नहीं लगता।

मेरे पास आने में तुम्हारे भी कदम डगमगाते है बापू !—रेवती का स्वर सहम उठा था।

—अरी नहीं पगली।—मनुभाई की मूछे फरक उठी थीं। बोले—जब मन कमजोर हो जाता है तो पांव अपने-आप लडखडाने लगते हैं।

रेवती ने भी अचरज से भरकर पूछा—तुम्हारा मन भी कमजोर हो उठता है बापू !

मनुभाई हसे। फिर बोले—जब मन अपने किए हुए कर्मों की सफाई नही ढूंढ पाता तो कमजोर पड़ने लगता है।

कहते-कहते मनुभाई की आवाज किसी गहराई में डूब सी गई थी। रेवती के होठो पर आई शका वापस लौट गई। जाने बापू क्यों पीड़ित है। मन ही मन यह कुतूहल उगडता और घुटता रहा। दोनों के बीच में चट्टान से अड़े मौन ने उन क्षणों को और भी बोझिल बना दिया। मनुभाई ने ही साहस करके उस चट्टान को तोडा—कहीं जा रही हो बिटिया ?

रेवती ने कहा—कहीं भी तो नही बापू।

मनुभाई के चेहरे पर प्रसन्नता की लहर दौडी—तो तू इसी तरह क्यों नहीं सज-संवरकर रहती। तेरे रूखे-रूखे बाल और उदास-उदास मुंह मुझे अच्छे नही लगते। उसपर कपड़े भी ऐसे कि जो सिर्फ मेरी उम्र को सोहे।

रेवती हल्की सी होने लगी। मौसी यही कहती तो जाने उसे क्यों अच्छा नही

लगता था। बापू कह रहे है तो उसके मन मे गुदगुदी सी होती है । जैसे बापू ने बेटी के सामने ही उसके ही होने वाले दूल्हे की चर्चा कर दी हो।

रेवती ने अचानक पूछा—बापू, आज यही सोओ न । तुमने एक दिन मेरे हाथ का बनाया हुआ नहीं खाया।

मनुभाई ने मूछों ही मूछों मे मुस्कराकर कहा—अरी, कहीं कोई बेटी के घर भी खाता है ?

पर जब बेटी बाप के घर में हो तो !—रेवती ने चट से दूसरा सवाल कर दिया।

—अच्छा, अच्छा !—मनुभाई को विरोध की गुंजाइश नही दिखाई दी। बोले—तू तैयारी कर। मै बाजार से कुछ ले आऊ।

—क्या लाओगे भला !—रेवती ने बाल-भाव से पूछा।

मनुभाई ने बच्चों के मन की बात कही—इमली की चटनी।

सुनते ही रेवती हंस पड़ी और साथ ही मनुभाई भी ।

मनुभाई के जाते ही वह व्यस्त हो गई। पहले लालटेन बाली। फिर सब्जी की डलिया बाहर चबूतरे पर उठा लाई। कितनी ही सारी सब्जी थी, पर उसे कम ही नजर आ रही थी। फिर बर्तनों का भी सवाल था। वह भी कम ही कम। जाने कितने बड़े मेहमान को खिलाने जा रही थी, जो हर चीज कम ही कम लग रही थी। उसे यही डर था कि कहीं बापू को उसकी बनाई चीज पसन्द न आई तो कितना बुरा होगा। वे भी सोचेंगे कि सिर्फ सजना-संवरना आता है। काम की एक बात नही। घर मे दही भी तो नहीं, रायता ही बना लेती। भला बापू से जाते-जाते क्यो नही कह दिया। न्हाना भी तो दिखाई नही दे रहा है। आज ही क्या, कई रोज से नहीं दिखाई दिया। शायद छुट्टी लेकर घर गया है। कौन जाने ! जाने से पहले मिला तक नही। तो क्या करे, खुद ही ले आए। तब तो खाना ही रह जाएगा। बस हारकर वह जो था उसे सतोष करके बनाने लगी।

खाना बनाने मे उसे कितना वक्त लगा, पता ही नही चला। हर चीज बनाते वक्त मनुभाई के हिलते हुए दांतों या बिना जड़ों के मसूड़ों की ही सोचती। मूछों से ढके उनके मुह के दांत तो उसने देखे ही नहीं थे। बस, स्वयं कल्पना कर ली

कि आगे के दांत हिल रहे होंगे और जाड़ कभी की निकल चुकी होगी।

ऐसे ही विचारों में खोए-खोए बन गया खाना। सिर्फ पूरियां उतारनी बाकी रह गई थीं। आटे में उसने मोन दिया था, जिससे बापू को चबाने में तकलीफ न हो। स्टोव बुझा दिया। खाली क्यों जले फिर शोर भी तो ढेरों मचाता है। पर बापू ने बड़ीदेर लगा दी। क्या इमली का पेड़ बोने बैठ गए। बस अब तो आ लिए।

वह अपनी कल्पना पर आप ही हंसी। फिर सहम सी उठी—भला ऐसे भी कोई सोचता है, अपने लोगों के बारे में; यहां जाने के वक्त भी 'आवज्यो, आवज्यो' ही कहते हैं। कहीं···धत्···उसने मन को समझाया। क्या बुरी बात सोचता है। पर मन तो अपने मन की ही करता है। रेवती उसे मनाते-मनाते थक गई। जब वह माना ही नहीं तो उठकर बाहर आ गई। कीमती साड़ी पहने-पहने ही नंगे चबूतरे पर बैठ गई।

बाहर अंधेरा था। तारों का सामूहिक प्रयत्न भी अंधेरे को घटाने में कामयाब नहीं हो रहा था। वह बापू की राह में आंख बिछाए बैठी थी। पर उस अन्धेरे में तो थोड़ी दूर की चीज भी नहीं दिखाई दे रही। वह खोली में से लालटैन उठा लाई, खंभे में गड़ी कील पर टांग दी। पता नहीं, किसने वहां कील गाड़ी थी। शायद कोई औरत ही रही होगी। उसका 'कोई' अंधेरी रातों में देर से आता होगा। वह उसीको रास्ता दिखाने को यहां लालटैन टांग दिया करती होगी। वह सचमुच ही बड़ी अच्छी होगी।

यह सोचते ही वह सकुचा गई। जैसे अपनी तारीफ आप कर डाली हो। फिर ध्यान आया—बापू, लाठी भी तो नहीं ले गए। रात में तो वही उनकी आंख बन जाती है। उनकी लाठी की ठक-ठक की आवाज बहुत कम सुनी। फिर भी पहचानते देर नहीं लगती। लगता है जैसे ऊंची एड़ी का जूता पहने कोई एक टांग वाली मेम चली आ रही हो।

'एक टांग वाली मेम!' रेवती की गुंफित हंसी पियानो सी बज उठी। उस हंसी की मिठास को सराहने वाला उसके अलावा और कोई भी न था। वह जरा रुककर फिर हंसी। उसकी मिठास जानने को हंसी। पर इस बार हंसी बेसुरी सी

हो गई। वह बनावटी हंसी जैसे हंस ही नहीं सकती थी। तभी उसके मन मे आया—फिल्म मे तो सभी कुछ बनावटी है। वह भला वहा कैसे सफल हो सकती है। मौसी तो बस यू ही ढाक के तीन पात वाली बात करती है। वह फिल्म मे कभी नही जाएगी, कभी नही जाएगी।

अचानक किसी आने वाले पर उसकी निगाह पडी। गाढ़े अंधेरे से वह हलके अंधेरे की ओर बढ़ रहा था। ज्यों-ज्यो लालटैन के करीब आता गया, अंधेरा और झीना पडता गया। आने वाले पाव जैसे डगमगा रहे थे। एक क्षण को उसे लगा शायद बापू। पर बापू कैसे हो सकते है। उनकी सफेद मूछें तो अन्धेरे मे भी आकाशगगा सी चमकती है। 'धौली-धौली, प्यारी-प्यारी'। क्षण भर को वह आने वाले को भूलकर बापू की मूछो की धवलता मे ही खो गई। तब तक आने वाला आकर उसके पांव के पास चबूतरे पर ही बैठ गया। उसने अचानक चौंककर देखा—गाडगिल।

—गाडगिल! —उसकी भौहो मे घृणा की ऐंठन भर उठी।

—गाडगिल! —उसे हलका सा भय भी लगा। वह क्यों इस वक्त आया और आकर वही बैठ गया। कहीं आज भी शराब तो नही पी है इसने। उसने कुछ कठोर होकर पूछा—कुछ काम है तुम्हें?

पर वह जवाब देने के बदले चबूतरे पर लेट गया। रेवती बिगड़ी—बड़े ढीठ हो। जवाब दो कि क्या काम है? कुछ काम नहीं तो अपनी खोली में जाकर आराम करो।

पर गाडगिल जैसे बहरा हो गया था। एक बार रेवती के मन मे आया कि उसे ठोकर मारकर हटा दे, पर पाव जमीन में धस सा गया। आदमी को ठोकर··· वह सहम गई। पर वह चुप क्यों है। क्या ज्यादा पी ली। पर बदबू तो नहीं। गाड-गिल ऐसे मौन रहने वाला जीव थोड़े ही है!

उसने झट से कील पर से लालटैन उतारी। उसके मुख के पास ले जाके देखा। शव सा पड़ा था। वह सहम गई। कही···। पर नही। सास तो चल रही थी। शायद बेहोश है।

बेहोश है—यह मन मे आते ही उसके मन की सारी घृणा कही किसी कोने

में सिमटकर बैठ गई। वह झपटकर अन्दर गई। एक गिलास जल लाई। उसके मुह पर छींटे दिए। आंचल से बयार की। प्यार से हिला-हिलाकर चैतन्य करने की कोशिश की। एक बार···दो बार···तीन बार···बार-बार की छपकों से उसने सिर को सहारा दिया। बोली—एक घूट जल पी लो।

गाडगिल गिलास का सारा पानी पी गया। फिर क्षण भर सांस सी लेकर अपने सहारे बैठ गया। थोड़ी देर चुप रहकर बोला—मुझे भूख लगी है। कुछ खाने को दो।

रेवती का मातृत्व प्रबुद्ध हो चुका था। गाडगिल अब उसे लम्पट युवक के स्थान पर निरीह शिशु लग रहा था। उसने करुणा से भरकर उसे देखा और बिना कुछ कहे लालटैन उठाई और खोली में आकर स्टोव जलाने लगी। तभी उसने गाडगिल को कहते सुना—कई दिनों से कुछ खाया नही। क्या कुछ तैयार नहीं ?

—अभी दो मिनट में तैयार हो जाएगा भाई।—रेवती ने ममता से कहा। उस क्षण खाना बनाने की व्यस्तता में वह यह पूछना भी भूल गई कि कई दिनों से न खाने की वजह।

रेवती ने चट से पूरिया उतारी। साग-भाजी पहले से तैयार ही थी। जब तक पूरिया फूले, उसने थाली सजा दी। फिर पूरियां रखकर पास ही आसन लगा दिया। यह सब करके उसने आवाज दी—भीतर आ जाओ भाई!

भाई···भाई···भाई···। भूख ने गाडगिल की सभी वासनाओं को जर्जर कर रखा था। जैसे उपवास से आत्मा पर पड़े मल के आवरण हट गए हों। उसे यह सम्बोधन बड़ा प्यारा लगा। किसी युवती ने उसे कभी इस तरह पुकारा ही नहीं था। कम से कम उसे तो याद ही न था। फिर उसे यह पसन्द ही कब था कि कोई तरुणी उसे भाई कहे। वह चुपचाप उठा। थाली पर आकर बैठ गया। बीच-बीच में कुछ ऐसी दृष्टि से, जो उसके पास इससे पूर्व कभी नहीं थी, रेवती की ओर देखने लगता। रेवती को कढ़ाई की पूरी और उसकी थाली को देखने के अलावा फुर्सत ही नहीं थी। एकान्त से डसा हुआ उसका मन पुनः ऐसी व्यस्तता पा चुका था जो उसे बड़ी ही प्यारी लग रही थी। वह उसकी थाली में पूरिया उतार-उतारकर डालती रही। गाडगिल के विरोध को भी न सुना। एक बार तो गरम-गरम पूरी

उसके हाथ पर ही आ पड़ी। गाडगिल उफ कर उठा। रेवती हस पड़ी—रोको मत, खाओ। कहते हो, कई दिन से नही खाया। सब रोज की कसर पूरी करनी होगी आज।

थोडी देर में गाडगिल ने हथियार डाल दिए। तृप्तिपूर्वक किए भोजन से उसके पीले प्रभावहीन चेहरे पर भी ज्योति सी आ गई। रेवती ने देखा—वही शरारत भरी चमक ! उसका मन फिर उसकी ओर से हटने लगा। मनुभाई का ध्यान आया। भला अब तो आ जाते। पता नही क्या हुआ। कहो'''मन ने फिर दुष्कल्पना की। उसने उसे मनहूस कहकर धिक्कारा। पर मन मनमानी करता ही रहा। गाडगिल हाथ धोकर पास ही बैठ गया था। रेवती को चिंतित देखकर बोला——क्या सोच रही हो बहन !

'बहन' रेवती अचकचाई। यकीन नही हुआ। शायद गलत सुन लिया। गाडगिल समझ गया—तुमने मुझे रोटी देकर मेरी जान बचाई। तुम तो मेरी मा हो।

——मा'''! —रेवती का यह अधूरा स्वप्न न जाने कब पूरा होगा। सामने बैठा हुआ गाडगिल उसे मां कह रहा था। पर उसे उसके मुंह से यह पवित्र नाम अच्छा नहीं लगा। उसके मुह पर तो फिर वही दुष्टता झलकने लगी थी।

गाडगिल जैसे उसके मन की हर बात पढ पा रहा था बोला——कभी-कभी सोचता हूं कि एक मां ही तो ऐसी है जो चोर, उचक्का, बदमाश, आवारा कैसा भी बटा हो जाए, उसे भी अपने आंचल की छाया देती है। मैंने फिल्मों में यही देखा है। असली मां के बारे मे तो जानता ही नही। कभी-कभी लगता है, शायद मैं किसी पेड़ पर कडवे फल सा पैदा हो गया था।

क्षण भर को उसके चेहरे पर एक गहरे अवसाद की लीक सी खिंच गई। रेवती ने देखा—'यह मा की ममता को सिर्फ उतना ही जानता है जितना फिल्मो मे देखा है। पर इसके अभाव की वेदना इतनी तीव्र है कि मां वाला बेटा भी नहीं समझ सकता।' वह अपनी पीडा की तुलना उससे करने लगी। गाडगिल को मा चाहिए। रेवती को सन्तान। गाडगिल कहता है कि तुम मेरी मां हो। पर उस दिन तो यही गाडगिल कुछ ऐसा कहता था कि जो'''

रेवती अस्थिर हो उठी। सामने बैठा हुआ अनाकर्षक युवक उसे उलझन में डाल रहा था। वह उसे मा का पद दे रहा है। पर गुलाब की जिन्दगी को चौपट

करके भी पछतावा नहीं। वह मन ही मन कठोर पड़ने लगी। फिर भी पूछा—तुम ने इतने दिन से कुछ खाया क्यों नहीं था।

उसने मुंहफट की तरह कहा—पैसे नहीं थे।

रेवती ने कुछ तीखे स्वर में फिर पूछा—पर शराब को तो मिल जाते हैं।

गाडगिल ने अपनी प्रकृत मुस्कान के साथ कहा—क्या करूं, ऐब लगा है। पैसे होते हैं तो पिए बिना रह नहीं पाता।

—भूखों तो रह लेते हो!—रेवती के स्वर में व्यंग्य था।

वह कुछ स्पष्ट रूप से मुस्कराया—रोटी तो दया करके कोई न कोई दे देता है। पर शराब दया करके कोई नहीं पिलाता। तुम्हारे पास इतने पैसे हैं, अगर एक बोतल के लिए मांगू तो दोगी ?

रेवती की दृष्टि उसकी जूठी थाली पर गई। उसे उस क्षण लगा जैसे उसने अपने भोजन की थाली में कुत्ते को खाना परोस कर खिलाया है। उसकी उस जूठन को छूने की कल्पना भी सिहरन से भर डालती थी। किसी तरह क्षोभ को रोककर बोली—तुम भले आदमी की तरह क्यों नहीं रहते ?

गाडगिल फिर मुस्कराया। जैसे उस मुस्कान में सारी दुनिया पर आक्षेप था, रेवती पर भी! बोला—क्या जरूरी है कि दुनिया में सिर्फ भले ही लोग रहें ?

रेवती क्रोध के मारे कुछ न कह सकी। वह कहता गया—और यह क्या जरूरी है कि जो भले दीखते हैं वे भले ही हों ?

रेवती ने कड़वे स्वर में कहा—तुमसे इस जिंदगी में कभी कोई अच्छा काम नहीं होगा!

इसपर गाडगिल जोरों से हंस पड़ा—तुमने एकदम सच कहा। मेरी जनमपत्री होती तो उसमें भी यही लिखा होता। शायद हाथ या मस्तक की रेखा देखकर कोई पंडित भी यही कहे। पर सच बात अक्सर लोग छिपा ही जाते हैं, कहते भी हैं तो जोश में आकर या गुस्से में भरकर।

रेवती को लगा कि वह उसके गुस्से और स्पष्ट भाषण दोनों की ही हंसी उड़ा रहा है। उसने और उत्तेजित होकर कहा—तुम अपनी निर्लज्जता को तारीफ की बात मानते हो ?

—बिलकुल सच कहा तुमने! —गाडगिल ने उसी तरह मुस्कराते हुए कहा—तभी तो तुम्हें मैंने ओट से कभी नहीं देखा। छिपाकर कुछ नहीं किया। जब मन आया आंखें गड़ा दीं। जो जी चाहा, कह दिया। क्या मैं उन शरीफों से अच्छा नहीं जो काले चश्मे की मदद लेते हैं?

रेवती ने उसके तर्क से प्रभावित हुए बिना ही कहा—बुराई तो बुराई है, चाहे छिपकर की जाए या खुलकर। खुलकर करने से उसे सराहा नहीं जा सकता। तुमसे बड़ा पापी भी भला कोई होगा जो एक मासूम लड़की की जिन्दगी तबाह करके जिम्मेदारी से भागना चाहते हो।

—मासूम लड़की!—गाडगिल ने व्यंग्य किया। बोला—बिल्कुल फिल्मी डायलाग! कोई फिल्म इस डायलाग के बिना बनती ही नहीं। ये मासूम लड़कियां कितनी जालिम होती हैं, तुम क्या जानो। छिपकर इशारे करें, एकान्त में मिलें। फिर बुलावे पर आ जाए तो बोलो मैं क्या करूं?

—तुम उससे शादी कर सकते हो।—रेवती ने पुरानी बात कही।

—तब तो एक रियासत चाहिए। उसने कुटिलता से कहा—पूरी रियासत। जाने कितनी शादियां करनी पड़ें।

रेवती आपे से बाहर हो उठी—तुम राक्षस हो! किसीकी जिंदगी तबाह करके तरस भी नहीं खाते!

उसने अविचलित रहकर ही कहा—यहां तो रोटी खाने को भी कुछ नहीं और तुम कहती हो, तरस खाओ। वह भी दूसरों पर!

—पर मैं जो रुपया देने को तैयार थी।—रेवती का स्वर ऊंचा होता जा रहा था।

गाडगिल बोला—मैं ईमानदार था, इसलिए कह दिया कि जब तक वह रुपया तब तक वह मेरी बीवी। उसके बाद अपने बाप की बेटी। तुम्हें बुरा लगा था न। पर मैं लाइलाज हूं। ऐब मैं छोड़ नहीं सकता। जुआ, शराब मुझे रोटी से ज्यादा प्यारे हैं। युधिष्ठिर ने बीवी को दांव पर लगा दिया था। फिर मैं ही लगा बैठूं तो कोई ताज्जुब! सच पूछो तो मैंने गुलाब की जिंदगी शादी न करके तबाही से बचा ली है। तुम इस वक्त गुस्से में हो। मेरी बात नहीं समझोगी। बुराई मेरी नस-नस में समा चुकी है। सब तरह से खुद तबाह हो चुका हूं। कमजोरी से ऊपर उठ

नही पाता। सामने शिकार हो तो रोक नही पाता खुद को।

गाडगिल चुप हो गया। रेवती बेबस सी चुप थी। गाडगिल चलने को तैयार हुआ। चलते-चलते बोला—अच्छा बहन, चलूं। बहुत खा लिया। नीद की जरूरत महसूस हो रही है। तुम्हारा खाना भी वाकई लाजवाब था।

वह चला गया। रेवती उसके 'बहन' सबोधन पर झुझला कर रह गई। वह अब फिर अकेली थी। झुझलाहट के दूर होते ही अकेलापन और तीखा हो गया। उसने जूठी रसोई की ओर देखा और तभी परेशान सी होकर सोचने लगी : पर बापू क्यो नही आए !

मनुभाई बड़ी देर से लौटे। रेवती खंभे की कील पर लालटैन टांग उसीके सहारे बैठी उनकी प्रतीक्षा करती रही। अंदर बुझा हुआ स्टोव, गाडगिल की जूठी थाली, और बचा-खुचा हुआ आटा जैसे का तैसे पडा था। सिंधी की खोली से कराहने की आवाज आ रही थी। पता नहीं बेटी कराह रही थी या मां। कई बार मन किया कि जाके देख आए। पर तन मन का साथ नहीं दे सका। मौसी तो कब की गई लौटी ही न थी। जैसे बंबई मे ही रम गई थी। गाडगिल जरूर ही खुर्राटे ले रहा होगा। उसने योगी सा मन पाया था। जिधर चाहे, उधर अनायास ही लगा लेता था। बिस्तर पर लेटकर करवटें लेने की नौबत कभी न आई थी। भूख मे भी सो सकता था, अभाव मे भी मस्त रह सकता था। रेवती सब कुछ की स्वामिनी होकर भी अर्थहीन हो रही थी। आखिर मनुभाई आ गए। पर वह उठी तक नहीं; बोली तक नहीं; देर से आने का कारण तक नही पूछा।

मनुभाई ने धीमे से हसकर पूछा—नाराज हो बिटिया ?

—तुम्हें क्या !—रेवती के लिए भी मान का एक ठौर शेष था। वैसे ही बोली—मै तुम्हारी लाई हुई मिठाई छूऊंगी भी नही।

मनुभाई ने निर्मल स्वर में कहा—इसीलिए मै लाया ही नही।

—क्या ?—रेवती के मुख से अचानक निकला। मनुभाई रीते हाथ खड़े थे।

वे बोले—अच्छा तो चल, पहले कुछ खिला। तब तुझे एक अजीब बात बताऊंगा।

रेवती उठी नहीं। बोली—नहीं, पहले बताओ।

—बड़ी जोर की भूख लगी है बिटिया।—मनुभाई ने प्यार से कहा।

रेवती का हठ टूट गया। उठी, लालटेन उतारी। अंदर गई। मनुभाई भी साथ-साथ थे। उन्होंने जूठी थाली को देखा और खुशी से कहा—यह तुमने बड़ा अच्छा किया जो खा लिया। तो सुनो, अब कुछ बनाने की जरूरत भी नहीं। मेरा पेट कुछ खराब है, शायद न खाने से आप ठीक हो जाए।

—बनो मत बापू।—रेवती ने अपनेपन के अधिकार के साथ कहा। उसने चट से जूठी थाली हटा दी। थोड़ा आटा और गूंधा। स्टोव जलाया। सब्जियां गरम कीं। पूरियां उतारीं और हुक्म किया—अब इधर आकर बैठो।

मनुभाई चुपचाप खाने लगे। बीच-बीच में स्वाद ले-लेकर तारीफ करते जाते, 'सब्जियां तो चटनी-अचार को मात कर रही हैं।' सब साफ कर गए। रेवती बेहद खुश थी। वे चमक भरी आंखों से कह रहे थे—कभी जवानी में इस तरह खाया करता था। पर अब का क्या खाना। कैसा भी हो, खा लिया जाता है। सच कहता हूं बिटिया, तेरे हाथ में जो रस है, वह तो पाकशास्त्र के पंडित नल के हाथ में भी न रहा होगा।

रेवती कहती—तुमने तो सभी कथा-पुराण पढ़े हैं बापू।

वे हंसकर जवाब देते—पढ़ने की मेहनत तो किसी और ने की। अपन तो सिर्फ सुन-सुनकर ही ज्ञानी हो गए।

बात समाप्त कर वे जोरों से हंस पड़े। जैसे मजाक में कहे ज्ञानी शब्द का ही मजाक उड़ा रहे हों। फिर कुछ थम कर बोले—अरी बेटी, स्वामीजी अपने उपदेशों में सुनाया करते थे। बस बहुत सी बातें भूल गईं, थोड़ी सी याद रह गईं। उन्हींके बिरते हम भी पंडित हो गए।

मनुभाई जब पूरी तरह तृप्त हो गए तो रेवती के लिए सिर्फ दो पूरियां बची थीं, साग-भाजी कुछ नहीं। उसने पूरियां हाथ पर रखीं और नमक से खाने लगी।

मनुभाई ने देखा तो कुछ हैरत के साथ बोले—यह क्या, तूने खाया ही नहीं था ?

रेवती मृदु हंसी बिखेरती चुप रह गई और मुह का कौर चबाती रही। मनुभाई परेशान से बार-बार पूछने लगे—सच-सच बता कि तूने मुझे धोखे मे क्यों रखा ? तेरे लिए साग सब्जी की खुरचन भी नहीं छोडी। अब ये सूखी पूरियां निगल रही है।

रेवती ने बडे ही आनंद भाव से कहा—बापू, बड़ी स्वादु है ये पूरियां। तुम नहीं समझोगे इनका स्वाद।

—तो आज और किसको भोज कराया।—बापू ने कुछ नाराजगी से पूछा।

—गाडगिल को।—रेवती ने कह दिया। मनुभाई यकीन नहीं कर पाए। उसने आगे कहा—बहुत ही भूखा था बेचारा। बेहोश होकर गिर पडा था भूख के मारे।

—पापी है। नाटक किया होगा। बेहोश होकर रेल की पटरी पर क्यों नहीं गिरा!—मनुभाई ने खीज के साथ कहा।

—यह उसकी तकदीर।—रेवती ने हलके से कह दिया। फिर बोली—अच्छा उसपर गुस्सा फिर करना, पहले बताओ कि तुम इतनी देर कहां रहे ?

मनुभाई ने टालना चाहा। बोले—अब सोओ बिटिया, कल दिन मे सुनना।

रेवती ने हठ पकड़ी। उन्होंने फिर समझाया—अरी, क्यों बेकार के किस्से मे नींद खराब करती हो।

रेवती ने बच्ची की तरह मचलकर कहा—हम नही जानते बापू!—हम तो जरूर सुनेंगे।

—अच्छा तो पहले कुल्ला तो कर ले। मैं भी हाथ धो लूं।—उन्होंने कहा।

रेवती उठी। हाथ धोए। मनुभाई के धुलाए। फिर बोली—चलो, बाहर चबूतरे पर ही बैठें। यहां अभी गर्मी हो रही है।

वह दरी उठाने चली तो मनुभाई ने रोक दिया। बोले—अरी कोई इतना लंबा किस्सा थोड़े है!—वे असल मे बचना चाहते थे।

—वाह, इतना लंबा क्यों नहीं होगा। जब तुम्हें घंटों लगे उसे देखने मे तो कहने मे भी तो कुछ वक्त लगेगा ही!—रेवती ने तर्क किया और साथ ही बाहर चबूतरे पर दरी डाल दी।

वे दोनों उसपर आ बैठे। अन्दर लालटैन जलती रही। उसीके बाहर पडने वाले मद्धिम प्रकाश मे वे एक-दूसरे को अच्छी तरह देख लेते। मनुभाई चुप ही थे।

रेवती ने पूछा—तो बापू।

—दाबू मिले थे।—मनुभाई ने कहने का साहस संचित करने के लिए जैसे पहले यही स्वीकार किया।

रेवती चुप रही। उन्होंने शुरू से कहना शुरू किया—जब मैं मिठाई वाले की दुकान पर पहुचा तो मैंने देखा : वे ही हैं; कुछ खरीद रहे हैं। मन मे जाने क्या आया कि मैं एक ओर को हटकर खडा हो गया। उन्हे दिखाई न दू, इसका भी ध्यान रखा। मिठाई लेकर वे चले तो मैं भी थोड़ी दूर के फासले से उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

इतना कहकर उन्होंने रेवती के मुख की ओर देखा। वह निर्विकार थी। मनुभाई बोले—मुझे लगा जैसे वे इधर ही आ रहे हों। पर कुछ ही आगे बढने पर मैंने देखा कि कोई लडकी उनके साथ हो ली।

—लडकी!—रेवती हसी। हसी में व्यंग्य था। पूछा—तुमने अच्छी तरह देखा बापू!

—बिल्कुल अच्छी तरह!—वे बोले—शुरू में लडकी को पहचान न सका। पर जब वे एक बिजली के खंभे के पास से गुजरे तो पहचानते देर न लगी। वह लडकी इन्द्रा थी।

रेवती के चेहरे पर तरह-तरह के भाव आने-जाने लगे। उसे याद आया, एक बार पहले भी बापू ने उसे बाड़ी के पास देखा था। क्या तब भी वह रेवती नहीं इन्द्रा के लिए आया था। फिर किसी तरह स्वयं को सभालकर बोली—चलो अच्छा हुआ बापू। इन्द्रा को अच्छा लडका मिल गया और जयन्त को अनुरूप लडकी।

मनुभाई जान ही नहीं सके कि उसके स्वर मे दर्द है या व्यग्य। वे बोले—मैं फिर बराबर उनके पीछे रहा। वे जुहू गए। मैं वहां भी गया। वहा से वे खार गए मैं खार भी गया। मैंने यह भी पता कर लिया कि वे क्या करते हैं, कहां रहते हैं।

रेवती ने सन्त्रस्त भाव से कहा—बेकार मेहनत की बापू! जरूरत ही क्या थी!

मनुभाई ने पूछा--बाबू तुम्हारे क्या लगते है, बिटिया !

रेवती ने बडी ही रूक्षता से कह दिया—कोई पुरुष किसी स्त्री का क्या लगेगा ! पर छोडो भी यह बात ! मेरा ऐसे भग्गू आदमी से नाता ही क्या हो सकता था !

रेवती की रूक्षता मे भी कराह थी। मन ही मन उसने सोचा कि मात भी मिली तो किससे ! इन्द्रा''उसे ग्लानि का अनुभव हुआ। जो पुरुष इन्द्रा की आसक्ति में फस सका उसीपर वह अपने सपनों का जहान बसाना चाहती थी। बेवकूफ !

उधर मनुभाई कह रहे थे--पर बिटिया, वे बडे ही बुरे आदमी के साथ है। औरतो को खराब करना, सब तरह के गैर-कानूनी धधे चलाना उसका काम है।

रेवती होठो को वक्र करके बोली--अच्छा हुआ। पुरुष तो बने।

--पर उन सब कामों मे बडा खतरा है।--वे फिर बोले।

रेवती ने पूर्ववत् कहा—अच्छा ही है बापू। जो मर्द होकर भी खतरा नहीं उठा सकता, वह भी भला कोई मर्द है !

मनुभाई चुप हो गए। रेवती गर्म सासे छोड रही थी। मनुभाई स्पष्ट ही अनुभव कर रहे थे कि वह उस प्रसग से जितनी तटस्थता दिखाना चाहती थी उतनी तटस्थता उसमें न थी। बोले—उसे वहा से बचाने के लिए कुछ करना चाहिए।

—मर्द को बचाने के लिए औरत कुछ करे ?--रेवती ने तिक्त स्वर में कहा।

मनुभाई ने कोमल स्वर में कहा—बिटिया, तुम नाराज मन से यह सब कह रही हो !

रेवती कुछ क्षण रुककर बोली—शायद सही कहते हो बापू। पर इस समाचार मे अच्छाई भी है मेरे लिए। मैने अपने मन पर जो बेकार का बधन डाल रखा था वह अब टूट गया।

रेवती की आखों में शोले दहकने लगे थे। मनुभाई चिंतित होकर बोले—बेटी, बाहरी बंधनों को चाहे तोड़ देना, पर भीतर के बधनों को न तोडना।

इतना कहकर वे उठ खडे हुए। रेवती ने रोका तक नहीं। वे चल दिए। जब कोई दस-पाच कदम बढ चले तो रेवती कुछ चौकी। पुकारना चाहा, पर फिर तन

मन का साथ न दे सका। वह बैठी की बैठी रह गई।

फिर अकेलेपन ने घेर लिया। मन जाने कहा-कहां भटकता, पर लौट-फिरकर इन्द्रा और जयन्त पर आ जाता था। इन्द्रा···उसके ध्यान मात्र से रेवती के बदन में घृणा भरी सिहरन होने लगती। उसे लगता जैसे गीदड़नी सिंहनी के शिकार को खा रही है। पर सिंहनी गुर्रा भी नहीं पा रही।

जयन्त के स्मरण से उसे क्रोध और घृणा से अधिक अचरज की अनुभूति होती। आखिर यह परिवर्तन उसमें कैसे हो गया! इतना साहस उसमें भर किसने दिया! क्या वह स्वयं उसे जो न दे सकी वह इन्द्रा ने उसे दिया? इन्द्रा···फिर घृणा से उसका सुन्दर मुख विकृत हो गया। वह मान ही नहीं पा रही थी कि उसके पास वह सब कुछ कैसे हो सकता है, जो स्वय रेवती के पास नही। इस विचार ने उसे कुछ इतना अस्थिर कर दिया कि एक जगह बैठी तक न रह सकी।

अस्थिर भाव से खोली के आगे घूमते-घूमते उसके मन में भयानक संकल्प जलमने लगे। भग्गू जयन्त बंधन तोड़ सकता है, तो बंधनों पर हंसने वाली रेवती क्यों नहीं उनसे मुक्त हो सकती। उच्छृंखल केवल पुरुष ही नही, स्त्री भी हो सकती है। हर रात को उसे एक नया जयन्त मिल सकता है। सैकड़ों-हजारों जयन्त उसके चरण चूमने को उतावले रह सकते हैं। जयन्त ने रेवती की सीमा लांघी है। रेवती सारे विश्व की सीमा लांघ जाएगी।

उसका मुख भयानक हो उठा था। यदि इस समय वह दर्पण देख पाती तो शायद भय से चीख उठती। चीखना वह अब भी चाहती थी। पर क्षोभ से, रोष से, अवज्ञा से; भय से नही।

पर मनुभाई क्यों उसपर बंधन बनना चाहते हैं। वे चलते-चलते यह क्या कह गए कि भीतर के बंधनों को न तोड़ना। क्या हैं वे भीतर के बंधन? अहं कायरता के बंधन! शायद इन्ही भीतरी बंधनों से जयन्त बंधा था। तभी···तभी···कायर। नहीं, अब तो कायर नही। अब तो वह रेवती के अपमान और इन्द्रा के अभिसार की हिम्मत रखता है। पर जयन्त मेरा अपमान करके सुखी नही रह सकता। मैं राम के बाण की तरह उसका पीछा करूंगी। मैं एक आंख की ही बलि लेकर रहने वाली नहीं। जयन्त को अपने प्राणों की बलि देनी होगी।

उसके मन की आंखों के आगे खून से लथपथ जयन्त खड़ा था। उसने उसकी अन्तिम छटपटाहट पर हंसने की कोशिश की, पर असफल रही।

उसे लगा कि उसकी वह घृणा ही जयन्त की विजय है, सब से बड़ी विजय। जयन्त के किसी आचरण से रेवती हिल उठे तो स्थिर क्या रहेगा। रेवती के आंचल की हवा में वही जयन्त तिनके सा उड़ता आया है। तो क्या आज उसकी उड़ाई धूल रेवती को अंधा कर देगी, रेवती को रास्ते से हटा देगी, रेवती को दीन कर देगी।

'नहीं, नहीं, नहीं।' रेवती ने मन की समस्त शक्ति से कहा। वह भूल ही गई कि उसकी 'नहीं' मुखर होकर बाड़ी में गूंज उठी थी और बेचैन मनुभाई को खींच आई थी।

मनुभाई ने प्यार से उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—बिटिया, अभी सोई नहीं ?

रेवती उस स्पर्श से ऐसे शीतल हो गई जैसे वर्षा की फुहार से तपती हुई वनस्पति। वह बोली कुछ नहीं। मनुभाई उसे सहारा देकर चबूतरे पर बिछी दरी पर ले आए। बोले—अब तुम लेटो बिटिया। यहीं सोओ आज। भीतर गर्मी है। मैं तुम्हारा तकिया ले आता हूं। तुम सोओ, मैं तुम्हें लोरी सुनाऊंगा।

उस क्षोभ में भी रेवती हल्के से हंस उठी। वह समझ रही थी कि मनुभाई उसे खुश करने को ही लोरी की बात कर रहे हैं।

रेवती लेट गई। मनुभाई सिरहाने बैठकर उसका सिर सहलाने लगे। रेवती को उस स्पर्श में मां की ममता और पिता का स्नेह मिलने लगा। जयन्त के इस आचरण ने उसे पुरुष मात्र के विरुद्ध खड़ा कर दिया था। वह ऐसे मनोविप्लव से गुजर रही थी कि तनिक भी विपरीत प्रतिक्रिया उसे कहीं की कहीं ले जा सकती थी। उसके पास सौंदर्य था, यौवन था पर उसकी सार्थकता का तंतु उसके हाथ में न आया था। मां बनने की अद्‌भुत लालसा का समाधान उसे बड़ा ही भयानक स

दीखता था। अधिकांश मनुष्य ऐसे ही होते हैं कि जीते रह सकते हैं, जीते चलते हैं और उन्हें जीवन के लिए किसी उद्देश्य की आवश्यकता भी नहीं जान पड़ती। उनका समस्त सुख-दुःख, राग-विराग, प्यार-कलह, रोग-शोक ही उसके जीवन की व्यस्तता बना रहता है पर रेवती उस व्यस्तता से मुक्त होने के साथ-साथ अपने प्रति कुछ इतनी सजग भी थी कि उसे हर बीतते क्षण का अहसास होता और वह स्वयं से पूछना चाहती कि इस क्षण को यों ही क्यों बीत जाने दिया; क्या अगला क्षण भी ऐसे ही चला जाएगा; आने वाले अमित क्षणों के लिए क्या करे।

वह कगार पर खड़ी सोच ही रही थी कि जयन्त ने उसे धक्का दिया और वह ऐसी स्थिति में पहुंच गई कि मन की वल्गा के ढीली पड़ते ही कभी भी, कहीं भी गिर सकती थी।

उसके भ्रू-विलास को भी सहने में असमर्थ जयन्त कैसे इतना सबल हो गया! वह धक्का दे तो रेवती के पांव उखड़ जाएं। इस विचार के आते ही रेवती उस प्रतिक्रिया से ऊपर उठना चाहती। पर दूसरे ही क्षण लगता कि बदले की भावना में कौन सी कमजोरी? जो शक्तिहीन है वह क्या खाकर बदला लेगा। रेवती यदि किसीको पुरस्कृत कर सकती है, तो दंडित भी। ये सब जयन्त हैं, जितने भी गाड-गिल, न्हाना, सुंदरम् और लाखों-करोड़ों पुरुष हैं वे सब जयन्त हैं। रेवती इस विराट् जयन्त के दर्प को अवश्य ही चूर करेगी, जरूर करेगी।

पर सिर सहलाते हुए मनुभाई उसे एक क्षण को भी जयन्त न लगे। उसकी नसों का तनाव मनुभाई के स्पर्श से कम होता गया। उनके छूने में ही लोरी का माधुर्य था। जैसे हर स्पर्श जिस सुखद सिहरन को पैदा करता, उसमें लोरियों के मधुरतम स्वरों का कंपन भरा था। धीरे-धीरे रेवती जयन्त से दूर चली गई। मनु-भाई की लोरी उसे नींद की परियों के लोक में ले जाने लगी, जहां पहुंचकर हर वृद्ध बच्चा हो जाता है। हर बच्चे के लिए पलकों का पालना होता है, जिसमें नींद ही नींद भरी रहती है; ऐसी नींद कि सपने भी पीछे छूट जाएं, ऐसी नींद कि सभी कुछ का विलय हो जाए।

रेवती सो गई।

मनुभाई जागते रहे।

सुबह हो गई।

रेवती को लगा कि एक मधुर अंगडाई सी रात बीत गई।

मनुभाई को लगा कि बच्चे के मस्तक के चुंबन सी रात बीत गई।

फूल सी हल्की रेवती बोली—हाय राम, तुम जाग ही रहे हो !

—क्या मैं रात भर का जगा सा दीखता हू ?—मनुभाई ने पूछा।

रेवती इस प्रश्न मे जिस सुख और स्नेह की अनुभूति की, उसने उसे आगे कुछ पूछने ही नही दिया। मनुभाई निपटने चले गए। रेवती भी उठी जैसे रात मे तारो की डाह मे डाल से झरे जुही के फूलों को सुबह होते ही कोई बटोर ले गया हो।

रेवती सुबह के कामों से निबटी ही थी कि उसे खोली की देहली पर बैठी हुई गुलाब की मा दिखाई दी : रोग और दुर्भाग्य की छाया सी। उसे देखकर रेवती को बड़ी दया उपजी। मिठास के साथ बोली—कहो मां, कैसी तबियत है तुम्हारी। गुलाब कैसी है अब !

वह उत्तर देने के प्रयास मे खासने लगी। सास उखड-उखड पड़ती। किसी तरह खांसी दबाती हुई बोली—क्या कहू बेटी, हम तो दोनो ही मौत की घडियां गिन रही हैं। घर में खाने को दाना तक नहीं। उसपर दोनो की यह हालत। गुलाब···गुलाब रो-रोकर कहती है, मां तूने मुझे पापा की बात मान लेने को मजबूर क्यों नहीं किया ? ऐसे तो हम कीडे-मकोड़ों की तरह छटपटाकर मर जाएंगे !

रेवती काप उठी। बोली—उस पगली को समझाओ कि ऐसा न कहे। उसने और तुमने जो किया, वही करना चाहिए था।

पर यह कहने के बाद रेवती को खुद अपने कथन पर अश्रद्धा होने लगी। वह फिर दुविधा मे पडी, तय नही ही कर पाई कि उचित क्या है, अनुचित क्या है। फिर भी उसने पूछा—मैं कोई मदद कर सकती हूं तो कहना मां।

गुलाब की मां आंसुओं की लड़ी सी टूटकर बोली—बेटी, हम मर जाएं तो कफन और लकडी का जुगाड कर देना। कहीं ऐसा न हो कि···

रेवती पूरी बात सुनने का धीरज नही रख पाई। बात काटकर बोली—ऐसा क्यों कहती हो। तुम्हारा इलाज मैं कराऊंगी। गुलाब की देखभाल मैं करूंगी।

इतना कहकर उसने अटैची में से दस रुपए निकालकर उसे दिए और कहा—अभी यही है। आज दिन में बैंक से मगवा लूगी। मैं डाक्टर बुलाऊ। जो भी जरूरत होगी मैं पूरी करूंगी।

गुलाब की मा ने बडी-बडी असीसें दी। वह उठकर जाने लगी तो रेवती को लगा जैसे उसने यह दया इंद्रा के साथ की है। इसी औरत की लहू-मज्जा से बनी इन्द्रा। दोनों में क्या फर्क! इन्द्रा जयन्त को पाकर खुश होगी। पर उसे पता होना चाहिए कि रेवती की दया के बिना उसकी मां मर सकती है, बहन मर सकती है।

पर यह भाव क्षणिक ही था। रेवती इन्द्रा से क्या बदला ले। बेवकूफ और बदसूरत इन्द्रा। उसे इन्द्रा मास के ऐसे लोथडे सी दिखाई दे रही थी जिसपर बहुत से पुरुष-गिद्ध एकसाथ टूट पड रहे हों। उसने घृणा से पीड़ित होकर उसके विचार को ही अपने मन से निकाल दिया।

इसके बाद कितनी ही देर तक रेवती चबूतरे पर खभे से लगी बैठी रही। फिर जब सूरज की किरणो ने वहा पहुंचकर उसकी पीठ को खुजलाना शुरू कर दिया तो वह उठी। नौ बजने वाला ही था चेकबुक निकाली। अपने नाम एक पाच सौ का चेक काटा और गाडगिल की खोली की तरफ चली।

मौसी की खोली में अब भी ताला ही झूल रहा था। मौसी इस उम्र में भी रातें बाहर बिता लेती है। सोच-सोचकर वह घृणा और विस्मय से भर उठी। फिर उसने जबरदस्ती मौसी के ख्याल को भी दूर ढकेल दिया। वह गाडगिल की खोली के पास आ गई। वह चबूतरे पर पाव लटकाए बैठा था, मैला पाजामा पहने, शेष बदन पर कुछ नहीं; दुबला-पतला कमजोर शरीर, पीला मुंह, प्रभावहीन आंखें, सिगरेट से जले होठ—जैसे बरसात की उमस भरी रातों की मलीनता साकार हो गई हो। उसे लगा कि गाडगिल को छू ले तो साबुन मल-मल के ही नहाना पड़े और फिर भी मलिनता न हटे।

उसे अपनी तरफ आते देखकर गाडगिल उठ खड़ा हुआ। बडे हुलास से बोला—आओ, रात तो बडे मजे की नींद आई। अब बोलो, फिर कब इतना अच्छा खाना खिलाओगी।

रेवती बिलकुल पास ही खड़ी थी। वह गौर से उसके मुख को देखने लगी।

उसकी बातें उसे भाई। उनमें कोई मलिनता न लगी। उन बातों को कहने वाला गाडगिल उसे अच्छा लगने लगा। मन ही मन सोचा : मनुष्य के बाहरी रूप को देखकर नफरत नहीं करनी चाहिए। जितनी गदगी और जुगुप्सा उस गाडगिल के चेहरे पर है शायद उतनी उसके मन मे नही। बोली–मेरा एक काम कर दोगे भाई?

गाडगिल को उसका यह वाक्य ऐसा लगा जैसे किसीने उसपर गगाजल छिड़क दिया हो। चमक भरी आंखों से बोला—हुकुम करो बहन।

रेवती ने चेक थमाते हुए कहा—यह चेक है। बैक से रुपया ला दोगे? कालबा देवी मे है। दूर है। तुम्हारा काम तो हर्ज नहीं होगा?

गाडगिल ने देखा—पाच सौ का बीयरर चेक। साक्षात् पांच सौ। इतने सारे रुपए तो उसने जिदगी में सिर्फ गणित की पुस्तक मे ही लिखे देखे थे। इस चेक को बैक मे देते ही वह पाच सौ रुपए, सौ-सौ के पाच नोट या एक-एक के सौ-सौ नोटो की पांच-पाच गड्डिया पा सकता है। इतना रुपया गाडगिल को मिल जाए तो वह सब से कीमती शराब पीए, फिर जूता खरीदे, बाद मे पतलून और बूशर्ट भी।

उसे सोचते देख रेवती ने पूछा—कोई कठिनाई है रुपया लाने मे भाई!

'भाई'—गाडगिल को बडा प्यारा लगा। तो वह कैसे धोखा दे सकेगा उसे। बोला—देखो बहन, इतना रुपया मैने एकसाथ कभी नही देखा। यही डर है कि कही रुपया हाथ मे आते ही शराब की बोतले न खरीद लू।

रेवती ने गंभीरता से कहा—तुम्हारे लिए शराब इतनी ही जरूरी है तो मै तुम्हें और रुपया दे दूगी। पर इस चेक के रुपयो को मत छूना। यह मेरा नहीं गुलाब का समझो, उस होने वाले का समझो। उसके घर मे दाना भी नहीं।

गाडगिल को रेवती की यह भावुकता बडी फिजूल लगी। बोला–उस बेवकूफ को रुपया दोगी? रुपया कमाने की अभी उसकी उम्र है। फिर उसका बाप है, भाई है!

रेवती ने तीखी मिर्च की सी चरपराहट के साथ कहा—और वह भी तो कहो कि उसका चाहने वाला भी जिन्दा है। वह उसकी मदद करेगा। लाओ यह चेक मुझे वापस करो। मै तुमसे सलाह लेने नहीं आई हूं। इस काबिल मैने तुम्हे कभी नहीं समझा।

गाडगिल सहम सा गया। उसने सुन्दर स्त्रियों का क्रोध सिर्फ फिल्मों के सेट पर देखा था, जहां वे मन की विवशता से नहीं, डायरेक्टर के निर्देश से, कथानक के अनुरोध से वैसा किया करती थीं। अन्यथा उसने उन्हें सिर्फ मुस्कराते, अदाओं की बारिश करते और आंखों से सिर्फ मोहनी फेंकते ही देखा था। पर रेवती तो सुनहरी आग की लपट सी थी। उसमें रूप से अधिक आतंक था। वह कुछ ऐसी नहीं थी जिसे सहसा गले से लगा लिया जा सके। उसने उसके मुख पर से आंखें हटाते हुए कह दिया—नहीं। मैं रुपया लाऊंगा अगर तुम विश्वास करो।

रेवती ने गर्व के साथ कहा—पांच सौ के लिए मैं अपने या किसीके विश्वास को कसौटी पर नहीं परखती। अगर तुम रुपये ला सकते हो तो सिर्फ 'हां' कह दो।

गाडगिल ने चेक को मोड़कर मुट्ठी में कर लिया। कहा कुछ नहीं। रेवती लौट गई। वह हतबुद्धि सा खड़ा रहा। कोई सुंदर जवान औरत भी किसीको हतबुद्धि कर सकती है, गाडगिल की कल्पना से भी परे था। जिन फिल्म अभिनेत्रियों की वह छाया तक नहीं छू सकता था उन्हें भी उसने कभी पुरुष की बांहों के बाहर नहीं समझा। पर रेवती उसे कुछ ऐसी लगी जिसके आलिंगन के लिए अजगर सी बांहें चाहिएं, नहीं तो यह नागिन अपने जहर से जला ही डालेगी।

थोड़ी देर बाद कपड़े पहनकर गाडगिल बैंक के लिए चल दिया। उसकी जेब में चेक था जो रोकड़ की तरह लग रहा था। बार-बार वह सोचता कि वह उस रुपये का कैसा सदुपयोग कर सकता है। पर हर बार उसे लगता जैसे रेवती की निगाहें उसकी पीठ को कुरेद रही हैं। वह अस्थिर हो उठता। उसकी समझ में नहीं ही आया कि उसे रेवती की परवाह क्यों है। उसने बहुत सी सुन्दर-असुन्दर स्त्रियों से छेड़खानी की है, अवज्ञा की है। उनकी फटकारों के बावजूद भी हंसता रहा है। उनकी दी हुई चप्पलों को चूम लिया है, पर उनसे हार कभी नहीं मानी। वे सब उसे सिर्फ औरत लगीं और उनकी भौंहों की सिकुड़न में बैठा क्रोध सिर्फ अभिनय लगा और जिनकी वर्जना में केवल आमंत्रण मिला। पर रेवती······

कभी वह सोचता कि रेवती-वेवती कुछ नहीं, वैसी ही है; दूसरी लाखों जैसी ही है। वह कमजोर हो गया है। उसीमें कहीं कुछ कमी आ गई है।

पर इस तर्क-वितर्क से उसका समाधान नहीं होता। रेवती के बारे में सोच-

सोचकर परेशान था। वह उसके बारे में अब और कुछ नहीं सोचना चाहता था। उसका चेक भुनाकर उसे दे देगा। क्यों सोचे उसके बारे में। उसने किसी भी औरत को सिर्फ उतनी ही देर याद किया या चाहा है जितनी देर तक वह उसकी बाहों या आंखों में रही है। पर रेवती ···

शायद वह गलत ढंग की औरतों से ही मिलता आया है। उसके अपने समाज में कुछ वैसी ही औरतें थीं। रेवती किसी और समाज की है। वह खूबसूरत तलवार सी है। उसे देखकर सराह सकते हो, छू नहीं सकते, पास फटक नहीं सकते।

सोचते-सोचते मेरिन-ड्राइव स्टेशन आ गया। वहां से पैदल चलकर कालबादेवी भी पहुंच गया, पर रेवती उसके दिमाग से नहीं निकली।

कोई बारह बजे, मनुभाई की वाड़ी में वापस पहुंचा। रेवती ने उसे देखा, देखकर खुशी हुई। सचमुच ही इस गाडगिल के अंदर उतना मल नहीं जितना उसने बाहर लपेट रखा है। उसने उठकर रुपयों के लिए हाथ बढ़ाया। गाडगिल ने उसका दिया चेक लौटा दिया।

रेवती ने अचरज से पूछा—यह क्या, तुम गए ही नहीं ?

फिर कुछ कठोर होकर बोली—नहीं जाना था तो मुझे पहले ही क्यों नहीं बता दिया ?

गाडगिल ने कहा—गया तो था पर······

वह कोमल हुई—क्या दस्तखत नहीं मिले ?

—'नहीं'—गाडगिल को वह सवाद देना कुछ अप्रिय लग रहा था। पर कहना ही पड़ा—तुम्हारे खाते में अब एक भी पैसा नहीं जमा।

रेवती को विश्वास नहीं हो सका। बेचैनी से पूछा—तुम्हारा मतलब ?

उसने बताया—चौंतीस हजार के लगभग तुम्हारा बैलेंस था। लगभग वह सब तुमने इसी महीने की पंद्रह तारीख को निकलवा जो लिया है।

—नहीं, वह सब रुपया मैंने नहीं निकलवाया ?—उसने जोर देकर कहा—लगता है तुम गए ही नहीं। सिर्फ मुझे कहानी सुनाने चले आए हो।

गाडगिल ने बड़े धीरज के साथ कहा—सच मानो बहन !

रेवती को भी लगा कि गाडगिल सच तो बोलता ही है। फिर परेशान सी

अपने-आपसे कह उठी—तो  तो···पर···यह सब कैसे हुआ ?

गाडगिल भी उलझन में पड गया था। सहसा उसे कुछ सूझा। पूछा—हां, एक बात तो बताओ, उस न्हाना को अपने घर गए कितने दिन हुए। कुछ सोचो और बताओ कि उस दिन पंद्रह तारीख ही तो न थी।

—पर इससे क्या ?—रेवती ने असमंजस में पड़े-पड़े कह दिया।

—मैं सोचता हूं कि इसीमें सब कुछ है।—गाडगिल की बुद्धि कुछ उद्दीप्त हो रही थी। बोला—मैंने तुम्हें बताया न था कि वह बेवकूफ जब देखो जहां-तहां, हर कागज पर तुम्हारा नाम ही लिखा करता है। मुझे तब लगा था कि उसपर तुमने अपना जादू डाला है और वह बेवकूफ तुम्हारे नाम को लिख-लिखकर अपने मन को बहलाया करता है। पर सोचता हूं, वह इतना बेवकूफ न था। तुम्हारे रूप का जादू उसपर नहीं ही चल सका। उल्टे रुपये का जादू चल गया। उस जादू की काट भी उसके पास निकली। उसने जाली चेक बनाकर तुम्हारी सारी रकम हड़प ली। जरा देखो तो, तुम्हारी चेक-बुक के कुछ पन्ने भी तो गायब नहीं ?

रेवती को यकीन होने लगा। उसने चेक-बुक देखने की जरूरत तक न समझी। बोली—हो सकता है। यह भी हो सकता है। न्हाना शायद तभी से गायब है। तब पंद्रह तारीख ही थी शायद।

उसकी आवाज में दर्द था। गाडगिल को लगा कि इतनी बड़ी रकम के जाने का सदमा है। स्वाभाविक है। बोला—हमें फौरन पुलिस में रिपोर्ट करनी चाहिए। वह भाग नहीं पाएगा, छिपाकर भी नहीं रख सकेगा।

पर रेवती को पीड़ा रुपए जाने की नहीं, धोखा खाने की थी। कैसी है जिंदगी, जिसमें धोखा ही धोखा ! हर किसीसे धोखा। शादी में धोखा खाया ! प्यार में धोखा खाया ! विश्वास में धोखा खाया ! जयन्त जैसा दब्बू भी उसे धोखा देने को वीर बन गया ! न्हाना जैसा कीड़ा भी उसे डसने को सांप हो गया !

बौना न्हाना उसकी आंखों में अपने उपहास के शूल सा झूल रहा था। वह ऐसे हीन हाथों से ठगी गई, इसीका उसे पछतावा था। न्हाना को उसने खिलौना समझा था। सोचा था कि उसकी मुस्कान की एक कौंध ही उसको मात दे देगी पर···

रेवती को लगा कि रो पड़ेगी। इस तरह बार-बार अपमानित होकर वह कैसे

जी सकेगी। उसे अपने रूप का गुमान रहा है। उसे अपने मन की दृढ़ता का अभिमान रहा है। उसे अपने नारी-आकर्षण का जरूरत से ज्यादा पता था। पर वह कैसी-कैसी छोटी जगहो मे असफल हुई। कोई उसके अनुरूप या उससे भी बढ़ा-चढ़ा उससे छल करता तो उस छल को वह विजय का अभिप्राय देती। पर इस छल को क्या कहे! अपमान, अवज्ञा और उपहास से भी बढ़कर है। उसकी आंखे लाल होकर नम होने लगी थीं। पर सामने खड़े गाडगिल को देखकर उसने स्वयं को संभाला। सोचेगा रुपए के लिए रो रही है, रेवती रुपए के लिए रो रही है! कोई ऐसा सोचे, यह उसके लिए असह्य था।

उसे गुमसुम देखकर गाडगिल बोला—आप किस सोच मे पड गई। आप कहे तो मनुभाई को भी बुला लू। हमें फौरन बैंक और पुलिस को बताना चाहिए।

—क्या बताना चाहिए?—रेवती ने अन्यमनस्कता से पूछा।

गाडगिल ने उतावली की झुंझलाहट दिखलाई—आप भी गजब करती हैं! पूछती हैं कि क्या बताना चाहिए। यही कि जालसाजी हुई है। न्हाना को गिरफ्तार कराना चाहिए।

रेवती आहत अभिमान के साथ बोली—मुझे अपमानित मत करो। उस चूहे को पकडने के लिए मै पुलिस की मदद लूगी? उसे भाग जाने दो। यह रुपया उसके बौनेपन की कुंठा छिपा सका तो ठीक ही होगा। उसे यह भी आजमाने दो। बौना···

बौना···जैसे रेवती न उसके नाम पर थूक दिया हो। फिर बोली—अच्छा ही हुआ कि वह रुपया चला गया। उस रुपये पर मेरा अधिकार भी शायद न था। मै बहुत कुछ छोड चुकी हू। फिर इस रुपये मे क्या रखा है!—इतना कहकर उसने *अपने हाथ से सोने की चार चूड़िया उतारी और गाडगिल को थमाती हुई बोली*—लो इन्हे ले जाओ। इन्हें बेचकर जितना भी रुपया मिले फौरन ले आओ। मुझे रुपये की जरूरत है। मै रुपये के अभाव मे उस होने वाले बच्चे को मरने न दूंगी। मुझे गुलाब या उसकी मा पर नही, बल्कि उस निर्दोष बच्चे पर तरस आ रहा है जो किसीके पाप का पुण्य है, और दुनिया देखने के लिए गर्भ के नरक मे छटपटा रहा है।

गाडगिल ने विस्फारित आंखों से देखा : रेवती नही देवी। तरुणी और सुन्दरी नही; दुर्गा, शक्ति, भवानी विराट्-रूपिणी। जिसके कदमों में वह बौना बनकर खड़ा हुआ है। नही, बौने से भी छोटा। उसके पांव के नाखून से भी छोटा। स्त्री इतनी महिमा वाली भी हो सकती है, इतनी विराट् भी!—उसने कभी सोचा ही नही था। वह आज तक इसी नारीत्व का अपमान करता आया था। उसे लगा जैसे वह मल के पहाड़ों के नीचे दबा है, पर उन्हें भी बेधकर रेवती की पुण्य मूर्ति का प्रकाश उस तक पहुंच रहा है। उसके मन का मल उस प्रकाश के स्पर्श से जलने लगा। उसकी जलन का धुआं आंखों में घुमड़ उठा और आंसू बनने की तैयारी करने लगा। फिर वह भूल ही गया कि उसकी आंखें आंसू बरसा रही हैं। उसका मन रेवती के चरणों में लिपटने को मचल उठा : रेवती, जिसके चरणों को चूम-कर सभी मल धुल जाएंगे; रेवती, पुण्य की ज्योति, सुपथ की दृष्टि। उसका चूड़ियों वाला हाथ कांपने लगा। उसने कुछ कहना चाहा। स्वर भी कांप उठा। फिर उसी कंम्पित स्वर में बोला—मुझे माफ कर दो बहन! गुलाब की होने वाली सन्तान का बाप मैं हूं। मैं उसके और गुलाब के जीवन का उत्तरदायी हूं। मेरे पापों का ही वह सब फल है। मैं ही उन्हें बचाने के लिए सब कुछ करूंगा। मैं भीख मागूंगा, उधार लूंगा, चोरी करूंगा, पर तुम सी बहन की चूड़ियां नही बेचूंगा। बहन, मैं जाने कैसी नींद में सोया था। जानें तुम्हारे अन्न में कैसा पुण्य था। एक रात ही में मैं बदल गया। पहले मुझे स्त्री में अपनी बहन दिखाई दी, फिर पत्नी भी दिखाई दी, सन्तान भी दिखाई दी। मैंने जिसे निरी पाप की पर-म्परा माना था वह पुण्य की धारा सी दिखाई दी। बहन, तुमने मेरी आंखें खोल दी, मुझे मनुष्य बना दिया।

और गाडगिल सचमुच ही रो पड़ा। उसने उन चूड़ियों को रेवती के चरणों में रख दिया और लौटने को हुआ ही था कि मनुभाई उसके कन्धे पर हाथ रख-कर बोले—ठहरो गाडगिल। क्यों बिटिया, तुम मेरे रहते अपनी चूड़ियां बेचने चली थी। मैंने सब सुन लिया है।

गाडगिल भरे हुए गले से बोला—सेठ, मेरी बहन के साथ बड़ा भारी धोखा हुआ है। न्हाना इनका बैंक में जमा रुपया लेकर भाग गया है। उसने जाली

दस्तखतों से पाई-पाई निकाल ली है।

मनुभाई सन्न रह गए। कथा का यह अंश तो उन्हें पता ही नही था। उनकी दयापूर्ण आंखें भी घृणा और क्रोध से भर उठी। उन्होंने कठोर होकर पूछा—पुलिस मे खबर की ?

गाडगिल ने कहा—वहन तैयार नही।

—तैयार नही!—मनुभाई का अचरज बढ़ा। रेवती की तरफ देखा। पूछा—क्यों बिटिया ?

रेवती बोली। उसकी आवाज जैसे किसी अगाध गहराई से आ रही थी—उस रुपये को जाने भी दो बापू! वह चला गया, अच्छा ही हुआ। उसपर मेरा हक भी क्या था!

—पर बिटिया ''।—मनुभाई ने कुछ कहना चाहा। रेवती ने बीच ही मे रोक दिया। बोली—तुम भी रुपये को इतना महत्त्व देते हो बापू। मेरे मन की शांति की खातिर उसे भूल भी जाओ।

मनुभाई हिन्न से उठे। क्षणिक चुप रहकर बोले—ठीक कहती हो बेटी। जिस रुपये पर अधिकार नही मानती वह सुख भी नहीं दे सकेगा। मुझे ही लो न। मै बनारस के किसी गाव से दूध बेचने आया था। यहां कभी एक भैंस से मैंने धीरे-धीरे दस भैंसे कर ली। सेर भर दूध पानी से डेढ सेर हो ही जाता था। इसी तरह रुपया बढा। मैंने दूध का धंधा छोड दिया। कोकीन बेचने लगा। रुपया और तेजी से आया। मैं कोठी-बगले वाला हो गया। मेरे बीवी थी, बच्चे थे। पर धीरे-धीरे वे सब राम को प्यारे हो गए। मेरी पाप की कमाई उनके किसी काम नही आई। पुलिस से मुझे अलग हर वक्त सावधान रहना पडता। बदमाश लफंगो का अपने रुपए से पोषण करना पडता। और इसी तरह एक दिन मुझे लगा कि मेरा रुपया पुलिस को खिलाने और उचक्कों को पालने के लिए ही है। तब से मुझे खुद से और अपने रुपये से घृणा हो गई। मैं उस जिन्दगी से भागा। बगला छोडकर खोली मे रहने वाला। मै तो दूध वाला था। मुझे तो वहीं बने रहना चाहिए था। पर यहा आकर भी उन शैतानों की छायाए मुझे घेरती है। उफ बिटिया, तुम न मिली होतीं तो मैं पागल हो गया होता! जब मैं और मेरी आत्मा,

का विश्वास एक बहुत ही कच्चे धागे में झूल रहा था, तब तुम्हें देखकर लगा कि जिन्दगी बनी रहे तो अपने फिर हो सकते हैं। इस दुनिया में अपनों की कोई कमी नहीं। सिर्फ उन्हें खोजने वाली आंखें और ईश्वर की कृपा चाहिए। अपनी चूड़ियां उठालो बेटी। मेरी पाप की कमाई को भी थोड़ा सा पुण्य कमाने दो। अभी तक मुझे लगता था कि यह सिर्फ पापियों के ही काम आएगी। पर तुमने राह दिखा दी। पाप में जहां-जहां पुण्य के बीज छिपे हैं वहां-वहां वह फल सकती है।

रेवती गूंगी हो गई थी। उसे सब कुछ नाटक सा लग रहा था। गाडगिल की बातें उसकी समझ में नहीं आ रही थीं, मनुभाई की भी नहीं आ रही थीं। आखिर यह सब कैसे हो सकता है! गाडगिल इतना अच्छा कैसे बन सकता है! मनुभाई का अतीत ऐसा मलिन कैसे हो सकता है!

मनुभाई उसे चुप ही देखकर आगे बढ़े। उन्होंने चूड़ियां उठाकर उसके हाथों में पहना दीं। फिर कांपती हुई आवाज में बोले---मेरी कहानी सुनकर मुझसे नफरत हो गई बिटिया!

रेवती ने आंखें उठाकर देखा: फरकती हुई शुभ्र मूछें, दया से भरी अगित जोत वाली आंखें, सात्त्विकता की स्थूल गठन सा चेहरा। उसने आवेग से भरकर कहा---'बापू'। और लिपट गई मनुभाई से। लिपटते ही वह रोने लगी। मनुभाई रोने लगे। गाडगिल भी रोए बिना नहीं रहा।

तभी किसीने आकर गाडगिल से पूछा---यहां श्रीमती रेवती रहती हैं?

गाडगिल ने आंसू पोंछकर देखा---संपन्न-संभ्रान्त व्यक्ति। कौन हो सकता है, जासूस तो नहीं। शायद ठिकाने का पता चल गया हो। उसने पूछा---तो क्या आपको बैंक से सब पता लग गया!

आगन्तुक ने कहा---हां।

गाडगिल बोला---लो बहन, अब तुम्हें तुम्हारा धन मिल जाएगा।

रेवती ने आगन्तुक का स्वर सुना था। कुछ परिचित लगा। उसके मुंह अपना नाम भी सुना। लगा, तब तो वही होंगे। पर विश्वास न हो रहा था आगंतुक की ओर उसकी पीठ थी। उसने मनुभाई के कंधे पर से सिर उठाया

अपने आंसुओं को पोंछा। मनुभाई भी सम्हल रहे थे। इतने में गाडगिल का उत्साह भरा स्वर सुनाई दिया—लो बहन, अब तुम्हें तुम्हारा धन मिल जाएगा !

रेवती ने सिर घुमाकर देखा—चन्द्रकांत। उसके अचरज का ठिकाना न रहा। अनायास ही मुह से निकल उठा—आप ! यहां कैसे ?

चन्द्रकांत रेवती को उस दशा में देखकर विचलित हो उठा था। बोला—जाने क्यों मन परेशान था। कई दिनों से लगता था तुम मुझे बुला रही हो। पर कैसे पहुंचता ? आखिर चेक ने मदद की। तुमने उस चेक को भुनाया था न। बस उसीके सहारे बैंक से पता लगाकर तुम्हारे पास तक पहुंच गया। पर तुमने अपनी यह क्या हालत बना रखी है ? यह कैसी जगह चुनी रहने को ? जयन्त कहां है ?

चंद्रकांत के स्वर में पीड़ा से भरा उलाहना भी था। रेवती उसके प्यार के अनुग्रह से कुछ झुकी, फिर थोड़ी तनकर खड़ी हो गई। जैसे अंदर की कमजोरी को छिपाना चाहती हो। मनुभाई और गाडगिल का परिचय दिया। उन्होंने प्रसन्नता जाहिर की। फिर मनुभाई बोले—तो आप लोग भीतर बैठकर बाते करें। मै फिर थोडी देर मे आऊंगा।

इतना कहकर वे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही चल दिए। उनका इशारा पाकर गाडगिल ने भी कहा—अच्छा बहन, तो फिर मिलूंगा।—और चल दिया। रेवती ने देखा, वह गुलाब की खोली की तरफ जा रहा था।

उसे उधर जाते देखकर उसकी आंखों मे खुशी चमक उठी। चंद्रकात ने उस चमक को देखा। उसे यह शुभ लक्षण लगा। तभी रेवती ने चंद्रकांत को अंदर आने को कहा। खोली मे पहुंचकर दोनों फर्शी बिस्तर पर बैठ गए। बैठते ही चंद्रकात ने पूछा—तुमने बताया नहीं कि जयन्त कहा है।

रेवती ने धीमे से कह दिया—उसने एक लड़की से शादी कर ली है शायद। बस खुश ही होगा जहा भी होगा।

चद्रकात विस्मय-विमूढ़ हो उठे, पर उस बारे मे कहा कुछ नही। कुछ देर चुप रहकर बोले—तो हम आज ही रात को लखनऊ लौट चलेंगे। मै अभी जाकर सीट बुक करा आऊंगा।

दोनों के पास इतने दिनों बाद मिलने पर भी कहने को जैसे कुछ न था।

कितनी देर तक दोनों चुप ही रहे। रेवती बिस्तर की चादर के धागे नोचती रही। चंद्रकांत खोली की दीनता को देखते रहे। उस खोली में बैठी रेवती उन्हें अजीब विरोधाभास सी लग रही थी। उसे देख-देखकर उनकी आंखें भीग उठतीं। जब मौन न सहा गया तो बोले—बड़ी दुबली हो गई हो। मुझे सजा देने के बदले भला खुद को सजा क्यों दी ?

रेवती का मन इस समय गीली मिट्टी सा हो रहा था। जरा सहानुभूति की ऊष्मा मिलती कि गल ही जाती। उसे लगा कि इन स्नेह की थपकियों में वह स्थिर न रह सकेगी। आंसू पलकों पर झूल उठे थे। पर चंद्रकांत के सामने उन्हें बरसाने को वह तैयार न थी। उसने किसी तरह गले को साधकर कहा—हां, एक ही सीट बुक कराना।

—तुम्हारा मतलब ?—चंद्रकांत ने आहत होकर पूछा।

रेवती पिछले दरवाजे से नागफनी की बाड़ को देख रही थी। देख-देखकर सोचती : मैं क्यों नहीं बन सकती ऐसी ? मैं क्यों कमजोर सहारों की तलाश में रहूं ? दुनिया सत्यानासी नाम दे तो दे। पर उसके अस्तित्व को तो कोई नहीं मिटा सकता। तो वह भी उसी तरह जिएगी। भीतर रस भरकर और बाहर कांटे लगाकर। उसने कह दिया—भला तुम क्यों आए ?

चन्द्रकांत इस प्रहार से और टूट गया—रेवती, मैं तुम्हें कैसे बताऊं कि मैं तुम्हें अब भी प्यार करता हूं।

रेवती में चिंगारी सी चमक उठी। कहना चाहा कि 'अब भी' की बात ही क्या ! मैंने ऐसा किया ही क्या जो यह दया दिखाओ। पर चन्द्रकांत के दीन मुख पर तरस खाकर बोली—प्यार एकतरफा हो तो काफी नहीं।

चन्द्रकांत की नजर दीवाल पर चिपकी छिपकली पर टंगी थी, जो रात भर भुनगों का शिकार करने के बाद शायद सो रही थी। रेवती का उत्तर सुनते ही उसकी विद्ध दृष्टि अपनी ही गोद में आ पड़ी। वह थोड़ी देर बजमारा सा बैठा रहा। फिर उठने का प्रयास करता हुआ बोला—अच्छा तो मैं जाऊं।

रेवती ने उसके कुर्ते का कोना थामकर कहा—पर अभी से कैसे ? मेरे हाथ का बना भोजन तो करते जाओ।

चन्द्रकांत टूटे हुए स्वर में बोला—रेवती, मैं बेहद कमजोर हूं। मुझसे इतनी शक्ति और धीरज की आशा न करो !

पर रेवती नहीं मानी। उलाहने और अधिकार के साथ बोली—मेरी इतनी बात मान सकते हो, पर एक छोटी सी बात नहीं ?

चन्द्रकांत ने सुना। रेवती को देखा। उसकी आंखें कुछ वह भी कह रही थी जो उसके वचन नहीं कह पाए थे। उत्तर वह नहीं दे पाया। चुपचाप जहां का तहां बैठ गया। रेवती की आंखों में खुशी की हल्की चमक फैली। चन्द्रकांत उन आंखों को देखकर सोचने लगा था—ये आंखें सिर्फ शासन करने के लिए पैदा हुई हैं। इनकी बात माननी ही होगी।

□ □ □